

युग प्रमुख चारित्रिकारोमणि सन्मार्गदिवाकर पूज्य बाचायंवी
बिमलसागरजी महाराज की हीरक जयन्ती प्रकाशन माला

पण्डित माणिक्कराज कृत

अमरसेणचरित

सम्पादक एवं अनुवादक
डॉ० कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन'
एम० ए० (ऋ) पी० एच-डी०
बाँसातारखेड़ा (दमोह) म० प्र०

अर्थ सहयोग

श्री लालचन्द जैन मोटरवालों की समृति में
श्री दिनेशकुमार जैन, पचदरा, बड़ीत (उ० प्र०)



प्रकाशक

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

‘संकल्प’

‘गाणं पयासं’ सम्बन्धान का प्रष्टार-प्रसार के बलज्ञान का बीज है। आज कल्युग में ज्ञान प्राप्ति को तो होड़ लगी है। पदविर्या और उपाधिर्या जीवन का सर्वस्व बन चुकी हैं परन्तु सम्बन्धान की ओर मनुष्यों का लक्ष्य ही नहीं है।

जीवन में मात्र ज्ञान नहीं, सम्बन्धान अपेक्षित है। आज तथाकथित अनेक विद्वान् अपनी मनगढ़नत वातों की पुष्टि पूर्वाचार्यों की मोहर लगाकर कर रहे हैं। ऋषपटांग लेखनियाँ सत्य की धोणी में स्थापित की जा रही हैं : कारण पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रन्थ आज सहज सुलभ नहीं हैं और उनके प्रकाशन व पठन-पाठन की जैसी ओर जितनी शक्ति अपेक्षित है, वैसी और उतनी दिलाई नहीं देती।

असत्य को हटाये के लिए पर्वेशाजी करने या विशाल सभाओं में प्रस्ताव पारित करने मात्र से कार्यगिरि होना अकल्य है। सत्साहित्य का लिएनहीं विद्युत प्रकाशन व पठन-पाठन प्रारम्भ होगा, असत् का पलायन होगा। अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए आज सत्साहित्य के प्रचुर प्रकाशन की महत्तो आवश्यकता है—

योनैते विद्वलन्ति वादि गिरियस्तुष्मन्ति वागीष्वरा:

भव्या येन विद्वन्ति निष्पृति पदं मूङ्चन्ति मोहं दुष्टाः ।

यद् बन्धुयन्मित्रं यदक्षयसुखस्यावारभूतं मर्त,

तल्लोकन्यथधुद्दिदं जिनवचः पृथ्याद् विवेकशिवम् ॥

उन् १९८४ से मेरे मस्तिष्क में यह योजना बन रही थी परन्तु तथ्य यह है कि “संकल्प” के बिना सिद्धि नहीं मिलती। सन्मार्ग विवाकर आचार्य १०८ धो विमलसागर जी महाराज की हीरक-जयन्ती के मांगलिक बवसुर पर नीं जिनवाणी की सेवा का यह संकल्प मैंने प० प० गुरुदेव आचार्यश्री व उपाध्यायश्री के चरण-सान्निध्य में लिया। आचार्यश्री व उपाध्यायश्री का मुहे भरपूर आशेशवीर प्राप्त हुआ। कलतः इस कार्य में काफी हृद तक सफलता मिली है।

इस महान् कार्य में किसेष सहयोगी प० धर्मचन्द जी व प्रभा जो पाठो रहे, इन्हें व प्रत्यक्ष-परोक्ष में कार्यरत सभी कार्यकर्त्ताओं के लिए मेरा आशीर्वाद है।

पूज्य गुरुदेव के पावन चरण-कमलों में सिद्ध-चुत-आचार्यभक्तिपूर्वक नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु ।

आभार

सम्प्रत्यस्ति न केवली किल कलौ श्रीलोकयनुदामणि-
स्तद्वाचः परमासतेऽन् भरतक्षेत्रे जगदीतिका ।
सदूरत्नश्रवधारिणो यतिवरास्तेषां समालम्बनं,
तस्युजा जिनवाचिपूजनमतः राक्षाजिजनः पूजितः ॥ पदमनंदी पं० ।

बहुमान में इस कलिकाल में तोन लोक के पूज्य केवली भगवान् इस भरतक्षेत्र में साक्षात् नहीं हैं तथापि समस्त भरतक्षेत्र में जगत्प्रकाशिनी केवली भगवान् की वाणी मौजूद है तथा उस वाणी के आधारस्तम्भ श्रेष्ठ रत्नश्रवधारी मुनि भी है। इसीलिए उन मुनियों का पूजन तो सरस्वती का पूजन है, तथा सरस्वती का पूजन साक्षात् केवली भगवान् का पूजन है।

आर्थ परम्परा की रक्षा करते हुए आगम पथ पर चलना भव्यात्माओं का कर्तव्य है। तीर्थंकर के द्वारा प्रत्यक्ष देखी गई, दिव्याष्वनि में प्रस्फुटित तथा सणघर द्वारा गुणित वह महात् आचार्यों द्वारा प्रसारित जिनवाणी की रक्षा प्रचार-प्रसार मार्ग प्रभावना नामक एक भावना तथा प्रभावना नामक सम्बन्धकान का अंग है।

युगप्रमुख आचार्यांशी के हीरक जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में हमें जिनवाणी के प्रसार के लिए एक अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। बहुमान युग में आचार्यांशी ने समाज व देश के लिए अपना जो त्याग और दया का अनुदान दिया है वह भारत के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। गन्ध प्रकाशनार्थ हमारे सान्तिष्ठ या नेतृत्व प्रदाता पूज्य उपाध्याय श्री भरतसागरजी महाराज व निर्देशिका जिन्होंने परिश्रम द्वारा ग्रन्थों की शोजकर विशेष सहयोग दिया, ऐसी पूज्या आ० स्याद्वादमती माताजी के लिए मैं शत-शत नमोस्तुन्दामि अर्पण करती हूँ। साथ ही त्यागीवर्ग, जिन्होंने उचित निर्देशन दिया उनको शत-शत नमन करती हूँ।

इस ग्रन्थ का सम्पादन और अनुवाद डॉ० कस्तूरबन्द्र जी 'सुमन' ने करके जैन साहित्य का बड़ा उपकार किया है। इसके लिये हम आपके आभारी हैं।

गन्ध प्रकाशनार्थ अमूल्य निधि का सहयोग देने वाले द्रव्यदातारों की मैं आभारी हूँ तथा यथासमय शुद्ध ग्रन्थ प्रकाशित करने वाले बहुमान मुद्रणालय की भी मैं आभारी हूँ। अन्त में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में सभी सहयोगियों के लिए कृतज्ञता व्यक्त करते हुए सत्य जिनशासन की, जिनागम की भविष्य में इसी प्रकार रक्षा करते रहें, ऐसी भावना करती हूँ।

प्रकाशकीय

इस परमाणु युग में मानव के अस्तित्व की ही नहीं अपितु प्राणिमात्र के अस्तित्व की सुरक्षा की समस्या है। इस समस्या का निवान 'अहिंसा' अमोघ अस्त्र से किया जा सकता है। अहिंसा जैनधर्म-संस्कृति की मूल आत्मा है। यही जिनवाणी का सार भी है।

तीर्थंकरों के मुख से निकली बाणी को गणधरों ने ग्रहण किया और आचार्यों ने निवद्ध किया जो आज हमें जिनवाणी के रूप में प्राप्त है। इस जिनवाणी का प्रचार-प्रसार इस युग के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यही कारण है कि हमारे आराध्य पूज्य आचार्य, उपाध्याय एवं साधुगण जिनवाणी के स्वाध्याय और प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं।

उन्हीं पूज्य आचार्यों में से एक है राज्यार्थ दिवाकर, चारिन् चूडामणि, परम पूज्य आचार्यवर्य विमलपाठी जी महाराज। जिनके अनुरक्षणे जाणी प्राणिमात्र के लिए कल्याणकारो हैं। आचार्यवर्य की हमेशा भावना रहती है कि आल के समय में प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का प्रकाशन हो और मन्दिरों में स्वाध्याय हेतु रखे जाएं जिसे प्रत्येक श्रावक पढ़कर मोह रूपी अन्धकार को नष्ट कर ज्ञानज्योति जला सकें।

जैनधर्म की प्रभावना जिनवाणी के प्रचार-प्रसार सम्बूर्ण विश्व में हो, आर्थ परम्परा की रक्षा हो एवं अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर को शासन निरन्तर अवालम्बन से चलता रहे। उक्त भावनाओं को ध्यान में रखकर परम पूज्य ज्ञान-दिवाकर, वाणीभूषण उपाध्यायरत्न भरतसागर जी महाराज एवं अधिकारत्न स्याद्वादमती माता जी की प्रेरणा व निर्देशन में परम पूज्य आचार्य विमल सागर जी महाराज की 74वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर 75वीं जन्म-जयन्ती के रूप में मनाने का संकल्प समाज के सम्मुख भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् ने लिया। इस अवसर पर 75 ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना के साथ ही भारत के विभिन्न नगरों में 75 धार्मिक शिक्षण शिविरों का आयोजन किया जा रहा है और 75 पाठशालाओं की स्थापना भी की जा रही है। इस ज्ञान यज्ञ में पूर्ण सहयोग बाने वाले 75 विद्वानों का सम्मान एवं 75 युवा विद्वानों को प्रबन्धन हेतु तैयार करना तथा 7775 युवा वर्ग से सप्तव्यसन का त्याग करना आविष्य प्रोजेक्ट इस हीरक जयन्ती वर्ष में पूर्ण की जा रही है।

उन विद्वानों का भी आभारी हैं जिन्होंने ग्रन्थों के प्रकाशन में अनुवादक/सम्पादक एवं संशोधक के रूप में सहयोग दिया है। ग्रन्थों के प्रकाशन में जिन दाताओं ने अर्थ का सहयोग करके अपनी चंचल लक्ष्मी का सदुपयोग कर पुण्यार्जन किया, उनकी धन्यवाद ज्ञापित करता है। ये ग्रन्थ विभिन्न प्रेसों में प्रकाशित हुए। एतदर्थे उन प्रेस संचालकों को जिन्होंने बड़ी तत्परता से प्रकाशन का कार्य किया, धन्यवाद देता है। अन्त में उन सभी सहयोगियों का आभारी हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष-परोक्ष में सहयोग किया है।

ब्र० ए० धर्मचन्द्र शास्त्री

अध्यक्ष,
भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

प्रस्तावना

पाण्डुलिपि-परिचय

पत्र-परिचय : प्रस्तुत पाण्डुलिपि की यह प्रति आमेर शास्त्र भण्डार श्रीमहाबीरजी के सौजन्य से प्राप्त हुई है। इसका प्रथम-पत्र नहीं है। कुल पत्र छियानवे थे, अब पंचानवे रह गये हैं। प्रत्येक पत्र की लम्बाई उन्तीस सेण्टीमीटर और चौड़ाई दस सेण्टीमीटर है। प्रत्येक पत्र में नीं पंक्तियाँ और पंक्तियों में छब्बीस से पैंतीस तक अक्षर हैं। अक्षरों का आकार न बहुत छोटा है और न बहुत बड़ा। पत्र में दोनों ओर लिखा गया है।

पत्र के चारों ओर रिक्तस्थान छोड़ा गया है। दायीं और बायीं दोनों ओर का रिक्त स्थान दो-दो सेण्टीमीटर है। इसके पश्चात् आधे सेण्टीमीटर स्थान में दोनों ओर दो-दो खड़ी रेखाएँ दी गयी हैं। इन रेखाओं का भीतरी भाग काली स्याही से भरा गया है। दायीं-बायीं इन रेखाओं के मध्य चौबीस सेण्टीमीटर स्थान में लेखन कार्य किया गया है।

प्रत्येक पत्र की चौथी से छठी पंक्ति के मध्य में दो सेण्टीमीटर का चौकोर रिक्त स्थान भी छोड़ा गया है। उसमें पाँच सेण्टीमीटर का एक काली स्याही से भरा हुआ वृत्त दिया गया है। कुछ पत्रों की दोनों ओर उक्त पंक्तियों के आदि और अन्त में भी एक-एक वृत्त दिया गया है। इस प्रकार पत्र अलंकृत दिखाई देते हैं।

पाण्डुलिपि के सांकेतिक चिह्न

१. लेखन कार्य में अशुद्ध वर्ण को इंगित करने के लिए लिपिकार ने अशुद्ध वर्ण के सिरोभाग पर दो आड़ी-छोटी रेखाओं का व्यवहार किया है तथा अशुद्ध कणों के शुद्ध रूप उसी पंक्ति को दायीं-बायीं किसी एक ओर लिखे गये हैं। यदि ऊपर-नीचे लिखे गये हैं तो उनकी सम्बन्धित पंक्ति-संख्या भी उनके सामने दी गयी है (१११४, ७।८।७, ३।१।८) ।

२. जिस शब्द का अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक समझा गया है उस शब्द के ऊपर दो छोटी-आड़ी रेखाएँ दी गयी हैं तथा ऊपर-नीचे कहीं भी सुविधानुसार दो आड़ी रेखाओं के पश्चात् पंक्ति संख्या देकर उक्त शब्द का इष्ट अर्थ लिखा गया है (१।६।५, १।९।३, १।९।१०) ।

३. लिखते समय वर्ण छूट जाने पर छूटे हुए वर्ण के स्थान के ऊपरी अंश में काक-नाद का चिह्न अंकित किया गया है तथा वह वर्ण पंक्ति-संख्या पूर्वक काक-नाद चिह्न के पश्चात् ऊपर-नीचे कही भी लिखा गया है। यदि वह ऊपर लिखा गया है तो उसमें पंक्ति संख्या ऊपर से लेकर दी गयी है और यदि नीचे लिखा गया है तो पंक्ति संख्या नीचे की पंक्तियों दी गयी है (११३१६, ११११२, ११४४४, ३१०८, ३१२१२, ३१७८) ।

४. आ स्वर की मात्रा दर्शनि के लिए वर्ण के ऊपर एक खड़ी रेखा दी गयी है (११६८३, २१५८४, ३१८१४, ४१८२०) ।

५. यमक का कोई चरण छूट जाने पर लिपिकार ने जहाँ छूटे चरण का आरम्भ होना था वहाँ ऊपर-नीचे काक-नाद चिह्न दर्शाये हैं तथा वह चरण हाँसिये में धन का चिह्न देकर पंक्ति संख्या पूर्वक लिखा है (३१०७) ।

६. लिपिबद्ध करने में रह गये वर्ण काक-नाद चिह्न देकर या बिना चिह्न दिये ही यथास्थान ऊपरी भाग में लिखे गये हैं (४११३, ४१११२) ।

७. वर्ण को अपठनीय बताने के लिए वर्ण के ऊपर अंग्रेजी वर्णमाला में छोटे एन वर्ण जैसी आकृति का प्रयोग किया गया है (११०८, ११२११) ।

८. वर्णों का क्रम भंग हो जाने पर उन्हें अनुक्रम में पढ़ने के लिए वर्णों के ऊपर क्रम संख्या दी गयी है (११५१९, ३६, ३७, ४१३५, ४१४८) ।

९. आ स्वर की मात्रा की अनावश्यकता दर्शनि के लिए मात्रा के नीचे काक-नाद चिह्न प्रयुक्त हुआ है (४८१८) ।

पाण्डुलिपि की लेखन-पद्धति

१. यमक की प्रथम पंक्ति पूर्ण होने पर विशम सूचक एक खड़ी रेखा दी गयी है।

२. छन्द नामों तथा वत्ता-क्रमांकों की दोनों ओर दो-दो खड़ी रेखाओं का व्यवहार हुआ है।

३. संस्कृत-श्लोकों के पूर्ण होने पर छ वर्ण लिखा गया है। इस वर्ण के आगे-पीछे भी दो-दो खड़ी रेखाएँ दी गयी हैं।

४. उ स्वर की मात्रा वर्णों के पीछे तथा नीचे भी संयोजित की गयी है।
५. दीर्घ ऊ तथा ओ स्वरों के लिए सरेफ उ स्वर का प्रयोग हुआ है।
६. औ स्वर के लिए अउ तथा सरेफ ऊ स्वर व्यवहृत हुआ है।
७. ऐ स्वर के लिए अइ का उपयोग किया गया है।
८. ऊ स्वर के स्थान में उ स्वर और रि व्यञ्जन का प्रयोग हुआ है।
९. क्ष और ख वर्ण संयुक्त वर्णों के लिए क्रमशः 'रक' और क्ष का प्रयोग हुआ है।
१०. क्ष और ख वर्ण के लिए ष वर्ण आया है।
११. संयुक्त 'ण' वर्ण के लिए 'ण' वर्ण व्यवहृत हुआ है।
१२. च और व वर्ण के समान अकार लिए हैं। केवल चवर्ण में आरम्भ में गुलाई नहीं है।
१३. न ब श और ष का स्वनन्त्र प्रयोग नहीं हुआ है।
१४. झ वर्ण के स्थान में झ और ण के स्थान में ण वर्ण आये हैं। इनका द्वितीय रूप बनाने के लिए इन वर्णों के बीच में एक आढ़ी या तिरछी रेखा अंकित की गयी है।
१५. व वर्ण के स्थान में व वर्ण ही प्रयुक्त हुआ है।
१६. अनुनासिक के स्थान में अनुस्वार प्रयोग में लाये गये हैं।
१७. वर्ण के ऊपर एक मात्रा दशानि के लिए वर्ण के पूर्व एक छड़ी रेखा का व्यवहार हुआ है।

रचना-काल

इस सन्दर्भ में प्रस्तुत गन्थ की सातवीं सन्धि के पन्द्रहवें कड़क की निम्न तीन पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

विक्कम राय हुवव गय कालइ ।
 लेसु मुणीस वि सरभंकालइ ॥
 धरणि अंक सहु चइत वि मासें ।
 सगिवारे सुव पंचमि दिवसे ॥
 कितिय णाकसतें सुह जोयं ।
 छउ पुण्डउ सुन्तुवि (सुह) जोयं ॥

इन पंक्तियों में लेखक ने संबत् सूचक अंकों के लिए लेसु, मुणीस, सर और धरणि शब्दों का व्यवहार किया है। इनमें लेसु शब्द का अर्थ है—लेखा। जैनदर्शन में लेख्याएँ छह होती हैं। मुणीश का अर्थ है—सप्ति।

तीमरा शब्द है सर। इसका अर्थ है वाण। साहित्य में वाण पाँच माने गये हैं तथा चौथे शब्द धरणि का अर्थ है पृथिवी। यह एक होने से इससे एक अंक का बोध होता है। अंकानां वामतो गति:—सूत्र के अनुसार ऐसे अंक बायीं से दायीं ओर पढ़े जाते हैं। अतः ऊपर कहे चारों अंकात्मक शब्दों का अर्थ है विक्रम सम्बत् १५७६ वर्ष में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि शनिवार के दिन कृतिका नक्षत्र में यह कृति पूर्ण हुई थी। स्वर्गीय पं० परमानन्द शास्त्री ने भी इसी काल का उल्लेख किया है^१, किन्तु डॉ० कस्तूरचन्द्र कासलीबाल से इसका रचना काल विक्रम सम्बत् १५७२ बताया है^२ जो अशुद्ध प्रतीत होता है।

रचना-स्थल

इस ग्रन्थ की रचना रुहियास (रोहतक) नगर के पार्वनाथ जिनालय में हुई थी। लेखक पं० माणिककराज इस रचना के सभय में रुहियासपुर में ही विराजमान थे। रुहियासपुर के निवासी अग्रवाल चौधरी देवराज ने पार्वनाथ मन्दिर में इनसे वार्तालाप किया था और नम्रतापूर्वक इस ग्रन्थ की रचना आरम्भ करने के लिए कहा था। प्रथम सन्धि के छठे कड़वक में इस कथन का तथा सातवें कड़वक में रचना रुहियासपुर में आरम्भ किये जाने का उल्लेख किया गया है।

स्वर्गीय पं० परमानन्द शास्त्री ने अपने 'सोलहनीं शताब्दी' के दो अपञ्चंश काव्य' शीर्षक लेख में रुहियासपुर को रोहतक से समीकृत किया है तथा बताया है कि वहाँ सोनीपत की भाँति भट्टारकीय गढ़ी थी। वहाँ के पंचायती मन्दिर में विद्यमान विशाल शास्त्र-भण्डार को उन्होंने भट्टारकीय परम्परा की स्मृति का द्योतक बताया है। शोध-बोज के प्रसंग में रोहतक में लिखे गये अन्य अपञ्चंश ग्रन्थ भी उनके देखने में आये हैं। इससे उन्होंने वहाँ के शास्त्र भण्डार में अपञ्चंश भाषा के शास्त्रों का संग्रह होने का भी अनुमान लगाया है।^३ यह नगर आज भी धन-जन से सम्पन्न है। अतः विद्वान् शास्त्री जी का ऐसा सोचना तर्क संगत प्रतीत होता है।

१. अनेकान्त, वर्ष १०, किरण ४-५, पृष्ठ १६०-१६२, वीर सेवा मन्दिर, वरियार्गज, दिल्ली-५ ई० अष्टूबर-नवम्बर १९४९ प्रकाशन।

२. प्रशस्ति संग्रह : दिं० जैन अलिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी, जयपुर, अगस्त १९५० ई० प्रकाशन, पृष्ठ १६, २३।

३. अनेकान्त : वर्ष १०, किरण ४-५, पृ० १६०-१६२।

प्रतिलिपि-काल एवं स्थल

ग्रन्थ की समाप्ति के पश्चात् अन्तिम पत्र में प्रतिलिपि करानेवाले का परिचयात्मक विवरण दर्शाति हुए लिखा गया है कि इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि विक्रम सम्बत् १५७७ वें वर्ष में कार्तिक वक्षी पञ्चमी रविदार के दिन कुरुजांगल देश के मुकुर्णपथ (सोनीपत) नगर में की गयी थी । प्रतिलिपि करानेवाले आवक का नाम बाहू था । वे काष्ठासंघ के माथुरान्वय में पुष्कर गण के भट्टारक श्री गृणकीर्तिदेव के पट्टधर श्री यशकीर्तिदेव भट्टारक के शिष्य मलयकीर्तिदेव और प्रशिष्य गुणभट्टमूर्तिदेव की आमनाय में अप्रवाल देश के गोवल गोत्र में उन्मन शाह छल्ह और सेठानी करमचंदही के पुत्र थे । उन्होंने दन्दध्वज विधान कराया था और उसी समय ज्ञानावरण कर्म के क्षय हेतु इस शास्त्र को लिखवाया था ।

इस अभिलेख में ग्रन्थ लिखने वाले जा जाएँलेकि नहीं किया गया है । ग्रन्थ की प्रतिलिपि ग्रन्थ रचना के एक वर्ष आठ माह बाद कराई गयी थी । प्रतिलिपि रोहतक में की गयी थी या रोहतक में ग्रन्थ लाकर सोनीपत में, यह विषय अन्वेषणीय है । वह प्रतिलिपि आमेर शास्त्र भट्टार में प्राप्त होने से वह स्पष्ट है कि प्रस्तुत प्रतिलिपि सोनीपत से यहाँ लायी गयी थी । संभवतः आमेर में भी भट्टारक गढ़ी थी तथा यहाँ के भट्टारक सोनीपत के भट्टारकों की आमनाय के रहे हैं । यही कारण है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रतिलिपि सोनीपत से आमेर लायी जा सकी । ग्रन्थ प्रेरक देवराज चौधरी और प्रतिलिपि करानेवाले शाह बाहू दोनों एक ही अन्यथा और गोत्र के थे ।

कवि-परिचय

जैनधर्म-निवृति प्रधान धर्म होने भे उसके उपासक साहित्यकार आत्म-स्थानि से दूर रहे हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना करानेवाले पं० माणिक्कराज ने रचना प्रेरक चौधरी देवराज का जैसा विस्तृत परिचय लिखा है जैसा परिचय उन्होंने अपना नहीं दिया है ।

चौधरी देवराज और कवि के पारम्परिक वार्तालाप प्रसंग में (१३५) कवि का नाम माणिक्कराज बताया गया है । उनके पिता का नाम (१६३) सूरा था । हनके पिता विद्वान् थे । कवि को चौधरी देवराज ने युह और पंडिय विशेषणों से सम्बोधित (१६) किया है जिससे स्पष्ट है कि कवि विद्वान् थे और पंडित भी ।

कवि को द्विसरा रचना नामसेनचरित^१ से कवि की माता का नाम 'दीवा' बताया गया है। वे जैसबाल कुल में जन्मे थे। अन्य पण्डित उनके पाणिडत्य के आगे नह थे। इन्हें उनसे सम्मान प्राप्त हुआ था। वे रुहियासपुर के निवासी थे। शास्त्रों का उन्हें अच्छा ज्ञान था।

गुह-परम्परा : कवि ने अपने गुरु का नाम पद्मनन्दि लिखा है। उन्होंने उन्हें ग्रन्थ के आरम्भ में ही (१२।१३-१४) पट्ट धूरधर, वय पवीण, तप के कारण जीण काय, शील की ज्ञान, निर्गन्थ, दयालु और मिष्टभाषी बताया है। ग्रन्थ का शुभारम्भ उन्होंने गुरु की बन्दना पूर्वक ही किया है। इससे कवि की गुरु-भक्ति एवं कृतज्ञता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

कवि अविकाहित रहे। चीधरी देवराज ने उन्हें अखण्डित शील से विभूषित कहा है (१६) जिससे उनका आजीवन ब्रह्मचारी रहना सिद्ध होता है। भट्टारक देवनन्दि की गुरु के रूप में बन्दना करने से ज्ञात होता है कि कवि ने ब्रह्मचर्य से रहने का नियम पद्मनन्दि से लिया था। यही कारण है कि उन्होंने ग्रन्थ का शुभारम्भ भी भट्टारक देवनन्दि की बन्दना पूर्वक किया है।

मुनि देवनन्दि कवि के गुरु-भाई थे। वे रोहतक के उसी पाश्वनाथ मन्दिर में रहते थे जहाँ कवि का आवास था। इसी मन्दिर में दो विद्वान् पण्डित और भी रहते थे (७।१।८-१३) ।

मूल निवास-स्थान और समय : पण्डित माणिककराज मूलतः कहाँ के निवासी थे? उनकी रचनाओं से ज्ञात नहीं होता है। यह अक्षय कहा जा सकता है कि अमरसेनचरित की रचना करते समय वे ग्रन्थ रचना के प्रेरक चीधरी देवराज की निवास भूमि रुहियासपुर के पाश्वनाथ मन्दिर में रहते थे (१।३।३, १।६।१-१५) ।

१. तहि गिवसइ पंडित सत्य खणि ।

सिरि जयसबाल कुल-कमल-तरणि ॥

इवखाकु वंस महियलि वरिद्धु ।

तुह सूरा-णदणु सुयनरिद्धु ॥

दण्डाणाउ दीवा उरि खणु ।

तुह माणिकु जामे बुहहि मणु ॥

आमेर शास्त्र मण्डार श्रीमहाबीरजी में वेष्टन संख्या ५२१ से सुरक्षित ॥

पण्डित माणिक्कराज प्रस्तुत रचना के पूर्व महाकवि राधू की रचना-पासणाहचरित से परिचित थे। उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ के रुहियासपुर नगर वर्णन प्रसंग में कवि राधू की कृति पासणाहचरित में आये खालियर-नगर-वर्णन को किञ्चित् हेरफेर के साथ आत्मसात किया है। दोनों ग्रन्थों के अंदर निम्न प्रकार हैं—

पासणाहचरित

महिवीडि पहागउ णं गिरिराणउ
सुरहैं वि मणि विभउ जगिउ।
कउसीसहिँ मंडिउ णं इहु पंडिउ
गोपायलु णामें भणिउ॥

सन्धि १, घटा २

जहिँ सहहिँ णिरंतर जिण-णिकेय
पंहुर सुवण्ण धयबड-समेय।
सद्गुल सतोरण जत्थ हम्म
मण सुह संदायण णं सुकम्म॥।
चउहद्दु चक्क सद्गुम जत्थ
बणिवर बबहरहिँ वि जहिँ पयत्थ।
मग्ग ण ठाण कोलाहल समत्थ
जहिँ जण णिवसहिँ परिपुण अत्थ।
जहिँ आवणम्मि थिय विविह भंड
कसवट्टहिँ कसियहिँ भम्मखंड।
जहिँ वसहिँ महायण सुद्धोह
णिच्चचिय पूया दाण-सोह।
जहिँ विकरहिँ वर चउवण्ण लोय
पुण्णेण पयासिय दिव्व भोय।
बवहारपार संपण्ण सब्ब
जहिँ सत्त-वसण भय-हीण भब्ब।
सोबण्णचूड मंडियविसेस
सिगार-भारकिय णिरवसेस।
सोहग णिलय जिणधम्मसील
जहिँ माणिणि माणमहगछलील।

अमरसेनचरित

महिवीडि पहागउ गुगबरिट्टु
सुरहवि मण विभउ जणइ सुद्धु।
वर तिण्णालाल भंडिउ विवितु
णंदह पंडिउ सुरपार पत्तु।
रुहियासु वि णामें भणिउ इद्धु
अरियण जणाह हियसल्लु कट्टु।
जहिँ सहहिँ णिरंतर जिण-णिकेय
पंहुर सुवण्ण धय-सुह समेय।
सद्गुल सतोरण जत्थ हम्म
मण सुह संदायण णं सुकम्म।
चउहद्दु चक्क दाम जत्थ
बणिवर बबहरहिँ वि जहिँ पयत्थ।
मग्ग ण ठाण कोलाहल समत्थ
जहिँ जण णिवसहिँ परिपुण अत्थ।
जहिँ आवणम्मि थिय विविह भंड
कसवट्टहिँ कसियहिँ भम्मखंड।
जहिँ वसहिँ महायण सुद्धोह
णिच्चचिय पूया दाण सोह।
जहिँ विकरहिँ वर चउवण्ण लोय
पुण्णेण पयासिय दिव्व भोय।
बवहार चार संपुण्ग सब्ब
जहिँ सत्तवमण मय हीण भब्ब।
सोबण्णचूड मंडिय विसेस
सिगार भारकिय णिरवसेस।
सोहग णिलय जिणधम्म सील
जहिँ माणिणि माण महग्छलील।

जहिं चरडचाड-कुसुमाल दुट्ठ
दुज्जन सखुद्खल-पिसुण धिंहु ।
णवि दीसहिं कहि मिच दुहिय-हीण
पेमाणुगत सब्ब जि एवीण ।
जहिं रेहिं हय-पय दलिय मग्ग
तंबोलरंग-रंगिय धरग ।

घता

सुहलच्छज सायरु णं रथणायरु
बुहयणजुउ णं इदउरु ।
सत्थत्थहिं सोहिउ जणमण मोहिउ
णं वरणयरहं एहु गुरु ॥
सन्धि १, कडवक ३

जहिं चोर-चाउ-कुसुमाल दुट्ठ
दुज्जन-सखुद्खल-पिसुणधिट्ठ ।
णवि दीसहिं कहि महि दुहिय-हीण
पेमाणुरत्त सब्ब जि पवीण ।
जहिं रेहिं हय-पय-दलिय-मग्ग
तंबोलरंगरंगिय धरगु ।

घता

सुह लच्छ जसायरु णं रथणयरु
बुहयण जुउ णं इद उरु ।
सत्थत्थहिं सोहिउ जणमणमोहिउ
णं वरणयरहं एहु गुरु ॥
सन्धि १, कडवक ३

प्रस्तुत साहित्यिक दृस विद्वा ऐ रुदि माणिक्कराज का कवि रहभू की रचना पासणाहचरित^१ से परिचित होना प्रमाणित होता है। पासणाहचरित की पाण्डुलिपियाँ आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर और जै० इवे० शास्त्र भण्डार, रूपनगर, दिल्ली से प्राप्त बताई गयी हैं। इनमें दिल्ली से प्राप्त पाण्डुलिपि का समय विक्रम सम्बत् १४९८ माघ बदी २ सोमवार तथा जयपुर की पाण्डुलिपि का समय विक्रम सम्बत् १७४३ माघ चन्द्रवार बताया गया है।^२

इन उल्लेखों से कवि माणिक्कराज का समय विक्रम सम्बत् १४९८ से अमरसेनचरित के रचना काल विक्रम सम्बत् १५७६ के मध्य का जात होता है। कवि को संभवतः पासणाहचरित से साहित्य-सृजन की प्रेरणा मिली थी। उनका यह उत्साह अमरसेनचरित की रचना करने के पश्चात् भी बना रहा। उन्होंने विक्रम सम्बत् १५७३ में नागसेनचरित भी लिखा।^३ इसके पश्चात् संभवतः कवि काल-क्वलित हो गये। अन्यथा वे कोई अन्य रचना अवश्य लिखते।

कवि के मूल निवास स्थान के सन्दर्भ में कवि की कृतियों का अन्तः-

१. रहभू ग्रन्थावलि : भाग १, ई० १९७५, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर (महाराष्ट्र) प्रकाशन, पृ० ४ ।

२. वही, भूमिका : पृ०-प्रथम ।

३. असेकान्तः वर्ष १०, किरण ४-५, पृ० १६०-१६२ ।

परीक्षण करते से ज्ञात होता है कि कवि ने अपनी दोनों रचनाओं में बुन्देली बोली के अनेक शब्दों का व्यवहार तथा पासणाहचरित के अंश को आत्म-सात किया है। इसी प्रकार कवि की रचनाओं में जिस संघ, गच्छ, गण के भट्टारकों का उल्लेख हुआ है उन भट्टारकों के नामों का रहधू साहित्य में भी उल्लेख हुआ है।^१

स्व० प० परमानन्द शास्त्री ने कवि की कृति नागसेनचरित से कवि के परिचयात्मक एक यमक का उल्लेख देते हुए लिखा है कि कवि माणिक्कराज कहाँ के निवासी थे यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे वहाँ के जिन मन्दिर में निवास करते थे जिसमें आदिनाथ तीर्थकर की दिव्यमूर्ति विराजमान थी।^२

कवि के समय की एक भव्य ५७ फुट ऊँची आदिनाथ की प्रतिमा ग्वालियर के किले में विराजमान है। इस प्रतिमा की आसन पर १९ पंक्ति का लेख है। इस लेख की प्रथम पंक्ति में प्रतिमा की प्रतिष्ठा का समय वि० स० १५२५ उल्कीर्ण है। चौथी पंक्ति में—श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करणे भट्टारक श्री हंमकोत्तिदेवास्तत्पट्टे भी अंकित है।^३ डॉ० राजाराम जैन के अनुसार इस प्रतिमा का प्रतिष्ठा-कार्य कवि रहधू के हारा सम्पन्न हुआ था।^४

इन उल्लेखों के आलोक में यह स्वीकार किया जा सकता है कि कवि माणिक्कराज विक्रम संवत् १५२५ के आसपास ग्वालियर किले के इस आदिनाथ मन्दिर में रहते थे। कालान्तर में अपनी आमनाय के भट्टारकों की प्रेरणा से वे रोहतक चले गये और वहाँ के पाश्वनाथ मन्दिर में रहने लगे थे।

कवि की रचनाएँ

कवि माणिक्कराज की अब तक दो रचनाएँ अमरसेनचरित और नागसेनचरित प्राप्त हुई हैं। ये दोनों पाण्डुलिपिशी अपन्नें भाषा में लिखी गयी हैं। दोनों ग्रन्थों की एक-एक प्रति आमेरशास्त्र भंडार, जयपुर में सुर-

१. रहधूश्वासावलि : वही, भूमिका प० ९।

२. तहि जिणवरं मदिरु घवलु भव्वु। शिरि आइथाह जिणविवु दिव्वु॥
अनेकान्तः वर्ष १०, किरण ४-५।

३. यह प्रतिमा लेख लेखक के नमिलेख संग्रह में सुरक्षित है।

४. रहधूप्रथ्यावलि : भाग १, वही, भूमिका, प० ९।

स्थित हैं। ये दोनों ग्रन्थ अब तक अप्रकाशित ही हैं। इनका परिचय निम्न प्रकार है।

(अ) अमरसेनचरित्र

इस ग्रन्थ में कुल सात सन्धियाँ, एक सौ चौदह कडवक तथा एक हजार सात सौ इकतालीस यमक-पद हैं। सन्धियों का आरम्भ छुवक छन्द से तथा अन्त घता छन्द से हुआ है। सन्धियों के अनुसार कडवक और यमक-पद संख्या इस प्रकार है—

सन्धि क्रमांक	कडवक संख्या	यमक-पद संख्या
१	२२	३७६
२	१३	२११
३	१३	१७७
४	१३	२५०
५	२४	३८७
६	१४	१४९
७	१५	१९५
<hr/>		<hr/>
११४		१७४१
<hr/>		<hr/>

छन्द-परिचय : कवि स्वयम्भू के अनुसार यमक दो पदों का होता है। उन्होंने आठ यमकों के समूह की कडवक संज्ञा दी है तथा सोलह मात्राओं वाले पद में पद्धडिया नाम का छन्द बताया है। घता छन्द के प्रथम और तृतीय पाद में नौ तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में चौदह-चौदह मात्राओं का उल्लेख किया है। सबसम चतुष्पदी घता छन्द के प्रत्येक चरण में बारह-बारह मात्राएँ होती हैं। जब इस छन्द के प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं तब प्रथम और द्वितीय पाद के आदि में गुरु वर्ण होता है।^१

प्रस्तुत ग्रन्थ के कडवकों में आठ से कम यमक किसी भी कडवक में नहीं हैं। एक कडवक में अधिकतम यमक संख्या चौबीस है। यमकों में पद्धडिया छन्द व्यवहृत हुआ है। घता छन्द के विविध रूप प्रयुक्त हुए हैं। ग्रन्थ के आदि और अन्त में ग्रन्थ रचना के प्रेरक चौधरी देवराज का वंश

१. जैन विद्या : अंक एक, जैन विद्या संस्थान धीमहावोरजी, ई० अप्रैल १९४४ प्रकाशन में डेल्म स्वयम्भू छन्दस : एक अध्ययन गोर्खक लेख।

परिचय दिया गया है। अन्य समाप्ति के पश्चात् प्रतिलिपि करानेवाले आवक की परिचयात्मक प्रशस्ति दी गयी है जिसमें प्रतिलिपि के समय और स्थान का उल्लेख किया गया है।

ग्रन्थ का इतना परिचय देने के पश्चात् ग्रन्थ की संक्षिप्त विषय-स्तुत का अंकन करना भी आवश्यक प्रतीत होता है अतः वह इस प्रकार है—

राजा श्रेणिक के तोर्थकर भ्रातावीर से यह पूछने पर कि जाति से हीन र्वाल-चाल स्वर्ग कैसे गया ? इस प्रश्न के उत्तरमें गीतम गगधर ने कहा— उसका नाम धण्णकर लथा उसके छोटे भाई का नाम पुण्णकर था । दोनों भाई जम्बूद्वीप के भरत धोत्र में ऋषभपुर नगर के मेठ अभयकर के यहाँ कमीवारी के रूप में रहते थे । एक दिन दोनों भाई परस्पर में पुण्ण-पाप के फलों पर विचार करते हुए सांसारिक क्षणभंगुरता का अनुभव करते हैं । इन्द्रिय-विषयों से हटकर आत्म-स्वरूप ध्याते हैं । वे सम्प्रकृत्व से प्रीति जोड़ते हैं और मिथ्यात्व तोड़ते हैं ।

सेठ अभयकर इनके धार्मिक-स्नेह एवं तत्त्व-रूचि से प्रभावित होकर इन्हें स्नान कराकर और शुद्ध वस्त्र पहिताकर जिन मन्दिर ले जाता है । सेठ इन्हें चढ़ाने को द्रव्य देता है किन्तु वे नहीं लेते । वे निज द्रव्य से ही जिनेन्द्र की पूजा करना चाहते हैं । उनकी मान्यता थी कि पूजा में जिसकी द्रव्य चढ़ाई जाती है पूजा का फल उसे ही प्राप्त होता है । अपनी मान्यता के अनुसार अर्थभाव के कारण वे पूजा न कर सके । मुनि विश्वकीर्ति ने इन्हें ब्रत, उपवास आदि का उपदेश दिया । भोजन-सामग्री सामने आने पर इन्होंने मुनियों को आहार करने के भाव किये । दैवयोग से चारण मुनि वहाँ आये । दोनों भाइयों ने अपनी-अपनी भोजन सामग्री से मुनियों को आहार दिये । दोनों मुनि आहार लेकर आकाश मार्ग में विहार कर गये ।

[प्रथम सन्धि]

इसके पश्चात् सेठ अभयकरने धण्णकर और पुण्णकर दोनों भाइयों को भोजन करने के लिए कहा किन्तु उन्होंने भोजन नहीं किया । जारों प्रकार के आहार का त्याग करके नमस्कार मन्त्र जपते हुए समाधिमरण करके दोनों भाई सनेत्कुमार स्वर्ग में देव हुए ।

स्वर्ग से जय कर दोनों जम्बूद्वीप के भरत धोत्र में कर्लिंग देश के दल-बद्धण नगर के राजा सूरसेन और रानी विजयादेवी के पुत्र हुए । बड़े भाई का नाम अमरसेन और छोटे भाई का नाम विहरसेन रखा गया । राजा सूरसेन हस्तिनापुर के राजा देवसेन को बहुत चाहता था । वह

सप्तरिवार हस्तिनापुरमें ही रहने लगा था । राजा देवसेनकी रानी देवश्री कन्दरीय-विश्वास को देखकर नहुँ सी उनके शारीरिक-सौन्दर्य और पराक्रम पर आकृष्ट होती है किन्तु बाद में वह उनसे ईर्षी करने लगती है । वह उन पर दोषारोपण करती है । अपने शील भंग करने की कोशिश करने का आरोप लगाकर राजा से उनका घात कराना चाहती है । राजा देवदत्त रानी देवश्री पर विश्वास करके उन दोनों कुमारों पर रुट हो जाता है तथा आण्डालों को उन्हें प्राणदण्ड देने का आदेश दे देता है ।

चाण्डाल कुमारों को देखकर राजा के इस अविवेक पूर्ण निर्णय की निन्दा करते हैं । वे इन दोनों भाइयों का घात नहीं करते । दूर चले जाने के लिए कहकर मुक्त कर देते हैं तथा लाक्षादि से रंजित दो कटे हुए सिर ले जाकर राजा देवसेन को कुमारों के बध की सूचना दे देते हैं ।

दोनों कुमार चलते-चलते एक सघन वन में पहुँचते हैं । राह चलते-चलते थक जाने के कारण एक वृक्ष के नीचे वे विश्राम करते हैं । वृक्ष पर रहने वाला यक्ष दम्पत्ति कुमारों के सौन्दर्य को देखकर उन पर मुख्य हो जाता है । कीर और कीरी के वेष में वह यक्ष दम्पत्ति कुमारों को दो आम्रफल लाकर देता है । बड़ा आम्रफल अपने भक्षण करने वाले को सात दिन में राज्य प्राप्त करानेवाला और छोटा आम्रफल अपने भक्षण करनेवाले को कहला करने पर पाँच सी रत्न देने वाला था । दोनों फल विश्वासेन को प्राप्त हुए । उसने बड़ा फल अमरसेन को दिया तथा छोटे फल से स्वयं रत्न प्राप्त कर दिव्य भोग भोगने लगा ।

[ह्रीतीय सन्धि]

रात्रिविश्राम के पश्चात् दोनों कुमार कंचनपुर के नन्दन वन आये । विश्वासेन भोजन सामग्री लाने के बहाने कंचनपुर गया । अमरसेन वन में एकाकी रहा । इसी बीच कंचनपुर के राजा का मरण हुआ । मुयोग्य उत्तराधिकारी के अभाव में मंत्रियों ने हाथी द्वारा अभिषित पुरुष को राजा बनाये जाने का निदेश किया । सूँड पर कलश देकर हाथी नगर में घूमाया गया किन्तु नगर-भ्रमण के पश्चात् वह नन्दन वन की ओर गया । वहाँ उसने कुमार अमरसेन का अभिषेक किया । मंत्रियों और नगर-वासियों ने अमरसेन को कंचनपुर का राजा घोषित किया । राजा वनते के पश्चात् अपने भाई विश्वासेन के कंचनपुर से लौट कर न आने के कारण चिन्तित होकर अमरसेन ने भाई को खाज कराई किन्तु वह उसे नहीं मिला । अन्त में निराश होकर राज्य करने लगा ।

इधर भोजन सामग्री लाने के लिए जैसे ही बहरसेन ने कंचनपुर में प्रवेश किया कि उसकी एक वेश्या से भेट हुई। वह उसके घर रहने लगा और अपने कंचनपुर में होने का पता अपने भाई को नहीं लगने दिया। वह भाई के आगे हीनता प्रकट नहीं करना चाहता था। वेश्या ने भी इसकी आय का स्रोत ज्ञात कर इसे अपने घर से निकाल दिया। वह वेश्या से अपना गुप्त भेद प्रकट करने पर बहुत पछताया।

[तृतीय सन्धि]

इसके पश्चात् बहरसेन नगर के बाहर स्थित एक मन्दिर में गया। दैवयोग से किसी योगी को मारकर उसके ढारा सिद्ध की गयी विद्या स्वल्प कथरी, लाठी और पाँवड़ी तीन वस्तुएँ चुराकर चार चोर उसी मन्दिर में आये। वस्तुएँ तीन और चोरों की संख्या चार होने से चोर परस्पर में झगड़े। बहरसेन ने उन्हें वस्तुओं के बढ़वारे का आश्वासन दिया। चोरों ने आश्वस्त होकर वस्तुओं का माहस्य बताते हुए तीनों वस्तुएँ बहरसेन को दीं। ठगों को महाठग मिला। बहरसेन वस्तुएँ लेकर और पाँवड़ी पहिनकर एकाएक आकाश में उड़ गया तथा कंचनपुर आ गया। चोर हाथ मलते रह गये और पश्चात्तप करते हुए अपने-अपने घर चले गये।

बहरसेन कथरी छाड़ाकर प्रतिदिन पाँच साँ रत्न प्राप्त करने लगा। पुनः उसके दिन पूर्ववत् आनन्दपूर्वक बीतने लगे। एक दिन वेश्या ने उसे देखा। कपट पूर्ण भीठी-भीठी बातें करके वह उसे फिर घर ले गयी। उसने बहरसेन से उसकी आकाशगामिनी पाँवड़ी को पाने के लिए कामदेव मन्दिर की यात्रा कराने का निवेदन किया। बहरसेन उसे समुद्र के बीच टापू पर बने कामदेव के मन्दिर ले गया। यहाँ वह जैसे ही मन्दिर के सौन्दर्य-दर्शन में व्यस्त हुआ कि अबसर पाकर वेश्या उसकी पाँवड़ी लेकर कंचनपुर आ गयी।

बहरसेन अपने ठगे जाने से उदास हो गया। इसी बीच वहाँ एक विद्याधर आया और उसने इसे कंचनपुर पहुँचाने का आश्वासन दिया। वह तीन दिन बाद पुनः आने का बचन देकर चला गया। जाते समय उसने इसे मन्दिर के पीछे जाने को मना किया। यह नहीं माना। वहाँ गया और एक वृक्ष का इसने फूल सूंधा। फूल सूंधते ही वह गधा बन गया। विद्याधर ने आकर इसे नहीं पाया। इसके स्थान में उसे गधा दिखाई दिया। वह खहस्य समझ गया। उसने दूसरे वृक्ष का फूल-

लाकर गधे को सुधाया। गधा बहरसेन बन गया। पश्चात् गुप्त रूप से दोनों प्रकार के फूल लेकर विद्याधर की सहायता से बहरसेन कंचनपुर आया।

इसकी पुनः वेश्या से भेट हुई। वेश्या ने कपटपूर्वक विद्याधर द्वारा अपने कंचनपुर भेजे जाने तथा पाँवड़ी अपने साथ ले जाने का वृत्त इससे कहा। पश्चात् प्रश्न किया कि मन्दिर से क्या लाये हैं? बहरसेन ने बदले की भावना से उसे अपने द्वारा लाये गये फूल दिखाये तथा बृद्ध को धुवा रूप देना उनका महत्त्व बताया। लोभाकृष्ण होकर वेश्या ने फूल लिया और जैसे ही संधा कि वह गधी बन गयी। बहरसेन ने उस पर सवार होकर उसे बहुत मारा तथा नगर में घुमाया। उसकी सहायता के लिए भेजे गये राजबल को बहरसेन ने यट्टि (विद्या) के द्वारा पीछे खदेह दिया। अन्त में कुपित होकर स्वयं राजा आया। उसने बहरसेन को ललकारा किन्तु जब दोनों आमने-सामने पहुँचे तो दोनों ने एक दूसरे को पहिचान लिया। दोनों गले लगकर मिले।

[चतुर्थ सन्धि]

राजा अमरसेन के पूछने पर बहरसेन ने अपनी तीनों बस्तुओं की प्राप्ति, वेश्या की मन्मथ-मन्दिर-यात्रा, वेश्या द्वारा कपटपूर्वक आम्रफल तथा पाँवड़ी के लिये जाने और वेश्या के गधी बनाये जाने तक के सभी समाचार बताये। पश्चात् अमरसेन के कहने पर बहरसेन ने उस गधी को दूसरा फूल सूधाकर वेश्या बनाया तथा उससे अपना आम्रफल और पाँवड़ी दोनों कम्तुएँ प्राप्त की। इसके पश्चात् वे धुवराज बनाये गये। उन्होंने दिग्विजय की तथा अमरसेन का एक-छत्र राज्य हुआ। बहरसेन राजा देवदत्त और देवथी का सादर ले आये तथा उन्हें सिहासन पर बेठाया।

एक दिन दोनों भाइयों ने चारण मुनियों का आहार कराये। उन्हें अपना पुर्वभव याद आया। वे नगर लौटे। उन्होंने चतुर्विध दान दिया तथा मूँनि से धर्मोपदेश सुनकर दारह त्रत धारण किये। पुर्वभव में पाँच कीड़ियों के मौल से लो गयी द्रव्य के द्वारा की गधी पूजा के फल स्वरूप बहरसेन को आम्रफल, कथरी, पाँवड़ी और यट्टि बस्तुओं की प्राप्ति तथा स्वयं के मौद्य प्राप्ति का भविष्यवाणी सुनकर अमरसेन ने आचार्य देवसेन की बन्दना की। दोनों भाइयों ने उनसे केशलोच करके महायत लिये। दोनों ने बारह प्रकार का तप तपा, तीर्थों की वन्दनाएँ कीं और विहार करते हुए वे भन्दन बन आये।

राजा देवसेन और रानी देवथी ने इन दोनों मुनियों की बन्दना की तथा उनसे मम्यकस्व के कारण-स्वरूप जिनेन्द्र-पूजा का माहात्म्य जाना। कुसुमावलि और कुसुमलता की जिनेन्द्र अर्चा का फल समझा। प्रीतंकर के द्रष्टान्त द्वारा जिन-पूजा की अनुमोदना का फल जात किया।

[पञ्चम संधि]

मुनि अमरसेन ने राजा देवसेन को जिन-पूजा का माहात्म्य समझाने के लिए राजगृही के मेंढक की पूजा सम्बन्धी कथा सुनाई। उन्होंने बताया कि राजगृह नगर में नागदत्त नामक एक सेठ था। उसकी सेठानी का नाम भयदत्ता था। नागदत्त आर्तश्यान से मरकर अपने घर की सभीएवती वापी में मेंढक हुआ। भयदत्ता जब पानी भरने जाती, वह मेंढक पूर्व स्नेह के कारण उसके आगे-आगे उछलता तथा उसका आँचल पकड़ता था। एक दिन भयदत्ता ने सुनत मुनि की बन्दना की। उनसे उसे मेंढक पूर्व पर्याय का पति जात हुआ। उसने स्नेह वश मेंढक को वहाँ से लाकर एक गहरी बावली में रखा तथा उसे जिनेन्द्र-भाषित धर्म समझाया।

विपुलाचल पर्वत पर तीर्थकर महावीर का समवशारण आने पर राजा श्रेणिक अपने नगरवासियों के साथ उनको बन्दना के लिए गये थे। मुहूर्में कमल-पुल की पाँखियाँ दबाकर उक्त मेंढक भी पूजा के भाव से राजा श्रेणिक के साथ जा रहा था। भीड़ के कारण अपनी सुरक्षा की दृष्टि से वह राजा श्रेणिक के हाथी के नीचे चल रहा था। अचानक वह हाथी के पैर के नीचे आ गया और दबकर मर गया। पूजा के भाव रहने के फल-स्वरूप वह मरकर देव हुआ।

मुनि अमरसेन ने राजा देवसेन को कुसुमांजलि व्रत का माहात्म्य भी समझाया था। उन्होंने उन्हें बताया था कि इसी व्रत की साधना से मदन-मंजूषा स्वर्ग गयी और राजा रत्नशेखर तथा सेनापति धनवाहन मोक्ष गये। उन्होंने यह कथा बताते हुए कहा कि रत्नशेखर—राजा वज्रसेन और रानी जयावती के पुत्र थे। विद्याधर धनवाहन उनका मित्र था। दोनों ने अद्वाई द्वीप के जिनालयों की बन्दना की था। इस यात्रा में रत्न-शेखर ने सिद्धकूट जिनालय में मदनमंजूषा को देखा था। दोनों परस्पर पर मुग्ध थे। मदनमंजूषा के कहने पर उसके पिता ने उसका विवाह रत्नशेखर के साथ कर दिया था।

धनवाहन के नारण मुनि अमितगति से रत्नशेखर और मदनमंजूषा की प्रीति का कारण पूछने पर मुनि ने उसे बताया था कि पूर्वभव में

रत्नशेखर प्रभावती नामक कन्या, धनवाहन उस कन्या के पिता, श्रुतकीर्ति पुरोहित और मदनमंजूषा प्रभावती की बन्धुमती नाम की माता थी। श्रुतकीर्ति मुनि हो गये थे। सर्प के काटने से बन्धुमती का मरण हुआ और श्रुतकीर्ति अपने पद से विचलित हुए। प्रभावती ने सन्मार्ग न छोड़ने को उसे बहुत समझाया। वह रुट हुआ। उसे विद्यायें सिद्ध थीं अतः उसने विद्या भेजकर प्रभावती को बलात् मँगवाकर प्रथम तो एक निकटवर्ती बन में रखा किन्तु बाद में उसे उसने कैलास पर्वत पर छुड़वा दिया।

यहाँ प्रभावती की देवी पद्मावती से भेंट हुई। उसने यहाँ देवों को पूजा करते देखा। उसने पद्मावती देवी से देवों की पूजा सम्बन्धी जानकारी ली और कुसुमांजलि व्रत की विधि ज्ञात की। देवी की प्रेरणा से उसने यह व्रत लिया। मुनि श्रिभुवनचन्द्र से अपनी तीन दिन की आयु शेष ज्ञात करके इसने महातप धारण किया। इसके पिता श्रुतकीर्ति ने विद्या भेजकर इसका तप भंग करना चाहा किन्तु वह सफल नहीं हुआ। प्रभावती ने समाधिमरण किया तथा वह अच्युत स्वर्ग में पदमनाथ नामक देव हुई। इस देव ने अवधिज्ञान से श्रुतकीर्ति को अपने पूर्वभव का पिता तथा बन्धुमती को माता जानकर पृथिवी पर आकर उन्हें निज बोध कराया। फलस्वरूप श्रुतकीर्ति कुसुमांजलि व्रत पूर्वक मरकर अच्युत स्वर्ग में ही सामान्य देव हुआ तथा बन्धुमती इसी स्वर्ग में कमला नाम की अप्सरा हुई। स्वर्ग से चयकर देव पदमनाथ रत्नशेखर, श्रुतकीर्ति का जीव धनवाहन और कमला मदनमंजूषा हुई। इनमें रत्नशेखर और धनवाहन केवली होकर मोक्ष गये तथा मदनमंजूषा तप करके स्वर्ग गयी।

[बछं सन्धि]

मुनि अमरसेन ने राजा देवसेन को वैश्य भूषण भरत और त्रिलोक-मण्डन हाथी द्वारा धारण किये गये कुसुमांजलि व्रत का महत्त्व भी समझाया। उन्होंने उनके पूर्वभवों का ज्ञान कराने के लिए बताया था कि राम के बनवास से लौटने पर भरत दीक्षा लेने तत्पर थे। राम ने उन्हें रोकने के लिए जलकीड़ा का भी प्रबन्ध किया किन्तु वे सफल नहीं हो सके। इसी बीच त्रिलोक मण्डन हाथी उन्मत्त अवस्था में अपना बन्धन तोड़कर नगरवासियों को सताता हुआ वहाँ आया जहाँ भरत थे। वह भरत को देखकर शान्त हो गया था।

भरत ने हाथी के शान्त हो जाने का कारण मुनि देशभूषण से पूछा। मुनि ने भरत को बताया था कि सूर्योदय और चन्द्रोदय वह और यह हाथी

दोनों पूर्वभव में दो भाई थे। ये तप त्यागकर राज्य करने लगे थे। आयु के अन्त में वे आर्तध्यान से मरे और मरकर स्त्री पर्याय में भटकने के पश्चात् चन्द्रोदय (भरत का जीव) कुलकर नाम का राजपुत्र और सूर्योदय (त्रिलोकमण्डन हाथी का जीव) विश्वतास मंत्री का श्रुति नामक पुत्र हुआ। आयु के अन्त में मरकर तिथीच हुए पश्चात् राजगृह नगर में विनोद और रमन नाम से ब्राह्मण के घर जन्मे। इस योनि के बाद दोनों हरिण दम्पति हुए। हिरण्य भोल द्वारा मारी गयी और रमन के जीव हरिण को एक मन्दिर के निकट रखने का योग पिला। वह जिन्हें के भावपूर्वक मरा और स्वर्ग गया तथा विनोद का जीव तिथीच योनि से छूटकर धनद नाम का वैश्य हुआ। स्वर्ग से चयकर रमन का जीव इसका भूषण नाम का पुत्र हुआ। विषयों से विरक्त होकर वह सर्पन्दंश से मरा और माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ। स्वर्ग से चयकर भोगभूमि में जन्मा और पुनः स्वर्ग गया तथा पुनः स्वर्ग से चयकर अभिराम नाम का चक्रवर्ती हुआ। इस पर्याय में इसने चार हजार कल्याणों को विवाह था। विवाह करके वह उनमें आसक्त नहीं हुआ। उसने श्रावक के व्रत लिये। अन्त में यह शुद्ध भावों से मरा और ब्रह्म स्वर्ग में देव हुआ। इसका पिता धनद वैश्य अनेक योनियों में भटकने के पश्चात् पोदनपुर में अग्निमुख ब्राह्मण का मृदुमति नामक पुत्र हुआ। इसने वेश्यावृत्ति में धन गैंडाकर चोरी की। एक दिन यह चन्द्रपुरी नगरी के राजमहल में चारी करने गया। वहाँ इसने राजा को रानी से यह कहते हुए सुना कि प्रातः वह तप ग्रहण कर लेगा और रानी को यह कहते हुए सुना कि राजा के तप ग्रहण करने पर वह भी तप ग्रहण कर लेगी। मृदुमति ने राजा और रानी के वातलिप को सुनकर संसार को निस्सार जाना और उसने भी महान्रत धारण करने का निश्चय किया। प्रातः तीनों महाब्रती हो गये। मृदुमति मुनि हांकर विहार करने लगा। हस्तिनापुर के निकट गुणनिधि नामक चारण मुनि विराजमान थे। वे मासोपवासी महान् तपस्वी थे। अपना योग पूर्ण करके वे तो अन्यत्र विहार कर गये और मृदुमति विहार करता हुआ वहाँ आया। इसके चर्या के लिए नगर में आने पर नगरवासियों ने इसे चारण मुनि जाना और इसका भव्य स्वागत किया। सस्नेह इसे आहार दिये। पूछने पर मृदुमति मीन रहा। उसने यथार्थता प्रकट नहीं होने दी। इसके फलस्वरूप मृदुमति ने तिथीचगति का बन्ध किया और मरकर ब्रह्म स्वर्ग में देव तथा स्वर्ग से चयकर त्रिलोकमण्डन हाथी हुआ। अभिराम ब्रह्म स्वर्ग से चयकर भरत हुआ। भरत को देखकर त्रिलोकमण्डन को जातिस्मरण

हुआ। यह कारण है कि वह भरत को देखकर अपने पूर्वभव में किये दुराचारण पर पश्चाताप करते हुए शान्त हो गया था। उसने अणुव्रत धारण किये थे और भरत ने तिलक लगाकर उसे मुक्त कर दिया था। नगरवासी उसे खिलाने-पिलाने लगे थे। कुमुमांजलि व्रत के प्रभाव से उसकी जग में प्रसिद्धि हुई और भरत सिद्ध हुए।

मुनि अमरसेन ने राजा देवदत को यह भी बताया था कि ग्वाल धनदत्त जिन-पूजा के प्रभाव से मरकर स्वर्ग गया और स्वर्ग से चयकर करकण्डु नामक राजा हुआ। इस प्रकार मुनि अमरसेन से जिनेन्द्र पूजा का माहात्म्य सुनकर राजा देवसेन राजमहल लौटे। अमरसेन और बड़रसेन ने घोर तप किया तथा संन्यास मरण करके वे दोनों ब्रह्मस्वर्ण गये। यह भी कहा गया है कि स्वर्ग से चयकर दोनों भनुव्य पर्याय में जन्मेंगे तथा तप करके सिद्ध होंगे।

[समाप्त सन्धि]

भागसेनचरित

पण्डित माणिक्कराज की यह दूसरी रचना है। इसकी प्रतिलिपि-पाण्डुलिपि आमेरशास्त्र भण्डार श्रीमहावीरजी में है। इसके कुल पत्र एक सी चौबीस हैं। आरम्भिक दो पृष्ठ नहीं हैं। पत्र दस इंच लम्बे तथा साढ़े चार इंच चौड़े हैं।^१ प्रत्येक पृष्ठ में ग्यारह पंक्तियाँ तथा प्रत्येक पंक्ति में पैंतीस से चालीस तक अक्षर हैं। यह नौ सन्धियों में समाप्त हुआ है। कुल यमक संख्या तीन हजार तीन सौ है। आरम्भ में सम्भवतः कवि ने अपना परिचय लिखा था।

रचनाकाल : प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रशस्ति में इस सन्दर्भ में दिये गये चार यमक द्रष्टव्य हैं—

लेस मुणीस वि सर अंका ले। विकम्परायह ववग्य काले ॥
फागुण चंदिण पखि ससि वाले। पणरह सइ गुणासियउर वाले ॥
सिरि पिरथीचंदुपसायं सुंदरु। णवमी सुह णकिखतु सुहव लें ॥
सज्जणलोयह विणउ करेपिणु। हुउ परिपुणु कब्बु रसमंदिह ॥^२

यहाँ प्रथम पंक्ति में कवि ने लेस शब्द को पढ़ लेश्याओं का प्रतीक मानकर छः अंक का, मुणीस को समषि का प्रतीक मानकर सात अंक का

१. प्रशस्ति संग्रह : श्री दि० जैन अ० श्रेष्ठ श्रीमहावीरजी जयपुर ई० १९५० प्रकाशन, पृष्ठ ११३ ।

२. वही, पृष्ठ ११५ ।

और सर को कामदेव के पाँच बाणों का प्रतीक मानकर पाँच अंक का बोध कराया है। एक अंक के बोध हेतु यहाँ उन्होंने तीसरी पंक्ति में पृथिवी और चंद्र शब्द दिये हैं। इनसे यहाँ यही अर्थ जात होता है कि विक्रम संवत् के १५७६ वर्ष निकल जाने के पश्चात् विक्रम संवत् १५७९ फाल्गुन सुदी नवमी तिथि चन्द्रवार के दिन शुभ नक्षत्र में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ था।

समर्पण : पूर्ण होने पर कवि ने यह ग्रन्थ साहु जगसी जायसवाल के पुत्र टोडरमल्ल को समर्पित किया था। टोडरमल्ल ने ग्रन्थ हाथों में लेकर उसे अपने सिर पर विराजमान किया था तथा महोत्सव आयोजित करके उसमें उन्होंने कवि को कंकण, कुण्डल और बैंगूठियाँ तथा अन्य वस्त्र-भूषण देकर सम्मानित किया था। कवि ने इस सम्बन्ध में स्वयं लिखा है—

टोडरमलहृत्यै दिणु सत्यु । तं पुण्य करेपिणु एहु गंथु ॥
दाणेसेयं सहकर णुत (सो) पि । णिथ मिरहु चढाविउ तेण गंथु ॥
पुण्य सम्माणिउ वहु उच्छवेण । पंडिउ चर पटुहि थविक्त तेण ॥
अंगुलियहि मुद्रिय णिय करेहि । चर वत्थइ कंकण कुडलेहि ॥
पुञ्जिअउ बाहरणहि पुण्य तुरतु । हरररोवं विसज्जिउ विणय वि जुतु ॥
गउ णिय घरि पंडिउ गंथि तेण । जिण ऐहु णियउ वहु उत्थवेण ॥
तहि मुणिवर विदहि सुत्य गंथु । दिशणउ गुरहृत्ये सिवह पंथु ॥^१

प्रतिलिपि : इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि का शाहनशाह हुमाऊ^२ के शासन-काल में विक्रम संवत् १५९२ पौष वदी पंचमी मंगलवार के दिन पालम्ब नगर में जायसवाल अन्धय के मंडारी गोत्र से विभूषित विनय वामेश्वरी सुनखी के पंचमी व्रत-उद्यापन के उपलक्ष्य में उसके तीसरे पुत्र के ज्येष्ठ गुणवान् पुत्र शाह दासु ने कराई थी। प्रतिलिपि प्राप्तस्ति निम्न प्रकार है—

अथ संवत्सरेऽस्मिन् श्री नृपतिविक्रमादित्यराज्ये संवत् १५९२ तत्र
पोष मासे कृष्णपक्षे पंचम्यां तिथौ भीमवासरे श्री पालंब शुभस्याने
श्री पातिसाहि हुमाधू राज्य प्रवर्तमाने श्री कालासंघे माधुरान्वये पुष्करगणे
श्री भट्टारक श्री मलयकीत्तिदेवस्तत्पद्मे भट्टारक श्री गुणभद्रदेवास्तत्पद्मे
मुनि क्षीमकीत्तिदेवास्तदाम्नाये मुनि श्री धर्मभूषणदेवास्तदाम्नाये ब्रह्मचारी
मुनि छाजू तत् शिष्य श्री मुनि ब्रह्मचारि पण्णा एतत् इक्ष्वाकुर्वशे श्री गोक्षे

भंडारी श्री जयसवाल वंशाम्नाये श्री पंचदशलाक्षणीकद्रतपालकान् पंचमी उद्धरण धीर साषुवस्थावसे तस्य भावा शीश्वतोयतरंगिनी विजय बागेश्वरी तस्य नाम सुनखी । ततु तृतीय ज्येष्ठ पुत्र गुण गरिष्ठ साधु दासु ॥

भट्टारक

पंडित माणिककराज ने अपनी गुरु परम्परा के सन्दर्भ में पाँच निर्णय साधुओं का नामोलेख किया है । वे हैं—खेमकीर्ति, हेमकीर्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र और पद्मनन्दि ।^१ ये किस संघ, गण, गच्छ के थे इसका कवि ने उल्लेख नहीं किया है । उन्होंने यह अवश्य कहा है कि ये एक ही पट्ट पर एक के बाद एक आसीन होते रहे । पट्ट-परम्परा भट्टारकों में प्रचलित रही है । अतः ये साधु भी भट्टारक जात होते हैं ।

रहधू साहित्य में रहधू-कालीन भट्टारकों में गुणकीर्ति, यशकीर्ति, पालहन्त्री, खेमचन्द्र, मलयकीर्ति, गुणभद्र, विजयसेन, खेमकीर्ति, हेमकीर्ति, कमलकीर्ति, शुभचन्द्र और कुमारसेन के नाम आये हैं तथा इन्हें काष्ठासंघ, माथुरगच्छ और पुष्करण में सम्बन्धित बताया गया है ।^२

अमरसेनचरित में उल्लिखित साधुओं में खेमकीर्ति, हेमकीर्ति और कुमारसेन के नामों का उल्लेख रहधू साहित्य में काष्ठासंघ, माथुरगच्छ और पुष्करण के भट्टारकों के साथ किये जाने से अमरसेनचरित में उल्लिखित लेखक की गुरु परम्परा से सम्बन्धित सभी साधु काष्ठासंघ, माथुरगच्छ और पुष्करण के भट्टारक रहे जात होते हैं ।

अमरसेनचरित की प्रतिलिपि-प्रशस्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिलिपिकार काष्ठासंघ, माथुरगच्छ और पुष्करण के भट्टारकों की आम्नाय का था तथा इस आम्नाय की सोनीपत में संवत् १५७७ में गही विद्यमान थी । इस प्रशस्ति में रहधूकालीन इस संघ, गण, गच्छ के चार भट्टारकों के नामों का उल्लेख हुआ है । वे हैं—गुणकीर्तिदेव, यशकीर्तिदेव, मलयकीर्तिदेव और गुणभद्रसूरिदेव ।

कवि माणिककराज की दूसरी रचना नागसेनचरित की प्रतिलिपि प्रशस्ति में भी काष्ठासंघ, माथुरगच्छ और पुष्करण के भट्टारकों का उल्लेख हुआ है । जिन भट्टारकों के नाम आये हैं, वे हैं—मलयकीर्तिदेव, गुणभद्रदेव, धी (धो) मकीर्तिदेव और धर्मभूषणदेव ।^३

१. अमरसेनचरित : सन्धि-१, कठबक दूसरा ।

२. रहधू प्रस्तावलि भाग १, वही, भूमिका पृष्ठ ९ ।

३. देव इस प्रस्तावना में नागसेनचरित-परिचय ।

काष्ठा संघ का सर्वोधिक प्राचीन अभिलेख मध्यप्रदेश में दूवकुण्ड (ल्योपुर) से प्राप्त हुआ है। यह विक्रम संवत् ११४५ का है। इस प्रशस्ति में देवसेन नामक एक ऐसे आचार्य का नामोलेख है जिन्हें लाडबागड गण का श्रेष्ठ गुरु कहा गया है। कुलभूषण मुनि इनके शिष्य थे और दुर्लभसेन सूरि कुलभूषण मुनि के। दुर्लभसेन के शिष्य थे शान्तिषेण और शान्तिषेण के शिष्य थे विजयवांशि।^१

इससे ठीक सात वर्ष पश्चात् संवत् ११५२ का इसी स्थान के एक स्तम्भ पर अंकित चरणों पर दो पंक्ति का लेख मिला है जिसमें देवसेन को काष्ठासंघ का महाचार्य बताया गया है।^२

इन उल्लेखों के परिप्रेक्ष्य में ज्ञात होता है कि काष्ठासंघ का लाडबागड एक गण था। इस संघ के चार गण बताये गये हैं—नन्दितट, माथुर, बागड और लाडबागड।^३ पुष्करगण का उल्लेख इस संघ के साथ पन्द्रहवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ ज्ञात होता है। पंचास्तिकाय विक्रम संवत् १४६८ में काष्ठासंघ, माथुरगच्छ और पुष्करगण के श्रावकों द्वारा लिप्याया जाना इस तथ्य का प्रमाण है।^४

काष्ठासंघ के नन्दितट, माथुर और बागड गग बारहवीं सदी के भूर्व तक संभवतः स्वतंत्र रहे हैं। इसके पश्चात् ही कभी काष्ठासंघ से इनका सम्बन्ध हुआ है। महाचार्यवर्य देवसेन संभवतः काष्ठासंघ के संस्थापक थे। उनकी चरण पादुकाएँ सं० ११५२ में स्थापित किया जाना और उन्हें महाचार्यवर्य कहा जाना इस सम्बन्ध में घ्यातव्य है।

आचार और सिद्धान्त

पीराणिक ग्रन्थों में भूल कथा के अन्तर्गत आचार एवं सिद्धान्तों का

१. श्री लाटवाटगणोन्नत रोहणादि,
पाणिकथभूतचरितो गुरु देवसेनः ॥

—एपिग्राफिया इण्डिया : जिल्ड २, पृ० २३२-२४०।

२. संवत् ११५२ वैसा (शा) ख सुदि पंचम्यां। श्री काष्ठासंघ महाचार्यवर्य श्री देवसेन पादुका युग्लम् ॥

—कलिघम, आक्रिति सर्वहें रिपोर्ट : जिल्ड २०, पृ० १०२।

३. प० परमानन्द शास्त्री, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संथह : भाग २, प्रस्तावना प० ५९।

४. भट्टारक सम्प्रदाय : लेखांक ५५५ प० २१७।

आचार्यों ने उल्लेख किया है। इसी प्रकार पं० माणिक्कराज ने अपने इस प्रन्थ में पूर्वकालीन समस्त परम्पराओं का समबिश किया है।

पुण्य-पाप : धर्षणकर-पुण्यकर दोनों भार्द परस्पर में वातलिप करते बताये गये हैं। उनके वातलिप के माध्यम से कवि ने पुण्य-पाप सम्बन्धी अपना चिन्तन प्रस्तुत करते हुए उनमें महान् अन्तर बताया है। उन्होंने पुण्य को सुख का और पाप को दुःख का हेतु माना है—

इह पुन्नपाव अंतर वरिद्धु ।
एयइ सुहि एयइ सहहि कद्धु ॥
एयइ वि रंक भूवइ वि एकु ।
भोयइ भुंजहि रइसुह गिर्मंक ॥११३२२-१३

कवि के अनुसार सांसारिक वैभव, धन-सम्पदा सब पुण्य के योग से प्राप्त होते हैं (११३१३)। गथा हुआ द्रव्य पुनः प्राप्त हो जाता है। नष्ट होता हुआ वंश चल जाता है। भव-सागर से पार होने में भी पुण्य सहाई होता है। सुख की प्राप्ति बिना पुण्य-योग के नहीं होती और दुःख पाप-कियाओं से ही प्राप्त होता है (१२२२२१-२३)।

आवक-कुल : धर्षणकर और पुण्यकर की बातचीत के माध्यम से कहा गया है कि आवक कुल दुर्लभ है। बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। चित्तामणि रत्न पाकर जैसे कोई समूद्र में फेंक दे तो वह उसे पुनः प्राप्त नहीं कर पाता ऐसे ही मनुष्य-पर्याय और मनुष्य पर्याय पाकर आवक कुल की उपलक्ष्य बार-बार नहीं होता। इस सन्दर्भ में कहा गया है—

रे जीव म जाणिसि वलि लहेसु । मणुयत्तणि सावयकुलिपवेसु ॥
चित्तामणि लद्दु समूद्रमज्ज्व । पडियउ वलि लबभइ केम नुज्ज्व ॥

—११७।१५-१६

मनुष्य का कर्तव्य है कि वह दुर्लभ नर भव पाकर धर्म करे। जो ऐसा नहीं करता कवि को दृष्टि में उसका जन्म निरर्थक है। उन्होंने लिखा है—

दुल्लहु णरभउ पावित्रि सुधभमु ।
जो ण करइ तहु इह मणु बजममु ॥५।१७।१८

आवक कुल मिलने पर जैनधर्म का पालन करे। जो जीव जैनधर्म का पालन नहीं करता वह भव-भ्रमण करते हुए जैसे-जैसे दुःख पाता है वैसे-वैसे पश्चाताप करता है किन्तु पीछे पश्चाताप करने से कोई लाभ नहीं होता। पानों निकलने के पूर्व बाँध बाँध लेने में लाभ है। साँप निकल

जाने पर लकीर को पीटने में जैसे कोई लाभ नहीं है ऐसे ही मनुष्य देह पाकर उसे खो देने में सार नहीं (११४।१-४) ।

कवि ने चिन्तन पूर्वक लिखा है कि नर-देह पाकर अपने अंगों को पुण्य कार्यों में लगावे । जो पैर तीर्थाटन करते हैं, जो हाथ जिनेन्द्रदेव की पूजा करते हैं, जो कान जिनेन्द्र के गुणों को सुनते हैं, जो नेत्र जिनेन्द्र की छवि निहारते हैं, जो रसना जिनेन्द्र का गुण-भान करती है और जिस हृदय में जिनेन्द्र देव विराजते हैं वे धन्य हैं । उनका होना सार्थक है । धन वही श्रेयस्कर है जो जिनेन्द्र की पाद-भूजा में व्यय होता है । मनुष्य के अंगों और धन की सफलता इसी में है (११०।८-११) ।

गतियाँ—कवि ने चार गतियों का उल्लेख किया है । वे हैं—देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक । इनमें सुख मधु-विन्दु के सदृश और दुःख में पर्वत के समान प्राप्त होता है । देवगति में विमान से च्युत होने की छह भास पूर्व से देवों की चिन्ता रभ जाती है । इस चिन्ता से उनके हृदय संतप्त हो जाते हैं । उन्हें अकथनीय वेदना होती है । एक-एक कर सेविका देवांगनाएँ विलीन हो जाती हैं ।

मनुष्यगति में, क्षय, खस और खास आदि विविध प्रकार के रोग सताते हैं । माता-पिता, स्त्री-पुत्र और बान्धव आदि के वियोग का दुःख होता है । बध-बन्धन, ताड़न, असिधात, दरिद्रता और तिरस्कार जनित दुःख होते हैं । नौ मास पर्यन्त माता के गर्भ में अधोमुख होकर अंगों का संकोच करके जीव इस पर्याय में दुःखी होता है । गर्भ से बाहर निकलने पर इससे आठ गुनी अधिक वेदना सहनी पड़ती है (११४।७-१८) ।

तिर्यञ्च गति में शीत, गर्मी, भूख, प्यास, गलकम्बल-उद्देन, तुकीलों की ल का चुभाया जाना, बधिया किया जाना, कंधे पर भार लादा जाना आदि दुःख सहना पड़ता है । जीवन पराधीन रहता है (११५।१-२) ।

नरकगति में एक से तीनों सागर पर्यन्त दुःख भोगना पड़ते हैं । यहाँ तीव्र ताप और शीतजनित वेदना होती है । वज्रतुंडवाले ढास काटते हैं । घोर घनों की भार, मुद्दगरों के प्रहार और कुठार की चोट सहना पड़ती है । करोंत से जीव दो भागों में विभाजित किया जाता है । कट्टाह में पकाया जाता है । पापड़ के समान चूर्ण-चूर्ण किया जाता है । सूलों पर चढ़ाया जाता है । हाथी दौत से भेदा जाता है । ऊपर उछाला जाता है, असिपत्रवाले वृक्षों की छाया का सेवन करना होता है । अंगों का छेदन-भेदन होता है । बलपूर्वक गर्म लौहनिर्मित पुतलियों से

आलिंगन कराया जाना है। राँगा पिधला कर पिलाया जाता है, उन्हीं का मांस उन्हें ही खिलाया जाता है, गत्थर पर बस्त्र के समान पछाड़ा जाता है, पारे के समान देह के खंड-खंड कर दिये जाते हैं। वह शरीर पुनः मिलकर पहले जैसा हो जाता है। इस प्रकार मिथ्यात्व और मोह में पड़कर यह जोब चारों गतियों में भटकता है और दुःख सहता है (११५।३-१७)।

सांसारिक-स्थिति : कवि ने मनुष्यों के जीवन, योवन और धन को अंजुलि के जल की भाँति क्षीण स्वभावों कहा है। संसार में एक हँसते हुए और एक रोते हुए दिखाई देता है। मित्रता, प्रभुत्व और विषय सब क्षणिक हैं। कल का कार्य आज हो कर लेना श्रेष्ठ है क्योंकि कार्य के लिए कल का समय प्राप्त होगा इसका निश्चय नहीं है (११६।१-८)।

कुदुम्ब : कुदुम्ब एक बन्दीगृह है। गृहिणी की बाहें सौकिल हैं, पुत्रों का स्नेह बेढ़ी है, माता-पिता, बन्धु और मित्र हथकड़ियाँ हैं। शक्ति पाकर भी मनुष्य इन बन्धनों से मुक्त नहीं हो पाता (११७।२-४)। वह कुदुम्ब रूपी जाल में ही फँसा रहता है। कुदुम्ब के लिए कोई भी पाप कर डालता है और अकेला दुःख भोगता है।

पथार्थता यह है कि संसार में कोई किसो का नहीं है। एक-दो दिन रोकर सभी दुःख मनाते हैं इसके पश्चात् सभी खानेपीने लगते हैं और सब दुःख भूल जाते हैं (११६।५-६, १९-२१)।

चेतन और शरीर : कवि ने कुदुम्ब में परदेशी बनकर निर्लिप्त भाव से रहना उचित माना है। वे देह को धर्म का साधन अवश्य मानते हैं किन्तु उससे स्नेह करने के वे विरोधी हैं। उन्होंने देह को पुद्गल संज्ञा दी है। उनकी मान्यता है कि पुद्गल अपना नहीं है किग्राये का है। धर्म में बाधा स्वरूप होने पर वह भी त्याज्य है। चेतन इसे छोड़ कर चला जाता है। जाते समय बलपूर्वक कोई भी उसे रोक नहीं पाता (११६।८, १३-१६)।

श्रावक-धर्म : श्रावक-धर्म का मूलाधार सम्यकत्व है। यह पञ्चास दोषों से रहित और आठ अंग तथा आठ गुण सहित होता है (११७)। यह अहंत देव, निर्गुण गुरु और अहंत-वाणी पर श्रद्धान से होता है, कुगुरु-कुदेव और कुशास्त्रों को मानने से सम्यकत्व नहीं होता (११८।१-२)।

सम्यकत्व की महिमा का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि चारित्र

से भ्रम मुनि और अपने मार्ग से च्युत श्रावक भी सिद्ध हो जाते हैं किन्तु सम्यक्त्व के लिना कोई भी सिद्ध नहीं हो पाता (११८१३-४) ।

कवि की मान्यता है कि वे देव जो संसार में रम रहे हैं उनकी सेवा मुक्ति का कारण नहीं हो सकती । जो परिग्रह के कारण स्वयं इब रहे हैं वे औरों को कैफे तार सकते हैं (११८१८-९) । पर चिन्तन से अनन्त संसार और आत्म-चिन्तन से परमवद प्राप्त होता है अतः परमित्वा न करे और न पर का गुप्त भेद प्रकट करे (११८१२-१३) ।

श्रावक को जुआ आदि सातों व्यवसन द्वाज्य हैं । श्रावक को कवि ने ब्राह्मण अभक्षण और बत्तों स अनन्तकाय पदार्थों को तथा मद्य, मांस, मधु, मक्खन, गाजर, मूली, कलोट, राख, सूरण, पिंडालू, वेणु, रात्रि-भोजन, धोल, ढड़ा, संधान, अशाना और द्विदल को असेव्य कहा है । अनछले प्रानों का उपश्रोग भी वर्जनीय बताया है (११९१२-३) ।

इसके पश्चात् कवि ने पञ्चाण्युन्नतों का निरूपण किया है । अहिमाणु-न्नत में भन वचन और काय से अस और स्थावर जीवों के ऊपर बच्चों के समान दया करते हुए सूक्ष्म और स्थूल सभो जीवों की रक्षा करता अहिमाण्युन्नत है । कवि ने सत्याणुन्नत में सत्य वचन के आचरण पर जोर दिया है । अचौर्याणुन्नत के अन्तर्गत पराये धन को लेने-देने और दूसरों को ठगने तथा कम ज्यादह मौपने-तौलने का तिवेद किया गया है । ऐसा द्रवती पराये धन को धूलि और तृण के समान तुच्छ मानता है । अहूच्युण्युन्नत में पर स्त्रियों को माता समझने पर जोर दिया गया है (११९१४-१५, श्रावण-१७) । धन-धान्य क्षेत्र आदि का प्रमाण परिग्रहपरमाणुन्नत में आवश्यक माना गया है (११९१५) ।

पञ्चाण्युन्नतों के पश्चात् कवि ने गुणवत्तों का उल्लेख किया है । दिव्व्रत में दिशाओं और विदिशाओं में जनि की तथा देशव्रत में ग्राम, नगर आदि लक के गमनागमन की मरीदा रखने तथा अनर्थदण्डव्रत में उसके पालनार्थ तृष्णा-परित्याग कर मन एकाय करने पर जोर दिया गया है (५१८१५-८) ।

श्रावक धर्म में कवि ने चार शिक्षावत्तों को भी सम्मिलित किया है । उन्होंने सामाधिक के लिए एकचित्त होना तथा सब जीवों पर मैत्रीभाव रखना आवश्यक माना है । इसे त्रिकाल किये जाने पर जोर दिया गया है । प्रोषधोपवास अष्टमी और चतुर्दशी तिथियों में किया जाता है । इससे कैलते हुए मन का संकोच होता है । भोगोपभोगपरिमाणव्रत में भोग और उपभोग की वस्तु संस्था निश्चित रखी जाती है और अतिथिसंविभाग

ब्रत में पात्र को आहार देना होता है। इन नृतों के साथ-साथ रात्रि-भोजन और अनछने पानी के व्यवहार का त्याग भी अपेक्षित होता है (४।८।१-७)। दशलक्षण धर्म धारण करना, चतुर्विध संघ को दान देना, प्राणियों पर दया करना और आगम सुनना भी श्रावकधर्म है (१।२०)। कवि ने पाँच अणुब्रत, तीन गुणब्रत और चार शिक्षाङ्कताओं की अनुपालना को शुभगति-मोक्ष का कारण बताया है (४।८।६-७)।

मुनि धर्म : संसार को अस्थिर जानकर संयम धारण करना, पापों से मुक्त होना, चारों कषायों और इन्द्रियों की विषय-प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना तथा बारह प्रकार का तपश्चरण करके कर्मों का नाश करना मुनि-धर्म कहा गया है। मोक्ष के लिए इसका धारण करना आवश्यक है (१।१।५-८।११)।

कर्म व्यवस्था : पण्डित माणिक्कराज ने जैनदर्शन की कर्म-व्यवस्था का भी प्रस्तुत ग्रन्थ में उल्लेख किया है। उन्होंने सुख और दुःखों का पर को निमित्त न मानकर उन्हें शुभ और अशुभ कर्मों का परिणाम माना है। अजित कर्म जीव के साथ रहते हैं। वे छूटते नहीं। फल देकर ही जाते हैं (२।८।३-४, ५।१।१८-१९, ५।१।३।६)।

जीव को जन्म, जरा और मरण रहित स्थान-मोक्ष तभी प्राप्त होता है जब अजित कर्म गल जाते हैं (३।२।१३-१४) तथा कर्म तभी गलते हैं जब बारह प्रकार का तप किया जाता है। कषायों को जीता जाता है और इन्द्रियों तथा मन को विषयों की प्रवृत्ति से निवृत्ति में लगाया जाता है (१।१।७।१०-११)।

अहंकृत की द्रव्य पूजा : जिनेन्द्र-अहंकृत की पूजा में कवि ने निज द्रव्य पर विशेष जोर दिया है। उन्होंने पूजा से होनेवाले पुण्य की प्राप्ति उसे बताई है जिसकी द्रव्य पूजा में व्यवहृत होती है, उसे नहीं जो पूजा करता है। इस गमनवत्त में द्रष्टुत है निम्न यमक—

ते भणहि जसस हम फुल लेहि
लहु पुण् होइ हमि तं ण तेहि ॥ १।२।१।६

निज द्रव्य कम भले ही हो किन्तु उसका अपना अलग महत्व है। प्रस्तुत ग्रन्थ में केवल पाँच कीड़ियों से खरीदकर पाँच पुण्य अपने चढ़ाये जाने के पुण्य से बहरसेन को पाँच सौ रुप्त देनेवाले आनंदफल, सात सौ

रुन कड़ाने पर गिरानेवाली कथरी, आकाशगमिनी पाँवड़ी और विजय करानेवाली लाठी की प्राप्ति का उल्लेख किया गया है (५।१३९-१३)।

आराध्यदेव : पण्डित माणिककराज ने श्रन्थ को प्रथम सन्धि के प्रथम कडवक में पूर्व परम्परा का निर्वाह करते हुए सर्वप्रथम वृषभदेव से महावीरपर्यन्त चौबीसों वर्तमान तीर्थकरों का नामोल्लेख किया है तथा उनकी वर्णना की है। उन्होंने आगे धत्ता में “हृव होसहिं धर” कहकर पहले हुए और आगे होनेवाले तीर्थकरों को भी नमन किया है। उन तीर्थकरों के नामों का उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। पाठकों की जानकारी के लिए उनका उल्लेख कर देता यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। अतः भूतकाल में हुए तीर्थकरों के नाम हैं—निर्बाण, सागर, महासाधु, विमलप्रभ, शुद्धाभद्रेव, श्रीधर, श्रीदत्त, सिद्धाभद्रेव, अमलप्रभ, उद्धारदेव, अग्निदेव, संयम, शिव, पुष्पांजलि, उत्साह, परमेश्वर, ज्ञानेश्वर, विमलेश्वर, यशोधर, कृष्णमति, ज्ञानमति, शुद्धमति, श्रीभद्र और अनन्तवीर्य।^१

आगामी तीर्थकरों के नाम इस प्रकार हैं—महादम, दुर्जेव, सुपाश्वर, स्वयम्प्रभ, सद्वत्समूत, देवदेव, प्रभोदय, उदंक, प्रस्तकीर्ति, जयकीर्ति, सुख्रत, अर, पुष्पमूर्ति, निष्कषाय, विपुल, निर्मल, चित्रगुप्त, समाधिगुप्त, स्वयम्भू, अनिवर्तक, जय, विमल, दिव्यपाद और अनन्तवीर्य।^२

कवि ने तीर्थकरों को अठारह दोषों से रहित तथा अष्ट प्रातिहार्यों से युक्त बताया है (१।१११)। आचार्य जिनसेन ने प्रातिहार्यों के नाम इस प्रकार बताये हैं—अशोक वृक्ष, सिर के ऊपर लीन छत्र, सिहासन, दिव्यध्वनि, दुन्दुभि वाद्य, पुष्पवृष्टि, भामण्डल और चैमर।^३

अठारह दोषों के नाम हैं—जन्म, जरा, तृष्णा, क्षुधा, विस्मय, अरति, खेद, रोग, शोक, मद, मोह, भय, निद्रा, चिन्ता, स्वेद, राग, द्वेष और मरण।

तीर्थकरों के लिए समवशारण की रचना की जाती है। जहाँ समवशारण होता है वहाँ असमय में फूल विकसित हो जाते हैं (१।११२-१४)।

१. जिनेन्द्र सिद्धान्त कोश : भाग २, भारतीय ज्ञानपीठ ईस्टी १९७८ प्रकाशन, पृष्ठ ३७६।
२. हरिवंश पुराण : सर्ग ६०, इलोक ५५८-५६२।
३. महापुराण : पर्व ७, २९३-३०२।

बिहार के समय गन्धोदक की वर्षा होती है। धर्मचक्र आगे आगे चलता है। (११०६-७) ।

कवि ने ऐसे देव को अहंत संज्ञा दी है तथा नमन किया है। उन्होंने ऐसे देवों को पूज्य नहीं बताया जो संसार चक्र में फँसे हुए हैं (११०४-८) ।

इसके पश्चात् कवि ने अहंतदेव की वाणी को आराध्य माना है और उसे नमन किया है। (११) । अहंत और अहंत की वाणी को नमन करने के पश्चात् कवि ने गौतम-गणधर की परम्परा में हुए अपने गुरु निर्गन्थ, तपस्त्री श्रीणकाय पदमनन्दि को प्रणाम किया है (१२१-१४) ।

इस प्रकार कवि ने अन्य रागों-द्वेषों देवों का निषंघ करते हुए अहंत, अहंत वाणी और गुरु इन तीन को देव संज्ञा देकर उन्हें त्रिकाल आराध्य बताया है (१५-७) । इनकी पूजा दुर्गति से निकालनेवाली कही है। कुमार्ग से सुमार्ग पर लाने में ये ही देव समर्थ हैं (१२०-१८, ७१११) ।

जिनेन्द्र वन्दना : प्रस्तुत ग्रन्थ में वन्दना के दो रूपों का उल्लेख किया गया है—प्रत्यक्ष वन्दना और परोक्ष वन्दना। इनमें आराध्यदेव के समक्ष उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर उन्हें नमन करना प्रत्यक्ष वन्दना है।

परोक्ष वन्दना-आराध्यदेव की अनुपस्थिति में होती है। आराध्यदेव के निकट या दूरबत्ती प्रदेश में विराजमान होने पर उनकी वहाँ की उपस्थिति का बोध करानेवाली सूक्ष्मा के मिलने पर जिस दिशा में आराध्यदेव विराजमान होते हैं उस दिशा में आगे सात पद चलकर सहर्ष करबद्ध शिरोनति की जाती है। (१२१७-१९, ११०) ।

आहार-दान-फल : कवि ने कथा के अन्तर्गत निर्गन्थ मुनि को आहार देने का फल स्वर्गीय-सुख दर्शाया है। इस दान में भावों की प्रधानता पर जोर दिया गया है।

प्रत्य में अमरसेन-चहरसेन दोनों भाइयों के मुनियों को आहार देने के भाव उत्पन्न होना और आकाश मार्म से युगल चारण मुनियों का वहाँ आना, दोनों भाइयों का उन्हें आहार में अपना भोजन देना और चारों प्रकार के आहार का तथा समाधिपूर्वक देह का त्याग करके सनलकुमार स्वर्ग में उत्पन्न होना दर्शाकर कवि ने उत्तम पात्र की आहार दिये जाने का माहात्म्य प्रकट किया है (१२२-१३-२१, १२२, २१, २११) ।

संस्कृति : अमरसेनचरित में केवल कथा मात्र नहीं है। कथा के

अन्तर्गत तत्कालीन सामाजिक स्थिति को दर्शाने हेतु प्रसंगानुसार राजनीतिक, सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक, भौगोलिक और साहित्यिक विधाओं का भी प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने सुन्दर रीति से उल्लेख किया है।

राजनीतिक मूल्यांकन

राजा : नगर के सर्वमान्य एवं सर्वश्रेष्ठ नागरिक को नूप कहा गया है। ये अनुराग पूर्वक प्रजा की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे। (५।५।१)। अमरसेन को ऐसा ही सेवा परायण राजा बताया गया है। वे प्रजा की रक्षा के लिए अपनो रक्षा का भी ध्यान नहीं रखते। सेना लिए बिना ही वे प्रजा की रक्षा करने शत्रु की ओर ढौड़ पड़ते हैं (४।१३।१९-२१)। राजकीय कर्मचारी के मारें-पीटे जाने पर भी राजा कुपित होकर शत्रु पर आक्रमण करते थे (४।१३।१३)। चक्रदर्ती राजा का बैमबू विश्वाल होता था। वह चौदह रत्न और नौ निश्चियों का स्वामी बताया गया है (६-१३।५-९)।

राजपद : सामान्यतः राजा का पुत्र सिंहासन पर बैठता था। जब राजा की कोई सत्तान नहीं होती तब राजा के परिजन राजपद पाने को झगड़ते थे। ऐसी परिस्थिति में भूत्रियों से परामर्श किया जाता था। तथा मंत्री भी सर्वमान्य कोई उपाय बताते थे।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कंचनपुर नरेश को निःसंतान बताया गया है। योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में मंत्रियों के परामर्श पर हाथी को निष्पायिक बताया गया। हाथी ने नगर में किसी को भी राजा के योग्य नहीं पाया। वह नन्दन वन को ओर गया और उसने वहाँ अमरसेन का अभिषेक किया। पश्चात् अमरसेन कंचनपुर के स्वामी हुए (३।२।१-१७)।

राजाओं में मैत्री भाव : राजाओं की मित्रता में स्थायित्व दिखाई नहीं देता। दलबदून नगर के राजा सूरसेन को हस्तिनापुर का राजा देवदत्त बहुत चाहता है। उसने सूरसेन को देण, धोड़े, हाथी, चमर, छत्र और कोष दिया। सूरसेन रानी विजयादे सहित मित्र के स्नेहवश मित्र के साथ हस्तिनापुर में ही रहने लगा था। उसके अमरसेन और बइरसेन दोनों पुत्र यहीं हुए थे (२।२।५-२०)।

राजा देवदत्त ऐसा ही हितेषी होकर भी अपनी रानी पर प्रतीति करके अपने मित्र का अहित करने में भी पीछे नहीं रहा। उसने रानी के दांवारोपण करने पर राजा सूरसेन के पुत्रों के बध करने का चाण्डालों को आदेश दिया (२।६।८-१०)।

रानी : कवि ने पटरानी को “पट्टमहादे” संज्ञा दी है (११३२), तथा उसके उन्नत चरित्र का उल्लेख किया है। अमरसेनचरित में मगध नरेश राजा श्रेणिक को रानी घेलना के जिनशासन की भक्त बतायी गयी है (१६८)। इसी प्रकार राजा अरिमद्दन की रानी देवलदे जिन-गुरु के चरणों की भक्त और शील की स्थान कही गयी है (११३४)।

राज्याभिषेक : ऐसे अवसरों पर जिसका राज्याभिषेक किया जाता, भाट उसकी स्तुतियाँ गाते, मंगल वाद्य बजाये जाते, स्त्रियाँ मंगल गीत गातीं। उत्सवपूर्वक राजा तो राज सिहासन पर बैठाकर राजपट्ट बांधा जाता था। इस क्रिया के पश्चात् उसे राजा माना जाता था (३३१-४)।

सहिष्णुता : सहिष्णु होना राजा का विशेष गुण था। उपकारी का उपकार करने के तो साहित्य में अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं किन्तु अपकारी का उपकार करना बिरले ही राजाओं में देखा गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में राजा अमरसेन अपने वध की आङ्ग देनेवाले राजा देवदत्त ताउ को बुलवाकर साइर सिहासन पर बैठाते हुए बताये गये हैं (५५१०-२०)। यह है जैनदर्शन का प्रभाव और जैन साहित्य की अनूठी देन।

कृतज्ञता : राजा अपने कर्मजारी को सेवाओं का आदर करते थे। कंचनपुर के राजा अमरसेन ने अपने एक कोतवाल की सेवाओं का आदर करते हुए उसे दिव्य नये वस्त्र में में दिये थे। इतना ही नहीं, नगर के बाहर उसे रहने के लिए भूमि देकर अपने देश में उसके गुणों की अनुशंसा करते हुए कृतज्ञता प्रकट की थी (५६२-४)।

मंत्री : राजकीय व्यवस्था में मन्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह राजा का परामर्शक होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कंचनपुर के राजा पुत्र चिह्निन बताये गये। उत्तराधिकारी की खोज करने में मन्त्रियों की सूझ-बूझ उल्लेखनीय है। वे एक हाथी की सहायता से अपने राजा का चयन करते हैं (३२१-१७)।

सेनापति : राज्य संचालन के लिए भंत्री के समान सेनापति की नियुक्ति की जाती थी। यह राजा का परम हितेशी होता था। सैन्य-संचालन करना इसी का कार्य था। धनवाहन का नामोल्लेख एक ऐसे ही सेनापति के रूप में हुआ है। (६१३४)।

सेना : प्रस्तुत ग्रन्थ में सेना के लिए बल और सेना शब्दों का प्रयोग हुआ है। चक्रवर्ती राजा की सेना सभी राजाओं की अपेक्षा अधिक होती थी। इस ग्रन्थ में रसनशेखर को एक चक्रवर्ती नृप के रूप में बताया गया

है। उसकी चार प्रकार की सेना थी—पैदल सेना, अश्व-सेना, गज-सेना और रथ-सेना। इनमें पैदल और अश्व-सैनिकों की संख्या दस करोड़ लक्षा हाथी और रथ-सेना की संख्या चौरासी लाख बतायी गयी है। यह सेना युद्ध करती और राजा की विजय करती थी। आयुध चक्रवर्ती के घर स्वयं प्रकट होते हैं (४।१३।५-६)। कभी-कभी राजा सेना का सहयोग भी नहीं लेते थे और प्रजा की रक्षा के लिए अकेला ही शत्रु का सामना करने दौड़ जाता था (४।१३।१९-२१)। राज्य-विस्तार के लिए सैन्य-बल का प्रयोग होता था। राजाओं को बल प्रयोग से अपने आवीन किया जाता और विजित राजाओं की कन्याएँ विवाही जाती थीं (५।५।५)। राजा बन कीड़ा के समय सेना भी साथ रखते थे (५।६।७)। राजा के लिए सेना का बड़ा महत्व था।

कोष : राज्य संचालन के लिए राजा के पास कोष होता था। इसका प्रयोग राजा की आशा से होता था। कोष के साथ नगर आदि भी राजा जिस किसी को देकर सहायता कर सकता था (२।२।१५, ३।३।११)। प्रस्तुत ग्रन्थ में मुद्रा के अर्थ में 'दीनार' शब्द का व्यवहार हुआ है (३।१।१०)।

सामाजिक स्थिति

कवि माणिक्कराज ने प्रसंगानुसार सामाजिक स्थिति का भी निर्देश किया है। उन्होंने नगर वर्णन में समाज को चार वर्णों में विभाजित बताया है (१।३।१०) तथा उनके अर्हन्त-भवत होने का निर्देश भी किया है (१।३।६)। चारों वर्णों में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण की स्थापना प्रथम तीर्थकर कृष्णभद्रेव ने की थी^१ तथा ऋष्ट्राण वर्ण प्रथम चक्रवर्ती भरतेश द्वारा स्थापित किया गया था^२।

प्रस्तुत ग्रन्थ में वणिक् वर्ग का उल्लेख व्यापारी अर्थ में हुआ है (३।३।६)। आचार्य जिनसेन ने जिस वर्ग को वैश्य की संज्ञा दी तथा जिनका कार्य कृषि, वाणिज्य और पशुपालन करता बताया है,^३ समाज के उस वर्ग को ही कालान्तर में सम्भवतः वणिक् संज्ञा दी गई। कृषि और पशुपालन की अपेक्षा व्यापार ही इस वर्ग की जीविका का प्रमुख साधन

१. महापुराण : १६।१८३।

२. वही, ३।३।४७।

३. वही, १६।१८४।

रह गया। सम्भवतः इसीलिए ये वैश्य न कहे जाकर वाणिक् संज्ञा के विश्रुत हुए।

जातियाँ : कवि माणिक्कराज ने प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्रन्थ की रचना करानेवाले बोधरी देवराज को 'अद्वावाल कुल कमलसूर' कहा है तथा यह भी बताया है कि वे जिनेन्द्र पाद्मवनाथ के भक्त थे (११६।१-१) । उम उल्लेख से यह स्पष्ट है कि जैनधर्म के उपासकों की विभिन्न जातियाँ थीं और उनमें अद्वावाल जिसे इस ग्रन्थ में अद्वावाल कहा गया है, जैनधर्म के उपासकों का यह एक थी एवं धी सम्पन्न अन्वय रहा है। शोध-प्रबन्ध लिखते समय उन्नीस अन्वयों के लेखक को जैन-प्रतिमा लेख प्राप्त हुए हैं^१ जिनमें अद्वावाल अन्वय का एक भी मूर्ति लेख नहीं है। यह विषय विचारणीय एवं अन्वेषणीय है।

महाजन : कवि ने व्यापारियों के नामोल्लेखों के पश्चात् कहियाम (रोहतक) नगर के निवासियों में एक ऐसे वर्ण का उल्लेख भी किया है जिसे महाजन संज्ञा दी गयी है तथा जिन्हें शूद्र बोध, पूजा और दान से विभूषित बताया गया है (११३।९) । इस उल्लेख से महाजन कहे जानेवाले लोग जैनधर्मी जात होते हैं। व्यापारी होने के कारण सम्भवतः वे महाजन कहे जाने लगे।

गोवाल : प्रस्तुत ग्रन्थ में गवाल (अहीर) के लिए 'गोवाल' शब्द व्यवहृत हुआ है। कवि ने इन्हें हीन जाति का कहा है तथा मरकर इस जाति के लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति होने का भी निर्देश किया है (१११।३) ।

इस उल्लेख से दो तथ्य स्पष्ट होते हैं। प्रथम यह कि हीन जाति का व्यक्ति भी पुरुषार्थ से स्वर्ग प्राप्त कर सकता है। दूसरा यह कि इस जाति की गणना चारों वर्णों में शूद्र वर्ण में की गयी जात होती है। आचार्य जिनसेन ने शूद्र दो प्रकार के बताये हैं—कारू और अकारू। उन्होने कारू के भी दो भेद किये हैं—स्पृश्य और अस्पृश्य।^२ गोवाल स्पृश्य जात होते हैं। सम्भवतः आजीविका हेतु गायें चराना इनका प्रमुख कार्य था। ग्रामों में इस जाति के लोग आज भी गायें चराते हैं।

कोडवार : बुन्देलखण्ड भूमि में इस जाति को कुटवार कहते हैं

१. वं० बंशीधर व्याकरणार्थ अभिनन्दन ग्रन्थ : स्पष्ट २, पृ० ३३।

२. महापुराण : १६।१८५-१८६।

ग्रामों में कोटवार प्रायः इसी जाति के हैं। इस ग्रन्थ में कोटवार को प्रजा का रक्षक एक राजकीय कर्मचारी बताया गया है (४१२।१६)। कवि ने राजा के द्वारा इस कर्मचारी को नगर के बाहर रहने के लिए भूमि दान में दिये जाने का भी उल्लेख किया है (५।८।४)।

आचार्य जिनसेन ने अस्पृश्य शूद्रों का नगर के बाहर आवास बताया है^१ अतः आचार्य जिनसेन के अनुसार ये अस्पृश्य शूद्र जात होते हैं।

खस, वर्वर, पुलिदः : अमरसेनचरित्र में खस, वर्वर और पुलिन्द जातियों का निर्देश भी किया गया है तथा बताया गया है कि जहाँ इनका आवास होता है वहाँ जैनधर्म नहीं होता (५।८।९)। ये अनार्य देशों के नाम हैं। यहाँ के निवासी अनार्य होते हैं।^२ कवि रहदू ने पासणाहचरित्र में यहाँ तक लिखा है कि जहाँ इनका निवास हो, स्वप्न में भी मन को वहाँ न जाने देवे।

खस-वर्वर-भिल
पुलिदगण् । जहि णिवसइ पावासत्तमण् ॥
सुवणंतरि तहि ण वि मणु करए । सो वीथउ गुणबउ पुणु धरए ॥^३

जन-विधिधता

समाज में सत् और असत् दोनों प्रकार के मनुष्य थे। कवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ में ऐसे जन समुदाय का उल्लेख किया है जिनके कार्य निष्ठा और समाज विरोधी थे। चोर, चाड, कुसुमाल, दुष्ट, दुर्जन, क्षुद्र, खल और पिशुन तथा ढीठ ऐसे ही लोग थे (१।३।१४)। इनमें स्वामी के जाने बिना वस्तु चुरानेवाले चोर, कपट पूर्वक व्यवहार करनेवाले चाड, लोभ-वश कुसुमवत् द्रव्य-संचय करनेवाले लुटेरे-कुसुमाल, कलुषित हृदयवाले दुष्ट, निष्ठा आचरणी दुर्जन, निम्न जन क्षुद्र, शरारती आदमी खल और चुगलखोर पिशुन कहे गये हैं।

कवि ने दुर्जन-त्वभाव का चित्रण करते हुए उसे कगम, क्लोध, मान और लोभ में आसक्त बताया है। उन्होंने उसकी उपमा सर्प और चलनी में की है तथा बताया है कि छिद्र देखकर जैसे सर्प हितकारी दूध को त्याग देता है ऐसे ही दुर्जन हितेबी प्रजा का भी साथ नहीं देता। वह चलनी के समान सार वस्तु का भी त्याग कर देता है। वह पात्र और अपात्र का भेद

१. महापुराण : १६।

२. छाँ आर० के० चन्द्र, प्राकृत-हिन्दी फोश।

३. रहघू-ग्रन्थाबली : भाग-एक, पृ० ८८।

भी नहीं जानता। विषयों में आसवत् रहता है और धन को ही भान्यता देता है (१।८।१-४)। सज्जनों के दोष देखना, उनकी गोपनीयता भंग करना और दूसरों को सताना इसका स्वभाव कहा है (५।५)। कवि ने इससे दूर निवास करना अच्छा बताया है (१।८।१)।

परिवार

कवि ने इस काव्य में परिवारिक सम्बन्धों की सुन्दर विवेचना की है। संक्षेप में वह निम्न प्रकार वर्णित है।

पति-पत्नी : परस्पर में पति-पत्नी में स्नेह होता था। पत्नी अपने पति को ग्राणों से भी अधिक प्रिय मानती थी (१।५।१)। परिवार में पुरुष सज्जनों के पोषक और स्त्रियाँ शीलबन्त तथा मिट्टभाषणी होती थीं (१।४।५-६)। पुरुष भी शीलबान् थे (१।४।१५)। राजा और रानी होकर भी पति-पत्नी के परस्पर में भिलकर रहने का कवि ने उल्लेख किया है (१।९।८-९)।

माता-पिता : माता-पिता समान रूप से अपने सन्तान पर स्नेह रखते थे। वे अपने पुत्र का जन्मोत्सव मनाते थे। इस अवसर पर स्त्रियाँ मंगल-गीत गातीं थीं। घरों में तोरण बाँधे जाते, भाट स्तुतियाँ गाते, वरांगताएँ नृत्य करतीं और विविध वाद्य बजाये जाते थे। माता-पिता वस्त्र और आभरण भेंट में देकर स्वजनों को सन्तुष्ट करते थे। नामकरण भी माता-पिता ही किया करते थे (२।३।१-५)।

बाल कीड़ा : माता-पिता अपनो सन्तान को शिशु अवस्था में हाथों पर रखते थे। बाल्यावस्था में बालक अपनी माता के स्तनों से भी कीड़ा करता था (२।३।९)।

शिक्षा : बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध भी माता-पिता ही करते थे। कवि ने सन्तान के अति लाड़ को बहुदोषपूर्ण मानकर परस्पर में परामर्श करके शुभ मुहूर्त में उन्हें विद्याभ्यास हेतु उपाध्याय के पास भेजते थे (२।३।८-१२)।

विद्याभ्यास के विषयों में कवि ने अ इ आदि स्वर तथा कवर्ग आदि से सम्बन्धित अक्षर भेद, छन्द, संस्कृत-प्राकृत की विधियाँ, लिपियाँ और गणित का ज्ञान, काव्य का ज्ञान, जैनदर्शन का ज्ञान, मंत्र-तंत्र, औषधि-ज्ञान, संगीत, नृत्य और वाहन विधि का उल्लेख किया है (२।३ वत्ता, २।४।१-८)।

माता का पुत्र-स्नेह : माता को पुत्र का वियोग असह्य बताया गया है। रानी विजयादेवी पुत्र-वियोग में विलख-विलख कर रोती है। उसकी वेदान्त ऐलाह मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी इन करते बताये गये हैं (२१३१-५) ।

विभाता : वह स्त्री जिसने जन्म नहीं दिया किन्तु जिस सन्तान का उसने पालन किया है कवि ने उसे सौतेली माता की सज्जा दी है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इसका निश्च रूप दर्शाया गया है। अपने यहाँ आये और यीवन अवस्था को प्राप्त हुए अमरसेन बइरसेन पर ईर्षा कषा दोषारोपण करके हस्तिनापुर नरेश की रानी देवध्री राजा से उन्हें मारने का आदेश कराने में भी संकोच नहीं करती (२५१२-८, २३३८-१०, २१८२, २११२) ।

इससे सिद्ध है सौतेली माता अपने द्वारा पोषित सन्तान पर वैसा स्नेह नहीं करती जैसा वह अपने औरस पुत्र को स्नेह देती है।

भ्रातृ-स्नेह : कवि ने इस ग्रन्थ में भ्रातृ-स्नेह का आदर्श प्रस्तुत किया है। ग्रन्थ में धर्णकर और पुण्णकर दो भाई बताये गये हैं। इनमें बड़ा भाई अभर्णकर सेठ के घर स्वयं काम करता है। वह अपने छोटे भाई को काम करने नहीं भेजता। धार्मिक चर्चा करने में बड़ा भाई अपने छोटे भाई से परामर्श करने में कोई संकोच नहीं करता। इस प्रकार कवि ने इन भाइयों में बड़े भाई को अपने छोटे भाई के प्रति हादिक स्नेह देते हुए बताया है (११३९-१३) ।

इसी प्रकार अमरसेन और बइरसेन दोनों भाइयों का पारस्परिक स्नेह भी उल्लेखनीय है। सघन बन में एक आम्रवृक्ष के नीचे छोटे-भाई बइरसेन का रात्रि में पहरा देना और बड़े भाई अमरसेन का विश्राम करना तथा शज्य प्राप्त करानेवाला फल अपने बड़े भाई को देना, बड़े भाई को भोजन कराने के पश्चात् भोजन करना, छोटे भाई का बड़े भाई के प्रति प्रकट किये गये स्नेह का परिचायक है (२१११६, २१२१०, २१३५, ३११२-४) ।

जैसा स्नेह छोटे भाई का अपने बड़े के प्रति ऊपर दर्शाया गया है ऐसा ही बड़े भाई का छोटे भाई के प्रति प्रकट किया गया स्नेह भी प्रस्तुत ग्रन्थ में बताया गया है।

बड़े भाई अमरसेन को अपने छोटे भाई बइरसेन के विश्राम का भी ध्यान रहना, रात्रि में जागकर उसे मुलाना और स्वयं पहरा देना, बिछुड़ जाने पर उसकी खोज कराना और मिल जाने पर उसे उचित सहर्ष

सन्मान देना, युवराज पद देना आदि ऐसी क्रियाएँ हैं जिनसे बड़े भाई का अनुजन्सनेह प्रकट होता है (२।१२।१९-२०, ३।३।४-६, ३।४।४, ५।४) ।

नारी स्वभाव : प्रस्तुत ग्रन्थ में लज्जा नारी का आभूषण कहा है । कवि के अनुसार लज्जा विहीन स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी होती हैं । वे अपने पति को कुछ भी कहने में संकोच नहीं करतीं । राजा यशोधर अपनी शानी के द्वारा इसीलिए मारे गये थे और इसीलिए ही रत्नादेवी ने अपने पति का घात किया था (२।१०।६-९) ।

कवि की यह भी मान्यता है कि ग्राण कंठ गत हो जाने पर भी पुरुष अपनी गुप्त बात स्त्री से प्रकट न करे क्योंकि वह दूसरों के समझ उस गुप्त रहस्य को प्रकट किये बिना नहीं रहती । पुण्डरीक श्रावण ने अपना भेद अपनी स्त्री को बताकर अनेक कष्ट उठाये थे (३।३) । भेद लेकर स्त्री दुःख ही देती है । चारुदत्त को परदेश में इसलिए भटकना पड़ा था । गोपवती का भी एक ऐसा ही उदाहरण है (३।८।३।८-९) ।

वेश्या-स्वभाव : कवि ने कथा के माध्यम से वेश्या की कपट एवं लोभवृत्ति का निर्देश किया है, तथा बताया है कि वेश्यागामी पुरुष किस प्रकार दुःखी होता है । इस सम्बन्ध में उन्होंने बहरसेन का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

बहरसेन कंचनपुर की वेश्या के थहरी आता है । बिना किसी व्यापार के बहरसेन के पास प्रचुर धन देखकर वह इसका गुप्त भेद जानना चाहती है (३।४।५-७) और बहरसेन भी वह द्रव्य प्राप्ति का रहस्य उसे प्रकट कर देता है (३।६।१०-१२) । वेश्या-द्रव्य देनेवाले आम्रफल को लेकर बहरसेन को अपने घर से निकाल देती है । (३।७।५) ।

बहरसेन कथरी, पांबड़ी और लाठी पाकर पुनः कंचनपुर आया (४।३।७-९) । वेश्या उसे देखकर माया पूर्ण वचन कह करके घर ले जाती है तथा कपट पूर्वक उसकी आकाशगामिनी पांबड़ी ले लेती है (४।६) । बहरसेन बार-बार ठगे जाने से रुक्ष हुआ । लोहा लोहे से कटता है इस नीति के अनुसार वेश्या के कपट व्यवहार का उत्तर उसने कपट व्यवहार से ही दिया । बहरसेन हारा उसे गधी का रूप दिया गया तथा वह बहुत सत्तायी गयी (४।१२।६-१०) ।

वेश्या के स्वभाव का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि वह लोक में छोटा या बड़ा नहीं जानती । वह केवल द्रव्य का विचार करती है । द्रव्यवान् को ही वह सन्मान देती है । जो धन हीन होता है उस पुरुष को

शीघ्र त्याग देती है तथा हाथ पकड़कर अपने घर से निकाल देती है। लोभान्ध होकर वह नये-नये लोगों को शरण देती है। वह अपनी नहीं होती। कोई भी उसका चरित्र नहीं जानता है (शा३३-८) ।

तस्कर-वृत्ति : कवि ने कथा के माध्यम से यह तथ्य उजागर किया है कि ठग को महाठग मिल ही जाता है। चोर चोरी करके दुखी ही होते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में किसी योगी को तीन विद्याओं—कथरी, यष्टि और पांचड़ी का सिद्ध होना तथा चार चोरों द्वारा योगी का वध करके तीनों बस्तुओं का चुराया जाना बताया गया है। बटवारे पर चोर झगड़ते हैं। बड़रेसेन झगड़ा निपटाने का वचन देकर तथा चोरों से तीनों बस्तुएं लेकर और पैरों में पांचड़ी पहिन कर आकाश में उड़ जाता है। चोर हाथ मलते रह जाते हैं। माथा कूट-कूट कर रोते और करनी पर पछताते हैं (शा३११-१६) ।

इस प्रकार इस प्रसंग को देकर कवि ने समाज में चोरी न करने का भाव उत्पन्न करने का यत्न किया है जिसमें वे सफल हुए प्रतीत होते हैं।

दीन वचन : सज्जन पुष्प का कर्तव्य है कि वह अभिमान त्याग कर स्वाभिमान की रक्षा करे। पुण्यार्थी को दीन वचन प्रुक्त नहीं होते। कवि को भाव्यता है कि वन में हाथी, सिंह और सर्पों की सेवा करना अच्छा है, वृक्षों के पत्ते और कन्दमूल वा लेना अच्छा है, तुणों की शाया पर सो लेना अच्छा है और वृक्षों की छाल पहिन लेना भी अच्छा है किन्तु दोनों भरे वचन बोलना ठीक नहीं। सज्जन यदि अर्थ किहीन होता है तो वह जंगल में भले रह लेता है किन्तु दीन वचन नहीं बोलता। जो बुद्धिमान अभिमान रहित होकर स्वाभिमान की रक्षा करता है निष्चय से वह हाथी पर असवार होता है। भाई का धनहीन होना ठीक नहीं है (शा३१३-१८) ।

गुरु का स्वरूप और महत्व : कवि ने एक अक्षर का ज्ञान करनेवाले को भी गुरु को संज्ञा दी है तथा महत्व दर्शाते हुए लिखा है कि जो ऐसा नहीं मानता वह खान योनि में उत्पन्न होता है (शा१२०७-८, ११) । उन्होंने यह भी लिखा है कि मुरु का वध करनेवाला व्यक्ति मरकर नरक जाता है (शा१२१४) ।

यहाँ गुरु का अर्थ अद्यापक है। ये गुरु नहीं हैं जिन्हें जैन अपना आराध्य मानते हैं।

मार्ग : ये राजकीय कर्मजारी होते थे। राजा की आज्ञा से अपराधियों का वध करना इनका कार्य था। प्रस्तुत ग्रन्थ में ये राजा की

आज्ञा का पालन विवेक पूर्वक करते हुए बताये गये हैं। अमरसेन-बहुरसेन कुमारों के बध की राजाजा होने पर भी कुमारों को निर्दोष जानकर वे उनका धात नहीं करना चाहते। फलस्वरूप वे उन्हें अज्ञात स्थान में जाने को कहकर मुक्त कर देते हैं और कृत्रिम सिर ले जाकर राजा को कुमारों के मारे जाने का सम्बेदन दे देते हैं (रादृ४-१०, रादॄ७-१०) ।

इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि विवेक बुद्धि केवल उच्च वर्ण में ही नहीं निम्न वर्ण के लोगों में भी थी। जहाँ जब वे आवश्यक समझते समय-समय पर राजा के साथ कपट-व्यवहार भी करते थे। उनकी अवज्ञा करने में भी वे संकोच नहीं करते थे। यह सब वे केवल राजा की भलाई के दृष्टिकोण से करते थे, स्वार्थ-वश नहीं। कवि ने इस प्रसंग में उनकी द्वारदृष्टि का अच्छा परिचय दिया है।

आधिक स्थिति

प्रस्तुत ग्रन्थ में शहियासपुर नगर की तत्कालीन स्थिति का कवि ने भली प्रकार उल्लेख किया है। प्रथम सन्धि के तीसरे कड़वक में बताया गया है कि शहियासपुर के जिनालय ध्वजाओं से सुशोभित थे। उनकी शिखर पर पीत और पाण्डुर वर्ण की ध्वजाएँ फहराती थीं। भवन तोरणों और अद्वालिकाओं से सहित थे। राजमार्ग चतुर्षयों में विभाजित थे। उनमें कोलाहल रहता था। कहाँ चारों वर्ण के लोगों का निवास था। कहाँ कोई दीन-दुःखी दिखाई नहीं देता था। सभी दिव्य भोग भोगते थे। जन-जन में स्नेह भाव था। लोग व्यसनी नहीं थे। सदाचार का द्रतना अधिक प्रभाव था कि नगर में कहाँ चोर, चाड, कुसुमाल, दुष्ट, दुर्जन, घुङ्गु, पिसुन और हठी लोग नहीं थे।

बाजार में सोना, चाँदी, पीनल आदि का क्रय-विक्रय भी होता था। स्त्रियाँ भी बाजार आती थीं। मुख मार्जन हेतु पान खाने की प्रथा थी। पान की पीक के रंग से धरती रंगी हुई दिखाई देती थी। महिलाएँ स्वर्ण-भूषणों से मुसज्जित रहती थीं। शोल धर्म का वे भली प्रकार पालन करती थीं। सुरक्षा की दृष्टि से नगर के बाहर तीन कोट थे। इस प्रकार नगर के बाजार, महिलाओं के स्वर्णभूषणों और नगर के भवनों से कवि कालीन समाज की आधिक सम्पन्नता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

आधुनिक बैंकों जैसी व्यवस्था उस समय नहीं थी। सुरक्षा की दृष्टि से धन भूमि के भोतर या भज्जारों में रखा जाता था और धन का

स्वामी वहाँ रहकर उसकी देख रेख करता था (११३९, ३१११०) । रुहियासपुर नगर वर्णन से व्यापार आजीविका का प्रमुख साधन ज्ञात होता है । क्रय-विक्रय में मुद्रा के रूप में कीड़ियों का व्यवहार होता था (१२१) । मुद्रा के लिए द्रव्य और दीनार शब्द प्रयुक्त हुए हैं (३१२, १०) ।

भोजन

कवि ने खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय के भेद से आहार चार प्रकार का बताया है (१२२४) । इनमें जो मुख्यतः भूख बुझाने के लिए चबा कर खाये जाते हैं वे पदार्थ खाद्य कहलाते हैं । कवि ने ऐसे अभक्ष्य पदार्थों में द्वि दल अनाज और भांस का उल्लेख किया है (११५४६) ।

जिन पदार्थों के सेवन से स्वाद में वृद्धि होती है वे स्वाद्य पदार्थ कहलाते हैं । ऐसे पदार्थों में कवि ने गाजर, मूली, अचार, दही, बड़ा आदि के नामों का निर्देश किया है (११५४६) ।

लेह्य पदार्थ चौट कर खाये जाते हैं । अभक्ष्य पदार्थों में मधु एक ऐसा ही पदार्थ है (११३४) । पीने के योग्य पदार्थ पेय कहे जाते हैं । अभक्ष्य पदार्थों में मद्य (मंदिरा) और घोल (शब्दंत और मिकंजी आदि) ऐसे ही पदार्थ बताये गये हैं । पानी भी पेय पदार्थ है (११६४६, ६, ९) ।

कवि ने आञ्जफल का उल्लेख भी किया है तथा उसके साथ स्वाद किया को भी जोड़ा है (११२१०) । इससे स्पष्ट है कि कवि ने उसे स्वाद्य पदार्थ माना है । चूस कर खाये जाने से इसे चूस्य पदार्थ भी कहा गया है ।

बाजार-वर्णन प्रसंग में कवि ने ताम्बूल भक्षण की भी चर्चा की है । (११२२०) । यह स्वाद्य पदार्थ माना गया है । भोजन में छहों रसों के पदार्थ होते थे (३१२) ।

वस्त्र

कवि ने वस्त्रों के समयानुसार प्रयोगों का निर्देश किया है । उन्होंने मन्दिर के लिए ध्वल वस्त्रों के व्यवहार का (१२११) और भोजन के समय वस्त्र बदलकर भोजन करने का उल्लेख (२११२) किया है । वृक्षों की छाल भी वस्त्र का काम ज़रूरी थी (३१३४८) । दो प्रकार के वस्त्रों का कवि ने उल्लेख किया है—देवंगइं (३१४) और कुसमइ वस्त्र (५१८५) । ये वस्त्र राज धराने के या धनिक लोग पहिजते थे ।

आभूषण : स्त्रियाँ दायी-चायी दोनों और सोलह-सोलह आभूषण पहिज कर शृंगार करती थीं (३१५) । कवि ने इन आभूषणों के नामों का

उल्लेख नहीं किया है। पुरुषों के आभूषणों में सिर पर पहिना जानेवाले मुकुट, हाथों के कंकण (कढ़ा), कानों के कुण्डल, कटि ग्रदेश की मेसला और पैरों के बजनेवाले तूपुरों का उल्लेख करते हुए बताया है कि इनका प्रयोग राजधराने के लोग करते थे (५।१८।४-५)।

काव्योपकरण

रस, अलंकार, गुण-दोष आदि काव्य के उपकरण हैं। प्रस्तुत काव्य में इन उपकरणों का अनायास ही प्रयोग हुआ है।

रस : कवि ने ऐसी घटनाओं का नियोजन किया है जिनमें काव्यात्मक रसों का सुन्दर उल्लेख हुआ है। काव्य में शृंगार आदि नी और वात्सल्य सहित दस रस माने गये हैं। प्रस्तुत काव्य में निम्न रसों के उल्लेख प्राप्त हैं—

शृंगार रस : प्रस्तुत काव्य के नगर, बन और नर-नारो के सौन्दर्य चित्रण में शृंगार रस की अभिव्यक्ति हुई है। इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है महणा की पत्नी के गुणात्मक सौन्दर्य का उल्लेख करने वाली निम्न पंक्तियाँ—

तं पण्डिणि पण्डि-णिवद्ध देह । णामे लेमाही पियसणेह ॥
मुरसिंघुरनग्नि सइवह वि लील । परिवारहु-पोसणु सुद्धसील ॥
णर-रथणहं ण उप्पत्तिखाणि । जा बीणा इव कलयैठि-वाणि ॥
सोहगमरुव चेलणिय दिट्ठ । सिरि रामहु-सीधा जिह वरिट्ठ ॥

[१।५।१-४]

करुण रस : यह इष्ट वियोग जनित अवस्था में होता है। अपने पुत्र राजा के हारा मरवाये जाने के समाचार जात करके रानी विजयादेवी के विलाप प्रसंग में इस रस का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है—

विजयदि रोवइ भुव हसोय । हा णरवइ कि किउ पइइ हेय ॥
णउ याणिउ जुताजृत देव । दुड़ि सुणि वयणइणि वहसेव ॥
णिद्वैस अकज्जे किरण-स्तेय । माराविय णंदण रणि-अज्जे ॥
हा हा इ वदइय कियउ तुज्जु । देव मणह मणोरह पुज्ज तुज्जु ॥
तह रुणु सुणेपिणु अइस दुक्षिण रोवंति भव्व तिरयंच-पवित्र ॥

[२।६।१-५]

यहाँ विजयादेवी का शोक करना स्थायोभाव है। मृत पुत्र आलम्बन तथा पुत्रों के मरण से कारण स्वरूप राजा (देवदत्त) और रानी (देवश्री) उद्दीपन विभाव हैं। रानी विजयादेवी का रुदन, प्रलाप, हाहाकार करना, राजा (देवदत्त) की निन्दा करना आदि अनुभाव हैं। मोह,

स्मृति और चित्ता संचारीभाव हैं। इस प्रकार इस अवतरण में करुण रस के सभी अंगों का समावेश किया गया है।

रीढ़ रस : रानी-देवश्री अमरसेन-बहरसेन के पराक्रम को न लह सकने से राजा से उनका वध कराने के लिए उनके द्वारा अपने शीलभंग करने का प्रयत्न करने सम्बन्धी मिथ्यारोपण करती है। यह सब मुनकर क्रोधावेग में हुई राजा की रीढ़ मुद्रा का कवि ने निम्न पंक्तियों में सुन्दर चित्रण किया है—

तं सुणेचि पहु कूरह रुट्ठउ । गउ जाणाइ पवंचु पिय झुट्ठउ ॥
हृक्कारि वि मायंग रउह्हइ । कुमरह मारणत्थ खल-खुद्दह्हइ ॥
रे मायंगहु परतिय-मत्तहु । अमरसेणि बहसेणि कुपुत्तहु ॥
मारहु वेए महु णचिरावहु । विण्णि वि सिर खुडि महु दिक्खावहु

[२१३-१०]

यहाँ राजा का रुट्ठ होकर क्रोधित होना स्थायीभाव है। अमरसेन-बहरसेन आलम्बन और रानी की चेष्टाएँ उद्दीपन भाव हैं। मातांगों को जोरों से बुलाना, कुमारों को मारकर उनके कटे हुए सिरों को दिखाने की उन्हें आज्ञा देना आदि अनुभाव हैं तथा आवेग, असूया, पत्नी-मोह आदि संचारी भाव हैं। कवि की इन पंक्तियों में इस रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

बीर रस : बहरसेन द्वारा वेश्या को गधी बनाये जाने और उसके परिजनों के सुरक्षा हेतु निवेदन करने पर राजा अमरसेन और बहरसेन के बीच हुए युद्ध-प्रसंग से कवि ने बीर रस का उल्लेख किया है—

तं णिसुणेविणु णरवइ कुद्धउ । णिय दलु मुक्कउ वइरि विरुद्धउ ॥
ते वयणाय वि कह्हिं असुद्धहु । मारु मारु पभणेहिं विरुद्धहु ॥
तं जंपहि रे पाविय णिरिधण । कोलवाल किउ मारिउ दुज्जण ॥
तइ किउ लंजिय रासहि कीई । इव सम्पत्ती तुव जम-दूर्द्दृ ॥
मुणिवहसेणि सुहउ दुह-न्यणह्हइ । मारिय जट्टिणी वत्तं सयलह्हइ ॥
के णट्टिय गय णरवइ सरणह्हइ । के लज्जि वि गय वण तवयरणह्हइ ॥
पड्डिउ भजणउ पुरयणु णद्धउ । एं हरि भीह्हिं गय-गणु भद्धउ ॥
पुक्कारंत णरवइ णिसुणेप्पिणु । सरणाई णवयार धरेणिणु ॥
धायउ णरवइ सेणु लए विणु
जइ थिउ अरि जहसिरि संपत्तउ । जम रुवइ धावंतु तुरंतउ ॥
मारु मारु पभणंतु सु कुद्धउ । रे कहि जाहि जमगगइ लद्धउ ॥

[४१३-११-११]

यहीं अमरसेन और वइरसेन का युद्ध में विद्यमान उत्साह स्थायीभाव है। अमरसेन की वइरसेन को पराजित करने की चेष्टा उद्दीपन-विभाव और वइरसेन आलम्बन विभाव है। अमरसेन की सेना अनुभाव और साहस, गर्व तथा मारने का हेतु देते हुए मारो-मारो शब्दोच्चारण करना संचारी भाव है। युद्ध में पराजय होने पर सौनिकों का राजा की शरण में जाना, लज्जित होकर तपश्चरण करने वन चले जाना, भगदड़ मच जाना, और इस परिस्थिति में राजा का अकेले ही युद्धभूमि को ओर दौड़ जाना आदि प्रसंग का उल्लेख करके कवि ने युद्ध की स्वाभाविक स्थिति का भी सुन्दर दर्शान कराया है।

भयमनक-रस : कवि ने वन-वर्णन प्रसंग में वन की स्वाभाविक स्थिति का भली प्रकार विवरण किया है। वह निम्न प्रकार है—

वहुभूमि चह वि गम वणि गहणि । जहि कुल-कुलंति तख्वरसन्वणि ॥
 जहि मणुव ण दीसह सउण तहि । अइ सघणह तण अंकुर वि जहि ॥
 जहि गुजहि सीह भयंकराइ । दंतिय चिक्कारहि मह घणाइ ॥
 जहि के करति साओ भर्ति । वहु कोल वसुह पुणु पुणु खण्ठि ॥
 कदसिय सददइ घू घू करत । वाइसहि सद् तत्थाइ करत ॥
 सददूल-सीह-चित्ताइ-रोज्ज्ञ । गडडे-संवर-मिय-महिल वुज्ज्ञ ॥
 लउगा-मज्जारइ सेहि कुज्ज्ञ । अइ दुदु जीव जे मणि-विरुज्ज्ञ ॥
 कत्थइ हरिणह हरि हारयति । णडलाइ-सप्प-संग्रह करति ॥
 जहि-भूय-पिसायहि संचरति । डाइणि-साइणि-जोयणि भर्ति ॥
 जहि जमु संकह गच्छतएण । कि मणु यण मरहि सरंत एण ॥

[२०१२-२१]

प्रस्तुत अक्षरण में भय स्थायीभाव है। वृक्षों की सघनता एवं स्थार, सिंह, चीता, रोज, गैँडा, साँवर, हरिण, भैंसा, सेही आदि वन-पशुओं का सद्भाव आलम्बन तथा मनुष्यों का अभाव, सिंहों की गर्जना, हाथियों की चिक्कार, मुना कुत्तों का केके करना, वन शूकरों का जमीन खोदना, उलूकों का घू-घू शब्द करना, कौओं का काँव काँव करना, मिहों का हरिण पकड़ना, सर्व और न्योले का लड़ना, भूत-पिशाच, डाकिनी-शाकिनी और योगिनियों का घूमना आदि उद्दीपन भाव हैं।

अद्भुत रस : स्वर्ण में उत्पन्न जीव के वर्णन प्रसंग में इस रस की निष्पत्ति दिखाई देती है—

सणिकुमर-सग्नि ते वे वि जाय । उष्णाथसिलाहि वि जमु पाय ॥
विभिय जो कहि ते दस-दिसाइ' । कोयहं ठाणु वि किं पुण्याइं ॥

[२२१-२]

यहाँ स्वर्ग में उत्पन्न होने में विस्मय होना स्थायीभाव, स्वर्ग आलम्बन भाव और उत्पाद शिला पर उत्पन्न होना उद्दीपन भाव है। ससम्भ्रमित होना अनुभाव और आन्ति व्यभिचारी भाव है।

शान्त रस : प्रस्तुत काव्य में इस रस की बहुलता है अमरसेन-बइरसेन दोनों भाई बन में एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने के पश्चात् निम्न विचार करते हैं—

ते जाणहि गच्छहि भूमि भाय । ते पथ चालहि णं कु विवराय ॥
संसाह असाह वि माणि मुणेहु । हो लोय हो पुण्यासउ करेहु ॥
जि पाकहु सासपन्धउ वि साह । ण वि जोयहु जें भव-दुहह-भार ॥

[२२२४-२५]

इन पंक्तियों में दर्शाये गये अमरसेन बइरसेन के अन्तर्मुखी-परिणाम स्थायीभाव हैं। संसार की असारता का बोध आलम्बन भाव है। पुण्यास्त्रव और शाश्वत-पद की प्राप्ति के भाव उद्दीपन विभाव हैं और सांसारिक द्रुख भार के प्रति उदासीनता यहाँ संचारी भाव है।

वात्सल्य रस : कवि की इस रचना में वात्सल्य रस का भी समायोजन द्रष्टव्य है—

माया-पियरहो णेहु जणं तहं । वियसिय मृदुहु सयणहि रंजतइं ॥
करि कराह जुवइहि णिज्जंतइं । बालइ माय-धणे कीलंतइं ॥

[२२३८-९]

यहाँ बालक के प्रति उत्पन्न स्नेह स्थायीभाव है। बालक आलम्बन तथा बालक की कीड़ाएँ—माता के स्तन से खेलना उद्दीपन विभाव हैं। माता-पिता का स्नेह प्रकट करना, स्त्रियों का बालकों को हाथों-हाथों पर रखना अनुभाव और स्वजनों का शिशु मुख देखकर हृषित होना संचारी भाव है।

अलंकार

काव्य के मुख्य दो अंग माने गये हैं—शब्द और अर्थ। ये दोनों अलंकारों से विभूषित होकर काव्य की उल्लङ्घता का बोध कराते हैं। दोनों के अलंकार पृथक्-पृथक् होते हैं। प्रस्तुत काव्य में प्राप्त अलंकार निम्न प्रकार हैं—

अनुप्रास : प्रस्तुत काव्य में अनुप्रास के पाँच भेदों में छेकानुप्रास और अन्त्यानुप्रास अलंकारों का एक साथ प्रयोग हुआ है। पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं—

मारु मारु पभर्णतु सुकुद्धउ ।
ते ऋदि जाहि जमगद लद्धउ ॥ ११३१२१

यहाँ 'मारु मारु' पद में म और र व्यंजनों के सम्बद्धाय का एक ही कम में पुनरावृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार तथा पाद के अन्त में संयुक्त द और व्यंजनों सहित उ स्वर की आवृत्ति होने से अन्त्यानुप्रास अलंकार भी है। इस काव्य में इस अलंकार का प्रत्येक यमक में प्रयोग हुआ दिखाई देता है। वृत्यनुप्रास का प्रचुर प्रयोग हुआ है। उदाहरण स्वरूप निम्न यमक द्रष्टव्य है— चउहुद्य चच्चर दाम जत्थ ।

वणिवर ववहरहि वि जर्हि पयत्थ ॥ १३१६

इस यमक में च और व वर्णों की अनेक बार तथा थ वर्ण की एक बार आवृत्ति हुई है। वर्णों की ऐसी आवृत्ति में वृत्यनुप्रास कहा है। एक ही स्थान से उच्चरित व्यंजनों के प्रयोग में श्रुत्यनुप्रास बताया गया है। कवि ने ऐसे व्यंजनों का प्रयोग भी बहुत किया है। उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है एक यमक की पंक्ति—

‘जर्हि वियरहि वर चउवण्ण लोघ’ । १३१०

इस अद्वाली में तालु स्थान से उच्चरित ज, य, च वर्णों का प्रयोग होने से यहाँ श्रुत्यनुप्रास है।

उपमा : कवि ने उपमेय के साथ उपमानों के भी प्रायः उल्लेख किये हैं। यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

एहाणु कराइ विदुहु वधवेहि । पहिराविय वत्थइं ससि समेहि ॥

—१२११

यहाँ वस्त्र चन्द्रमा के समान बताये गये हैं। वस्त्र उपमेय है और शशि उपमान। चन्द्रमा का वर्ण धबल माना जाने से उपमान शशि उपमेय-वस्त्रों की उज्ज्वलता (सफेदी) का सूचक है। उपमान और उपमेय दोनों का वर्ण समान होने से उपमा अलंकार है। यहाँ सम शब्द सादृश्यता का वाचक है।

स्मरणालंकार : चारण मुनियों को देखकर अमरसेन-बहरसेन को शूर्व भव में ऐसे मुनियों को अपने द्वारा आहार कराये जाने का स्मरण हो

आता है। कवि ने कथा के इस प्रसंग में स्मरणालंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। द्रष्टव्य हैं निम्न पंक्तियाँ—

पुणु दिदु कुमारह भउ सरे वि । पुब्वहं भवाई इणु समु णिएवि ॥
चिवहारिय धर समावियाई । भृजाविय भोयणु अप्यु भाई ॥

[५६।१३-१४]

रूपक अलंकार : प्रस्तुत काव्य में कवि ने रूपकों का प्रयोग करके अपने भावों को स्पष्ट किया है। उदाहरणार्थ—

जो अइरवाल कुल कमल भाणु ।
सिंघल कुबलयहु वि सेयभाणु ॥ १।४।३

प्रस्तुत यमक में कवि ने चौधरी चीमा का परिचय प्रस्तुत किया है। उन्होंने उन्हें अग्रवाल कुल रूपी कमल के लिए सूर्य और सिंहल गोत्र रूपी कुबलय के लिए चन्द्रमा बताया है। जैसे कमल सूर्यन्तेज को पाकर और गुलाल चन्द्र-रसियाँ वे एक विजित हो जाते हैं ऐसे ही अग्रवाल कुल रूपी कमल तथा सिंहल गोत्र रूपी कुबलय चौधरी चीमा से विकसित हुए थे। यहाँ चौधरी चीमा को कवि ने सूर्य और चन्द्र का रूपक दिया है। ये दोनों रूपक उपमेय के गुणों की अभिव्यञ्जना करते हुए काव्य-सौन्दर्य की छाँकी प्रस्तुत कर रहे हैं।

उत्त्रेक्षा अलंकार : इस अलंकार के अनेक प्रयोग मिलते हैं। कवि ने इसका प्रयोग ननु अर्थवाची संस्कृत शब्द 'ण' पूर्वक किया है। उदाहरणार्थ प्रस्तुत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

सद्वाल सतोरण जत्थ हम्म ।
मण-सुह संदायण णं सुकम्म ॥ १।३।५

प्रस्तुत पंक्तियों में शहियासपुर नगर के भवनों का वर्णन करते हुए उन्हें अद्वालिकाओं और तोरणों से युक्त बताया गया है। मन को ये भवन सुखकारी लगाने से कवि ने कल्पना की है कि "ये भवन ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे सत्कर्म हों" अर्थात् इनसे मन को ऐसा सुख मिल रहा है जैसा सुख सत्कर्मों से प्राप्त होता है। यहाँ प्रस्तुत भवनों में अप्रस्तुत सत्कर्म की संभावना किये जाने से उत्त्रेक्षा अलंकार है।

स्वभावोक्ति अलंकार : कवि ने प्रस्तुत काव्य में जीवों के स्वभावों की अभिव्यक्ति भी की है। बालक स्वभाव को बताने के लिए उन्होंने उसे

अपनी माता के स्तन से क्रीड़ा करता हुआ बताया है। पद्म निम्न प्रकार है—
करि कराइ जुवहर्हि णिज्जंतहि ।
बालह मायन्थणे कीलतहि ॥ २३९

कवि ने भयानक रस के उदाहरण में प्रस्तुत अवतरण में वन-भृशों के स्वभाव का बड़ा ही मामिक चित्रण किया है। सघन वन कैसा होता है कवि ने उसका जीता-जागता वर्णन किया है।

यमक अलंकार : कवि ने प्रस्तुत काव्य के एक ही पद्म में से ऐसे दो समान शब्दों का प्रयोग भी किया है जिनके अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य हैं कवि की वे पंक्तियाँ—

इय चउधरियहं वयणे, वियसिय वयणे
पंडिएणा हरसेविणु । ११३।

इस अवतरण में वयणे शब्द का दो बार व्यवहार हुआ है। इनमें प्रथम वयणे का अर्थ है वचन और दूसरे वयणे का अर्थ है—वदन (मुख)। इस प्रकार यहाँ यमक अलंकार की अभिव्यक्ति की गयी है।

इलेष अलंकार : कवि ने शृणुभूर नगर के वर्णन प्रसंग में इस अलंकार का यथेष्ट प्रयोग किया है। उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य हैं प्रस्तुत काव्य की दो पंक्तियाँ—

कर-पीडणु पाणिग्रहणु जर्हि । १११२।२

पक्खवाउ जर्हि वयसंचार्यहि । १११२।५

यहाँ प्रथम पंक्ति में करपीडणु शब्द में और दूसरी पंक्ति में पक्खवाउ शब्द में इलेष है। इनमें करपीडणु के दो अर्थ हैं—(१) हाथ पकड़े जाने की पीड़ा। (२) टेक्स देने में उत्पन्न पीड़ा (कष्ट)। इसी प्रकार पक्खवाउ के दो अर्थ हैं—(१) पंख गिरना (२) पक्षपात (अपने-पराये का भेद-भाव)। इन पंक्तियों का अर्थ है—जहाँ करपीडा पाणिग्रहण में ही होती थी अर्थात् कर (टेक्स) देने में पीड़ा नहीं होती थी। जहाँ पंखों का गिरना पंक्तियों के संधात से ही होता था अर्थात् पक्षपात (भेद भाव) लोगों में नहीं था।

भाषा

कवि मणिकरुराज ने प्रस्तुत ग्रन्थ में दो भाषाओं का प्रयोग किया है—संस्कृत और अपञ्चाश। इनमें संस्कृत-भाषा में रचे गये श्लोकों का उल्लेख कवि ने दो प्रकार से किया है—(१) आशीर्वादात्मक विचारों को

ल्यक्त करने के सन्दर्भ में और (२) अपने कथन के साक्ष्य में। इनमें आशीर्वादात्मक श्लोकों में प्रस्तुत रचना के प्रेरक चौधरी देवराज के प्रति मंगल कामनाओं की अभिव्यक्ति दर्दी है। ये श्लोक सन्धियों के अन्त में आये हैं। इनकी संख्या दस है। आरम्भिक तीन तथा पाँचवीं और छठीं सन्धि के अन्त में एक-एक और चौथी सन्धि के अन्त में तीन तथा मात्रवीं सन्धि के अन्त में दो श्लोक अंकित हैं।

सन्धियों के मध्य में विषयों को और स्पष्ट करने के लिए नीति प्रद श्लोक आये हैं। इनकी संख्या इक्कीस है। ये प्रथम सन्धि में तीन, दूसरी सन्धि में सात, तीसरी सन्धि में सात, चौथी सन्धि में चार, पाँचवीं सन्धि में एक और सातवीं सन्धि में एक है।

श्लोकों की स्थिति निम्न प्रकार है—

सन्धि- क्रमीक	कठबक और श्लोक	संख्या	सन्धि के अन्त में	कुल
१	२०— २१—	१ २	१	४
२	४— ६— ७— १०— १२—	२ ३ ५ १		
३	२— ५— १३— ७—	१ १ ३ २	१	८
४	२— ४— ६— ७—	१ १ १ १		
५	१४—	१	१	२
६	—	—	१	१
७	९—	१	२	३
		२३	१०	३३

इन श्लोकों में कठवकों के मध्य अथवा अन्त में जिन श्लोकों का उल्लेख किया गया है वे इतर रचनाओं से लिये गये तथा सन्धि के अन्त में दिये गये वे श्लोक जिनमें चौधरी देवराज को मंगल कामनाएँ की गयी हैं स्वयं कवि के द्वारा रचे गये प्रतीत होते हैं। कहीं-कहीं श्लोकों पर प्राकृत और अपभ्रंश का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कुछ पदों में छन्द और व्याकरण की अशुद्धियाँ भी हैं।

अपभ्रंश : कवि माणिकराज के द्वारा व्यवहृत भाषाओं में अपभ्रंश दूसरी भाषा है। प्रस्तुत भाषा में कवि ने इस ग्रन्थ में बुन्देली धोली के अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। अपभ्रंश-व्याकरण सम्बन्धी कुछ तथ्य निम्न प्रकार हैं—

१. 'ऋ' अवनि के स्थान पर अ इ ई उ ए और अर तथा रि के प्रयोग हुए हैं। उदाहरणार्थ शब्द निम्न प्रकार हैं—

णच्चंति (नृथन्ति)—१११११। घरि (गृहे)—४५४१६।

किय (कृत)—८१८। धमिय (अमृत)—८४४८।

दीसइ (दृश्यते)—३५५१०। पुच्छइ (पृच्छति) ६४४१४।

उसदभपुर (ऋषभपुर) ११२१०। गेह (गृहम्) ४१०१३।

भायर (भातृ) २५५४। रिसि (ऋषि) १५५१५।

२. ऐ स्वर के स्थान में अइ और ए के प्रयोग। यथा—

कइलास (कैलाश) ६५५१०। कइरव (कैरव) १४४१३।

चेयालय (चैत्यालय) ५११४।१३। देव (दैव) ५५५१९।

३. औ इ स्वर के स्थान में 'उ' स्वर के प्रयोग। यथा—

कउडी (कीड़ी) ५११। कउसिय (कौशिक) २५५१६।

चउक्क (चीक) ११२१७। चउपहि (चौपाई) १८८१२।

चउधरि (चौधरी) १४४७। चउरासी (चौरासी) ६४३९।

४. 'उ' स्वर के स्थान में 'ओ' स्वर का प्रयोग। यथा—

ओयरि (उत्तर कर) १५५२२। ओच्छालह (उच्छालह) ११५४।

५. 'ओ' स्वर के स्थान में 'ओ' के प्रयोग। यथा—

चोर (चीर) ४३४११-१२।

६. श, ष और स के स्थान में 'स' के प्रयोग। यथा—

लेसु (लेश्या) ७१५५१३। आयास (आकाश) १२२, ३१२।

आसा (आशा) ११६४२२। आसीस (आशीष) ५४४१६।

दोसु (दोष) ११५४१३। तिसु (तृष्णा) ११५४।

- अबसह (अबसर) १।१।१२ । अंसु (आंसु) ६।४।५ ।
७. क के लिए य वर्ण का प्रयोग । यथा—
पयास (प्रकाश) ५।२।४ । सयल (सकल) १।७।३ ।
८. क के लिए उ स्वर का प्रयोग । यथा—
सउण (शकुन) २।९।१३ ।
९. ख के स्थान में झ, ह और ष के प्रयोग । यथा—
खोणु (क्षीण) १।२।८ । परोखि (परोक्ष में) १।६।२९ ।
सुह (सुख) १।३।५ । दुहिय (दुखी) १।३।१५ ।
षडरस (खडरस) १।२।२।१४ । षाइस्ताइ (खादिष्टि) १।१६।१२ ।
१०. 'ग' के स्थान में इ और य के प्रयोग । यथा—
अइरवाल (अग्रवाल) १।६।८ । वीयराय (वीतराग) २।७।१४ ।
११. घ के स्थान में ह के प्रयोग । यथा—
जलोह (जलोध) १।९ । हरि (घर) ३।२।८ ।
१२. च के स्थान में य का प्रयोग । यथा—
चियरहि (विचरन्ति) १।३।१० ।
१३. ज के स्थान में य और इ के प्रयोग । यथा—
णिय (निज) १।४।१ । पइ (प्रजा) १।४।१ ।
१४. ण के स्थान में न के प्रयोग । यथा—
पुन्न (पुण्ण) १।१।२।१५ । नवकार (णवकार) १।१।९।१० ।
१५. त के स्थान में इ, य, उ, प के प्रयोग । यथा—
मइ (मति) ५।५।७ । गइ (गति) ७।३।१२ ।
गय (गत) १।२।६ । चेयणु (चेतन) १।७।८ ।
पछिहार (प्रातिहार्य) १।६।११ । उप्पत्ति (उत्पत्ति) १।५।३ ।
१६. थ के लिए ह के प्रयोग । यथा—अहवा (अथवा) १।७।११ ।
धासणाहु (पाश्वनाथ) १।१।१३ । रहु (रथ) १।४ ।
१७. द के स्थान में इ, उ, ए, य और व के प्रयोग । यथा—
आइणाहु (आदिनाथ) १।६।१४ । भेउ (भैद) १।८।४ ।
पएस (प्रदेश) १।९।१३ । सिव पथ (शिव-पद) १।१।६ ।
उवाहि (उदधि) १।२।२ ।
१८. ध के स्थान में छ का प्रयोग यथा—
कोह (क्षोध) १।१।८ । महुर (मधुर) १।४।६ ।
१९. अपवाद स्वरूप कुछ शब्दों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र न के स्थान में ण का प्रयोग हुआ है । अपवाद स्वरूप प्रयुक्त न मुक्त शब्द—

तिन्नि ११५१३, नर ११५१५, चुन्न चुन्न ११५१७,
नासा, कल्ला ११५१९, बल्ली ११५११, नहू ११६०७,
निक्कलसि ११६०९, नाहि ११६०४, नही ११६०१९,
मन्नह ११६०२०, मन ११६०२२, नियम ११६०१०, घन्न, ११६०१५।

२०. प के स्थान में व और उ के प्रयोग। यथा—

तव (तप) १२०८। गोडर (गोपुर) ११२०१९।

२१. क के स्थान में ह का प्रयोग। यथा—

सहलु (सफलु) ५१७०१३।

२२. ब के स्थान में सर्वत्र व का प्रयोग हुआ है।

२३. म के स्थान में ह के प्रयोग। यथा—

चंदप्पहु (चंदप्रभ) ११६६। आहरण (आभरण) ३५०८६।

२४. य के स्थान में ज के प्रयोग। यथा—

पुज्जु (पूज्य), सुज्जु (सूर्य) १११८। जुत्त (युक्त) १११५।

२५. व के स्थान में इ का प्रयोग। यथा—

कइ (कवि) १७०४।

२६. श के स्थान में ह का प्रयोग। यथा—

दहदिहि (दशदिशि) १७०८।

२७. अ के स्थान में स का प्रयोग। यथा—

सावय (श्रावक) ११११।

२८. त्स और ष्स के स्थान में छ्ल के प्रयोग। यथा—

बच्छलु (बात्सल्य) १२००४। अच्छर (अप्सरा) ४१२१।

२९. सामान्यतः र् युक्त वर्ण द्वित्व वर्ण में प्रयुक्त हुए हैं। यथा—चंदप्रभ—
चंदप्पहु १११५, अनुक्रम में—अनुक्रमि १२०३, निर्गन्ध—निर्गंथ
१२०१०।

३०. सरेफ वर्ण द्वित्व रूप में सामान्यतः प्रयुक्त हुए हैं। यथा—सूर्य—
सुज्जु १११३, धर्म—धर्म १११९, कर्म—कर्म ११११२, निजित—
णिज्जित १२०४, कीर्ति—किर्ति १२०८, हम्र्य—हम्म ११३५,
मार्ग—मग ११३७, वर्ण—वण ११३१०, पूर्ण—पुण ११३११, दुर्जन—
दुज्जन ११३१४।

३१. ल्थ और व्य क्रमशः ल्ल और व्व में प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

कल्याण—कल्लाण ११११५। सल्य—सल्ल ११३३।

भव्य—भव्व १२०५, दिव्य—दिव्व ११३१०, काव्य—कव्वु १७।

३२. कुछ वर्ण रेफ युक्त नहीं होकर भी द्वित्व रूप में प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

खग (खड़ग) ६५। पुगल (पुद्गल) ११६।१३।

३३. कुछ संस्कृत शब्द पूर्णतः परिवर्तित होकर प्रयुक्त हुए हैं। यथा—
खुद (पूद्र) ८।३।१४। खुल (लुब्ध) ५।४।७।१८।

पुहइ (पृथिवी) ५।२।१६। खड (ज्ञद) १।१।७।८।

३४. शब्दों में वर्णों का क्रम भंग भी हुआ है। यथा—

रहस (हर्ष) १।९।१७। विह्यसर (विहसकर) १।१०।

३५. अकारान्त शब्दों में प्रथमा एवं द्वितीया के एक वचन रूपों में शब्दों के अन्तिम अ के स्थान में उ प्रयुक्त हुआ है। यथा—करमचंदु (करमचन्दः) १।४।७, दासु (दासः) १।४।७, चितु (चितः) १।४।९, हंसु (हंसः) १।४।१३ आदि।

३६. तृतीया विभक्ति के एक वचन में ऐ, ए और एण प्रत्यय शब्दों के अन्त में प्राप्त होते हैं। यथा—जैं (जेन) १।२।१, जैण (जेन) १।२।२, रुवैं (रुपेण) १।४, जिनचरणादयेण (जिनचरणोदयेन) १।४।६ आदि।

३७. तृतीया विभक्ति के बहु वचन में एकार तथा हि प्रत्यय का आदेश प्राप्त होता है। यथा—

ललियक्षरोहि (ललितच्छरैः) १।१०।१४। सहेहि (स्मरैः) १।१०।१४।

३८. अकारान्त शब्दों में पञ्चमो विभक्ति के एक वचन में हं, एं और इ तथा सु प्रत्यय शब्द के अन्त में पाये जाते हैं। यथा—

तवहं (तपात्) १।२।१२। वर्णें (वचनात्) १।७।

भावें (भावात्) १।६।३। सद्दें (शब्दात्) १।४।२०।

तासु (तस्मात्) १।६।५। उवरि (उदरात्) १।५।५।

३९. अकारान्त षष्ठी बहु वचन के रूपों में सु और हं प्रत्यय प्रयोग में आये हैं। यथा—

तासु (तस्मा॒स्) १।२।३। जोव्रहं (जीवाना॒स्) १।१।८।१०।

४०. किंगओं में संस्कृत-श्राकृत का प्रभाव है। कुछ किंवा रूप ऐसे भी व्यवहृत हुए हैं जो आधुनिक भाषाओं से निर्मित हुए हैं। यथा—

पीटइ = पीटना है (१।५।४४)। रोबइ = रोता है (२।६।१)।

क्रिड्क्षजइ = काढ़ दें (४।५।७)। कहइ = कहता है (१।९।१४)।

चड़ि = चढ़कर १।६।२१। घटइ = घट जाता है १।५।१७।

४१. पूर्वकालिक कुदन्त के लिए क्रियाओं में इ, इवि, एइ, एप्पिण, एविण, एवि के प्रयोग किये गये हैं। यथा—

वन्द < वंद + इ = वंदि ११०। गम् < जा + इ = जाइ १९१८।

जा—< जाण + इवि = जाणिवि ७।९।७। नम् < न + इवि = नइवि १।२।२।१।

लभ् < लह + इवि = लहेवि १।२।७।१। वृ < धार + इवि = धारिवि १।९।१।

च्यव् < चब + एइ = चबेह ७।९।१।२।

कृ < कर + एप्पिण = करेप्पिण १।१०।

दा < द + एप्पिण = देप्पिण १।१०।

हृष्ट < हरस + एविण = हरसेविण १।७।

धुण < धुण + एवि = धुणेवि ५।२।८।

फत् < पड + एवि = पडेवि २।५।८।

४२. कवि ने ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है जिनका सम्बन्ध भारतीय भाषाओं से सरलता पूर्वक स्थापित किया जा सकता है। कुछ शब्द निम्न प्रकार हैं—

लाड (२।३।१०) = प्यार। डॉ० राजाराम जैन के अनुसार यह शब्द ब्रज, बुन्देली, भोजपुरी, बघेली, भैथिली, अवधी और राजस्थानी बोलियों में आज भी उसको का त्यों पाया जाता है।^१ बुन्देली बोली के शब्दों की प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रचुरता है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द हैं—

चोर (१।३।१४), जाति (१।९।२०) = झट (शीघ्र)। घण (१।१।२।८) = स्तन। लहणा-देणा (१।१।६।९) = लेना-देना। मूला (१।१।९।४) = मूली। सूरण (१।१।९।५)। बड़ा (१।१।६।६) = दही-बड़ा। अथाण (१।१।६।६) अथाना (अचार)।

तुरंत (२।१।६) = सत्काल। संझकाल (४।१।४) संजा (संध्या)। घर दार (४।१।८) = घर-द्वार। घर (४।३।१७)। जिणि (१।१।८।१०) = नहीं अर्थ में प्रयुक्त जिन शब्द।

आउ (२।२।४) = आयु। आजू (१।१।४।३) = आज। उजड (१।१।७।४) = ऊजड़। काउड़ी (५।१।१) कौड़ी। कल्ल (१।१।६।४) = कल।

१. रहघृ-ग्रन्थाबली भाग एक : सोलापुर २० १९७५ का प्रकाशन, भूमिका पृ० ७२।

किलेस (७३) = क्लेश । गणगउर (११८८६) = गतगौर । घोल (१-१९४६) = मिश्रण । चउभास (११२८६) = चौमासा । चउहटु (५११-१२) = चौराहा चंद्रोवा (५१४४१५) । छांह (११५१९) = छाया । जीउ (१७४५) = जीव । जीमइ (११६४६) जीमता है । झुटुज (२५६७) = झूठा । थाण (२५११३) = स्थान विशेष । दाम (१३६६) = द्रव्य । दाहिण (११६१७) = दाया । परदेस (३१३२) । परदेसिउ (११६१८) = परदेशी । परभवि—(११६१३) = पर भव में । परबसि (११५११) परबश में । पहरवा (२१११६) = पहरेदार । पाणो (११४४४) = पानी । फिरि (२७४१०) = फिर भाइ (१५११४) = भाई । भूलउ (५१६१२) भूल । मण (३६३३) = मन । माला (६१७९) = हार । मुणि (७४६१९) = मुनि । मुसेबि (४१११८) मूस कर । राति (११९१५) रात । रोस (७१११९) = क्रोध । बररी (११६१७) = बैरी । बल (५५४१५) = ताकत । विलखइ (५१२१८) विलखता है । बुढ़ि (५१११४) = बूढ़ा । बोलइ (२५१११) = बोलती है । सल्ल (५११३२) बाधा । हालि (११७४२) = तथ्काल । हरिस (२१८१०) = हथ = असेणि ३११६ सीढ़ि आदि ।

शैली

प्रत्येक कवि या लेखक की लेखन-शैली में कोई न कोई विशेषता अवश्य रहती है । पण्डित माणिक्कराज की लेखन-शैली रोचक है । पढ़ते समय आगे-आगे को विषय-वस्तु जानने को अभिलाषा बनी रहती है । कवि ने कथा को रोचक बनाने के लिए अन्य कथाओं को भी गुणित किया है ।

इलेष के गाध्यम से नगर-वर्णन रोचक बनाये गये हैं । उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है क्रष्णभपुर नगर वर्णन । इस प्रसंग में कवि ने लिखा है कि इस नगर में दण्ड (यष्टि) छातों में ही था अर्थात् प्रजा में दण्ड व्यवस्था नहीं थी । इसी प्रकार भग्नता-विधुरजनों में, मार-इक्षुसार पर, मद-हाथियों में, सच्छुदाम-सिंह में, करपीड़न-पाणिग्रहण में, शारीरिक मलिनता-मृनियों में, याचना-शिशुओं में, कृपणता-मधुमक्खियों में, पक्षपात-पक्षि-संघात में, रक्तिमा-खगमुख में, कलह-रमण प्रसंग में, प्रियवियोग-नख-छेदन में, गहन-पूर्णमा के जाँद में, मानभंग-पर अनुराग में, निर्गुणता-इन्द्रधनुष में और शारीरिक कठोरता-मित्रियों के स्तनों में ही थी । इसका तात्पर्य है ये दोष प्रजा में नहीं थे (११२१८) । कवि ने नगर-वर्णन प्रसंग में नगरों का और जन-वर्णन प्रसंग में वनों का सांगोफांग वर्णन किया है । वन वर्णन में

बन्य-पशुओं का न केवल उल्लेख ही किया है। अपितु उनके स्वभावों को भी दर्शाया है। सभी प्रसंगों में स्वाभाविक म्यानि निश्चित की गयी है। उपमाओं के द्वारा विषयों की सरस बनाया गया है।

प्रश्नुरुद्धरण-विद्य-विद्याति से की जायी है तथा कडवकों में एक घता के योग से सोलह मात्रिक पढ़दिया छन्द व्यवहृत हुआ है।

कृतज्ञता-व्यापन

अमरसेणचरित-अप्रकाशित अपञ्चश ग्रन्थ के आमेर शास्त्र भंडार में होने की जानकारी सर्वप्रथम मुझे आदरणीय डॉ० पन्नालाल जी साहित्याचार्य, सागर से प्राप्त हुई थी। उन्होने बहुत समय पूर्व अप्रकाशित ग्रन्थों की एक सूची प्रकाशित की थी जिसमें इस ग्रन्थ का भी नाम था।

विधि का योग है। जैन विद्या संस्थान श्रीमहावीरजी में मेरी नियुक्ति हुई और मुझे आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर की पाण्डुलिपियों को देखने का अवसर हाथ लगा। यहाँ अमरसेणचरित की पाण्डुलिपि प्राप्त कर अतीव प्रसन्नता हुई।

प्राचीन लिपि के पढ़ने का अभ्यास न होने से आरम्भ में कठिनाई आई किन्तु स्व० मूलचन्द्र जी शास्त्रो श्रीमहावीरजी का सहयोग मिलने से यह कठिनाई भी न रही। धीरेन्धीरे अभ्यास बढ़ा और लिपि भी समझ में आने लगी। श्री शास्त्री जी के सहयोग से एक बार सम्पूर्ण ग्रन्थ पढ़ गया और अब भी लिखा किन्तु अर्थ को अवृद्धियाँ बनी रही। इसी बीच रहघूरन्धावली भाग एक देखने का अवसर मिला। पीछे दी गयी शब्दानुक्रमणिका देखकर प्रसन्नता हुई। इसकी सहायता से अर्थ को विसंगतियाँ दूर कीं।

इसके पश्चात् किया हुआ अनुवाद व्याकरण सम्मत प्रतीत नहीं हुआ अतः तीसरी बार फिर हिन्दी अनुवाद तैयार किया।

यह सच है कि जब सफलता का योग होता है तब निमित्त भी स्वयं-मेव मिल जाते हैं। सीधाग्र से जयपुर से विहार कर परम पूज्य आचार्य वात्सल्यमूर्ति १०८ श्री विमलसागर जी महाराज सर्वाधिक श्रीमहावीरजो पधारे। उनसे मिलने वीर दर्शन करने के अवसर भिले। इसी बीच अभीष्टज्ञानोपयोगी संघस्थ उपाध्याय १०८ श्री भरतसागर जी और आर्यिका स्याद्वादमती माता जी से भी परिचय हुआ। विद्वत्-अमो होने से उनका मुझे स्नेह मिला। वह स्नेह ऐसा पतलवित हुआ कि उन्होंने मुझे

साहित्यिक चर्चाएँ तथा परामर्श करने का अवसर भी दिया। संघ के श्री सोनागिरि पहुँचने पर आचार्य श्री के अभिनन्दनग्रन्थ में प्रकाशनार्थ लेख प्रेषित करने हेतु कहा गया। यथा समय लेख भेजकर मैंने मुरुआजा का पालन किया। इस सबका यह परिणाम हुआ कि मैं संघ का और अधिक स्नेह-प्राप्त बन गया।

सन्मार्गदिवाकर आचार्य १०८ श्री विमलसागर जी महाराज की हीरक जयन्ती के मांगलिक अवसर पर परम पूज्य ज्ञानदिवाकर उपाध्याय मुनि श्री भरतसागर जी महाराज की सूजनूज और परम पूज्या आर्थिका स्याद्वादमती माता के संकल्प के परिणामस्वरूप ७५ जैन ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना निर्मित हुई।

मेरे निवेदन पर अब तक अप्रकाशित अपञ्चन्ता भाषा की रचना 'अमरसेणचरित' की भी योजना में सम्मिलित किया गया। उपाध्याय श्री और आर्थिका माता के इस श्रुत-स्नेह के प्रति मैं विनत भावों से उनके चरणाविन्दी में क्षमशः नमोऽस्तु और वन्दामि निवेदन करता हूँ।

जैन विद्या संस्थान श्री महावीर जी के संयोजक श्री ज्ञानचन्द्र जी 'विन्दुका' और निदेशक प्रो० प्रबोधचन्द्र जी जैन की सौजन्यता से मुझे 'अमरसेणचरित' की फोटो प्रति प्राप्त हुई अतः उनकी इस आत्मीयता एवं सौजन्य के लिए मैं संयोजक और निदेशक महोदयों का हृदय से आभारी हूँ।

परमादरणीय डॉ० दरबारीलाल जी 'कोठिया', बीना, डॉ० फन्नालाल जी साहित्याचार्य, सागर, डॉ० कमलचन्द्र शोमानी, डॉ० भागचन्द्र जैन भास्कर, नागपुर, डॉ० राजाराम जैन, आरा, डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन, नीमच और स्व० श्री मूलचन्द्र जी शास्त्री, श्रीमहावीरजी ने इस कार्य में समय समय पर योग्य परामर्श देकर अनुगृहीत किया है। मैं इन विद्वानों के स्नेह पूर्ण मार्गदर्शन के प्रति विनत भावों से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

ब्र० प्रभा पाटनी के पत्रों ने कार्य में उत्साह बढ़ाया है। आलस्य को पास नहीं बाने दिया। कार्य शीघ्र पूर्ण करने की तक्षरता बनाये रखने में बहिन पाटनी का योगदान स्मरणीय रहेगा। उन्हें मेरा सादर नमन है।

प्रकाशनमाला के संयोजक ब्र० प० धर्मचन्द्र जी शास्त्री प्रत्यक्ष और परीक्षा में सदैव प्रेरणा स्रोत रहे हैं। इस योजना में उनका मुझे सदैव सहयोग मिला है अतः सस्नेह उनका भी मैं आभारी हूँ।

मेरी धर्मपत्नी श्रीमतो पुष्पलता जैन ब्र० ए०, जामाता श्री विनय-कुमार एम० ए० (दमोह) और प० हरिश्चन्द्र शास्त्री जैनदर्शनाचार्य,

मुरैना, पुत्र-पंकज जैन, और मंजू (विनीता) बी० ए०, संजू (सख्ता) बी० ए०, भारती एम० ए०, मृत्यु तथा ज्योति पुत्रियों का इस सन्दर्भ में जो विविध प्रकार से सहयोग मिला है उसे भुलाया नहीं जा सकता । मैं सभी के अभ्युदय की कामना करता हूँ ।

आदरणीय पिता वैद्य छोटेलाल जी के विद्यास्नेह और दानबीर स० सि० कुन्दनलाल जी जैन, सागर की उदारता के परिणामस्वरूप ही मुझे इस कार्य के करने की क्षमता प्राप्त हुई है । मैं इन पुनीत आत्माओं को सविनय प्रणाम करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ ।

श्री गणेश दिगम्बर जैन विद्यालय, सागर और श्री दि० जैन वर्णी गुरुकुल पिसनहारी मंडिया, जबलपुर के उपकारों को कैसे भुलाया जा सकता है । यह पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी द्वारा संस्थापित इस विद्यालयों में मुझे अध्ययन करने का सुयोग मिला है । मैं इन विद्यालयों और पूज्य वर्णी जी का ऋणी हूँ ।

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् सोनागिरि (म० प्र०) का भी आभारी हूँ जिसकी अनुकम्पा से प्रस्तुत रचना प्रकाशित हो सकी है । शुद्ध, सुन्दर और स्वच्छ मुद्रण के लिए मुद्रणालय के व्यवस्थापक महोदय भी हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं ।

अत्त में मैं उन सभी महानुभावों के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने जाने, अनजाने इस कृति के सम्पादन, अनुवाद तथा प्रकाशन में सहनेह सहयोग दिया है । मैं उन लेखकों का भी आभारी हूँ जिनकी रचनाओं का अध्ययन इस कार्य में सहायक हुआ है ।

प्रमादवश या अज्ञानवश त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है । मैं प्रस्तुत रचना में ही अशुद्धियों के लिए विद्वान् पाठकों से क्षमाप्रार्थी हूँ । सुधी पाठकों से मेरा सविनय अनुरोध है कि वे मुझे त्रुटियाँ अवश्य सूचित करने की कृपा करें जिससे कि आगामी संस्करण में उनका परिमार्जन किया जा सके ।

डॉ० कस्तूरबन्न जैन 'सुमन'

जैन विद्या संस्थान, धामहावीरजी

दि० १५/१२/९०, शतिवार

सिरि पंडियमणि-माणिकक-विरहु

अमरसेणचरित

संधि—१

[१-१]

ध्रुवक

पणविवि तिथ्यंकर, सुहकारण वर, कहमि मोक्षसुहु-रसभरित ।

भवियहैं सुहकारण, सुवर्णिवारण, हड़ सिरि अमरसेणचरित ॥

सिरि रिसहणाहु जिणुसुहणिहाणु । सयल वि तिथ्यंकरजिणुपहाणु ॥१॥
सिरि अजिउणाहु वरसोक्षकारि । जिणु सयलदोसहुगाहणिवारि ॥२॥
संभव तिथ्यंकर सुहणिहाणु । अहिणंवण भवियहैं विगदणासु ॥३॥
सिरि सुमझणाहु महसुट्ठुलीणु । पउमप्पहु परमप्पथर्हि लीणु ॥४॥
गयरायबोस जिणुवर सुपासु । हड़ पायभत्तु तुहु अरहदासु ॥५॥
चंदप्पहु जिणु सुहवर वि कंजु । जिणु पुण्यप्पत्तु शिल्लोयवंदु ॥६॥
जिणु सीयलु सयलव्ययपवीणु । सेयसु वि सिवपथणिच्छलीणु ॥७॥
वासवेण महिउ जिणु वासुपुञ्जु । दिघलु वि विमलयरगुणोहि सुञ्जु ॥८॥
तिथ्ययरु अणंतु वि अंसचुषकु । अरिकोहुमाणमयसयलमुषकु ॥९॥
जिणु धम्मु वि धम्मागमणिहाणु । सिरि संतिजिणेसख जयपहाणु ॥१०॥
सिरि कुंधु पालयउ विमलणाणु । अरणाहु वि लोयालोयजाणु ॥११॥
सिरि मलिलणाहु गद्दकम्मवाहु । मुणिसुव्यउ सिवरमणोहि-णाहु ॥१२॥
पुणु एमि जिणेनु कम्महं कयंतु । सिरि एमिणाहु भयर्वंसु संतु ॥१३॥
सिरिपासणाहु बहुविश्वणासु । पुणु बड़माणु चउगड़ वि णासु ॥१४॥
जसु कल्लाणहं खित्तु वि पविसु । जि पयडिउ जिणवरव्यमसुसु ॥१५॥

घन्ता

ए सयल वि तिथ्यंकर, हुव होसहिं घर, ते सह पणविवि पुहमि वर ।

पुणु अरहहं वाणी, तिजवपहाणी, णियमणि आरि वि कुमझहरा ॥१॥

श्री पञ्चतमणि-माणिक्य क विरचित अमरसेनचरित

सन्धि--१

[१-१]

तीर्थकर-स्तुति एवं अहंक-वाणी-वन्दना

घटा—मैं (कवि माणिक्यराज) परमसुख के कारण-स्वरूप तीर्थकरों को प्रणाम करके मोक्षसुख रूपी रस से पूरित और भव्य जनों को सुख देने तथा दुःखों का निवारण करने में कारण स्वरूप श्री अमरसेन चरित्र का वर्णन करता हूँ ॥१॥

जिन-श्रुत के निधान सभी तीर्थकरों में प्रथम तीर्थकर श्री ऋषभनाथ, सभी दोषों और दुर्गतियों का निवारण तथा परमसुख के करने वाले जिनेन्द्र श्री अजितनाथ, सुखों के निधान तीर्थकर सम्भवनाथ, भव्यजनों के विद्वानों का नाश करने वाले अभिनन्दननाथ, श्रेष्ठ विचारों में लीन श्री सुमनिनाथ, परमपद में लीन एशप्रभ, राग-द्वेष से रहित जिनेन्द्र सुपाहर्वनाथ, कमल को विकसित करने वाली चन्द्रमा की किरणों के समान सुखकारी जिनेन्द्र चन्द्रप्रभ, तीनों लोकों में बन्ध जिनेन्द्र पृष्ठदन्त, सम्पूर्ण द्रतों में प्रबीण जिनेन्द्र शीतलनाथ, शिवपद में नित्य लीन रहने वाले श्रेयोरनाथ, इन्द्र द्वारा अवित जिनेन्द्र वासुपूज्य, विमलतर गुणों से सूर्य स्वरूप विमलनाथ, क्रीध, मान, माया रूपी शाश्वतों और मरण से मुक्त अनन्तनाथ, धर्म और आगम-ज्ञान के भण्डार जिनेन्द्र धर्मनाथ, जग में प्रधान जिनेश्वर श्री शान्तिनाथ, विमलज्ञानधारी और चीटी आदि क्षुद्र जन्तुओं पर दया करने वाले श्री कुन्त्युनाथ, लोकाकाश और अलोकाकाश के ज्ञाता अरनाथ, कर्म-न्यायि से रहित श्री मलिननाथ, शिवरमणी के रवामी मुनिसुब्रत, इसके पदचात् कर्मों के कृतान्त-स्वरूप जिनेन्द्र नमि, भयभीतों के शान्तिदाता श्री नेमिनाथ, बहुविघ्नों का नाश करने वाले श्री पात्तर्वनाथ और चारों गतियों के नाशक, जिनके कल्याणकों के पवित्र क्षेत्र हैं, तथा जिन्होंने धर्मसूत्र रूप में प्रकट किया उन जिनवर दर्ढमान वीं प्रणाम करता हूँ । मैं (कवि) अहंतों का दास और उनके चरणों का भक्त हूँ ॥१-१॥

घटा—इम सभी तीर्थकरों को और जो इस धरणी पर हा चुके हैं तथा आगे होंगे उन सभी का प्रणाम करने के पदचात् तीनों लोकों में प्रधान, कुमति को दूर करने वाली अहंतों की वाणी को निज हृदय में धारण करके (उसे नमस्कार करता हूँ) ॥१॥

[१-२]

पुण गोपमुग्णहु क नमउ णाणि । जें अकिलउ सम्मह जिणह वाणि ॥ ॥
 पुण जेण पथत्थइं भासिथइं । भवउवहितरणपोयणसुहार्द ॥२॥
 पुण तासु अणुककभि भुणिपहाणु । णिय चेघणस्थ तम्मउ सुजाणु ॥३॥
 हय बहुसद्वत्थह सुझणिहाणु । जि इन्द्रुवधरणिजिलउ पंचवाणु ॥४॥
 विणाणकलालयपाहपत्त । उद्धरिय भवद जे सम वि सल ॥५॥
 संतद्य ताह मुणिगच्छणाहु । गय रायदोस संजद्य साहु ॥६॥
 जें ईरिय गंथहुकहपबीणु । णिय आणो परमप्ययह (हि) लीणु ॥७॥
 तवतेयणियत्तणु [किउ वि] खीणु । सिरिखेमकित्तिपट्टिहिपबीणु ॥८॥
 सिरि हेमकित्ति जि हयउ णामु । तहु पट्ट वि कुमर वि सेणु णामु ॥९॥
 गिर्गंथदवालउ जहवरिट्ठु । जि कहिउ जिणागमभेड सुट्ठु ॥१०॥
 तहु पट्टिण विट्ठज बुहपहाणु । सिरि हेमचंडु भयतिमिरभाणु ॥११॥
 तं पट्टि धुरंधरु वयपबीणु । वर पोमणंदि जो लघहु (हु) खीणु ॥१२॥
 तं पणविवि गियगुर सीलखणि । णिगंथु दवालउ अनियक्षाणि ॥१३॥
 पुणुपभणाभि कह सवणाहिराम । आयणहु जा सद्वत्थराम ॥१४॥

घत्ता

गोपम एवें जा कहिय, सेणियस्त सुहवायणि ।
 जा बुहयणचितामणिय, धम्मारसहु तरंगिणि ॥१॥

[१-३]

महिवीडि पहाणउ गुणवरिट्ठु । सुरह वि मणिवभउ जणह सुट्ठु ॥१॥
 वर तिणिणसालमंडिडि पवित्तु । जं इह पंडिडिसुरपारपत्तु ॥२॥
 रहियासु वि णामें भणित' इट्ठु । अरियणजणाहु हियसल्ल कट्ठु ॥३॥
 अहि सहहि गिरंतर जिणणिकेय । पंडुरसुवण्णधय सुहसमेय ॥४॥
 सद्वालसलोरण जत्थ हम्म । मणसुह संदायण जं सुकम्म ॥५॥
 चउहट्टय चलवरवाम जत्थ । वणिवर चवहट्टहि वि जहिं पथस्थ ॥६॥

[१-२]

गौतम-गणधर की सुति एवं गुरुस्मरण

जानी गौतम-गणधर को नमस्कार करने के पश्चात् जिसके द्वारा अहंत वाणी सम्यक् रूप से कही गयी, भवसागर से पार होने को सुखकर नीका के समान पदार्थ बताये गये, उनके अनुक्रम में निज आत्मा के स्वरूप को भली प्रकार जानकर उसमें तन्मय रहनेवाले प्रधान मूलि आगम के शब्द और अर्थ के भण्डार हुए जिसके द्वारा चन्द्रमा को धारण करनेवाले (शिव) और (काभदेव के कथित) पाँचों वाण जीते गये, विज्ञान और कला के भण्डार तथा उसके असीम ज्ञान को प्राप्त जिसके द्वारा समान रूप से भव्य जीव पार लगाये गये, राग-द्वेष से रहित संयमी उस साधु-सत्तति के मुनिवृन्द के स्वामी जिसके द्वारा प्रवीणतापूर्वक (इस) अन्ध-कथन की प्रेरणा की गयी, निज ध्यान (और) परमपद में लीन होकर (जिसने) तपतंज से निज तन क्षीण किया उन प्रवीण श्री खेमकीर्ति के पट्ट में जिसका हेमकीर्ति नाम था, उसके पट्ट (में) ददालु यतियों में वरष्ठ निर्यन्थ जिसके द्वारा भली प्रकार जिनागम के भेद कहे गये वे कुमारसेन उनके पट्ट पर बैठे बुद्धिमानों में प्रधान मदरूपी अनुष्ठान के लिए सूर्य स्वरूप श्री हेमचन्द, उनके पट्ट में व्रतों में धुरन्धर प्रवीण और तप से क्षीण, शील की खदान, दयालु, अमृत के समान वाणीवाले निर्यन्थ अपने गुरु श्रेष्ठ पद्मतन्दिको प्रणाम करने के पश्चात् शब्द और अर्थ से सुन्दर कण-सुखद कथा कहता है, श्रवण करें ॥१-१४॥

घटा—जो बुद्धिमानों को चिन्तामणि रत्न और धर्मसंसरूपी नदी के समान है, राजा श्रेणिक वी सुखदायिनी वह कथा गौतम-गणधर ने इस प्रकार कही है ॥२॥

[१-३]

शहियास (रोहतक) नगर-वर्णन

पृथिवी-मण्डल में प्रधान, गुणवरिष्ठ (और) देवताओं के मन में भी भली प्रकार विसमय उत्पन्न करनेवाला, श्रेष्ठ और पवित्र तीन प्राकारों से सुशोभित इस पृथिवी मण्डल पर पार प्राप्त देव-पर्णिष्ठ बृहस्पति के समान तथा बैरियों को हृदय की कठिन शल्य स्वरूप प्रतीत होनेवाला, जहाँ पांडुर एवं स्वर्ण-वर्णवाली शुभ ध्वजाओं से युक्त जिन-मन्दिर सिरन्तर शोभाधमान रहते हैं, जहाँ सत्कर्मों के समान मन को सुख देनेवाले अद्वालिकाओं और तोरणों से युक्त भवन हैं, जहाँ चारों ओर द्रव्य की चर्चा और श्रेष्ठ

मगण-गण-कोलाहल समत्थ । जहि जण गिवसहि संपुण्ण अत्थ ॥७॥
जहि अवणम्पि यिय विविहर्भंड । कसवट्ठिहि कसियहि भम्मखंड ॥८॥
जहि कसहि महायग सुद्धबोह । गिच्छंविय पुया-दाण-सोह ॥९॥
जहि वियराह वरचउवणलोय । पुणेण पवासिय दिव्वभोय ॥१०॥
ववहारचार संपुण्ण सब्द । जहि सत्त वसणमयहोण भव्व ॥११॥
सोवण्णचूडमंडियविसेस । सिगारभारकिय गिरवसेस ॥१२॥
सोहगणिलय निणधम्मसोल । जहि माणिणि आणमहुघलील ॥१३॥
जहि ओरचाडकुसुमाल बुट्ट । दुञ्जन सखुदखलपिमुणधिट्ट ॥१४॥
णवि दोसहि कहि महि बुहियहोण । पेम्माणु रत्त सब्द जि पवीण ॥१५॥
जहि रेहहि हय-पय-वलिय-मगु । तंबोल-रंग-रंगिय-धरम्म ॥१६॥

घला

सुहुलच्छज सायरु, णं रयणायरु, बुहयणजुड णं इंवजरु ।
सत्थत्थहि सोहिड, अणमणमोहिड, णं वर णयरहं एहु गुरु ॥३॥

[१-४]

तहि साहिसिकवद्व सामि सालु । णिय पहुपालइ अरियणभयलु ॥१॥
तं रज्जि वसह अणिवह पहाणु । तुलियजणपोसणु गुणणिहाणु ॥२॥
जो अइरवालु-कुल-कमल-भाणु । सिघल कुवलयहु वि सेयभाणु ॥३॥
मिच्छत्तवसणवासण-विरत्तु । जिणसासणिगंथहु पायभत्तु ॥४॥
चौधरियणाम चीमा सतोसु । जो वसह मंडणु सुयणपोसु ॥५॥
तं भामिण गुणगणसोलखाणि । मालहाही णामें महुरवाणि ॥६॥
तं णंवणु णिरुवम-गुण-णिवासु । चउधरियकरमचंडु अरुहदासु ॥७॥
जिणधम्मोवरि जे बहुगाहु । गिव हियइ इट्टु पुरयणहु णाहु ॥८॥

व्यापारो जहाँ पदार्थों का व्यापार करते हैं, मार्ग लोगों के कोलाहल से पूर्ण रहते हैं, जहाँ धन-सम्पन्न लोग रहते हैं, जहाँ दुकानों में विविध प्रकार की सामग्री भरी पड़ी रहती है, (जहाँ) कसीटियों पर भीम्यखण्डों (स्वर्ण, रजत आदि) को कसा जाता है, जहाँ नित्य अचंना, पूजा, दान से सुशोभित शुद्ध-निर्यल-चुद्धि से सम्पन्न महाजन निवास करते हैं, जहाँ उत्तम चारों वर्ण के लोग पुण्य से प्राप्त दिव्य-भोग भोगते हुए विचरण करते हैं, जहाँ भी आचार-व्यवहार से परिपूर्ण हैं, भव्य पुरुष (जहाँ) सप्त व्यसनों और मद से रहित हैं, सोने के कणों से विशेष रूप से मणित (आँर) सभी प्रकार के शृंगार किये हुए सौभाग्य की निधान, जैनधर्म और शोलगुण से युक्त जहाँ की मानिनी नारियाँ मानपूर्वक श्रेष्ठ लीलायें किया करती हैं, जहाँ चौर, कफटी, लुटेरे, दुष्ट, दुर्जन, धुद्ध, खल, पिशुन, धृष्ट, दुखी एवं अनाथ जन पृथिवी पर दिखाई नहीं देते। सभी जन प्रवीण और प्रेमासक्त हैं। जहाँ घोड़ों के खरों से दलित मार्ग सुशोभित रहते हैं, धरातल पान के रंग में रँगा रहता है (ऐसा एक) रुहियास नाम का सुन्दर (नगर) कहा है ॥१-१६॥

घटा—सुख, समृद्धि एवं यश के लिए मानो पहुँ रत्नाकर था, बुध-जनों से युक्त मानों यह इन्द्रपुरी ही था। शास्त्रार्थों से सुशोभित तथा जनभन को मोहित करनेवाले सर्वश्रेष्ठ नगरों का मानों यह गुह ही था ॥३॥

[१-४]

ग्रंथ-प्रणयन-प्रेरक चौधरी देवराज की वंश-परम्परा

वैरियों को भय उत्पन्न करनेवाले शाहंसाह राजा सिकन्दर उस नगरी में अपनी प्रजा का पालन करता है। उस राज्य में दुखी जनों का पोषक, गुणों का निधान और व्यापारियों में प्रधान व्यापारी रहता है। वह अग्र-वाल अन्वय रूपी कमल के लिए सूर्य और सिंहल (गोत्र) रूपी पानी में होनेवाले नीले कमल के लिए चन्द्रमा के समान (था)। (वह) मिथ्यात्म, सप्त-व्यसन (और) इन्द्रिय-वासनाओं से विरक्त तथा जिन वासन और निर्गत्यों के चरणों का भक्त था। (उसका) नाम चौधरी चीमा था। वह (अपने) वंश का भूषण और सुजनों का पोषक तथा (उन्हें) संतुष्ट रखने-वाला था। माल्हाही नाम की उम्मी स्त्री थी। (वह) मीठी वाणी बोलती थी। गुणों के समूह और शील की खदान थी। उसका पुत्र चौधरी करम-चन्द अहंतों का सेवक और अनुपम गुणों का निवास-स्थल था। जिसके

जिणवरणोवच्छ वि जो वविस् । आयमरसरक्षउ जासुचित् ॥१॥
 चद्गरित् चउब्बिहृ-संघभारु । आयरित् वि सावद्यधरित् आरु ॥२॥
 चउ-वाणवंत् । एं गंधहृत्थ । वियरेह णिल्ल जो घम्मपर्थि ॥३॥
 सम्भसरयण-लंकिय सरीक । कणयायलुच्च णिककंपु शीरु ॥४॥
 सुहि परियणकइरब-वणहि हंसु । जिणवरसहमज्जे लहु संसु ॥५॥
 तं भामिण दिउचंवही-मियच्छ । जिणसुय-गुर-भत्तिय-सील-सुच्छ ॥६॥
 तं जायउ णंदण सीलखाणि । चउ महण । नामे अमियवाणि ॥७॥
 शण-कण-कंचण-संपुष्ण संत् । पंडियहं वि पंडित गुणमहंतु ॥८॥

घटा

दुहियणकुहणासण, बुहकुल्सासण, जिणसासणरहभुरधबलु ।
 विजजालभुधीघर, रुबे एं सर, अहणिसु किय विहु उद्वरणु ॥४॥

[१-५]

तं पणहृणि पणइ णिकद्वेह । नामे लेमाही फियसन्नेह ॥१॥
 सुरसिंधुरगह सह बहु वि लील । परिकारहु पोसण सुद्धसील ॥२॥
 णर-रथणहं एं उपसिखाणि । जा बोणा इव कलयैठि वाणि ॥३॥
 सोहभरलय-वेलणिय बिटु । सिरि रामहु सीया जिहु बरिटु ॥४॥
 तहि उवरि उवणा रयण चारि । एं णंत-आउषकसुरुच-धारि ॥५॥
 तं यज्ज्ञ पहमु वियसिय सुवत्तु । लक्षण-एक्षण किड वसणचत्तु ॥६॥
 असुलियसाहसु सहसेकगेहु । चाएण कणु-संपहिं गेहु ॥७॥
 धीरें-गिरि गंभीरें-सायरु । एं अरणीधरु एं रवि-ससिसुरु ॥८॥

द्वारा जीनवर्म पर देह आबद्ध की गयी है, (जो) पुरजनों के स्वामी राजा के हृदय को इष्ट था। जो जिनेन्द्र के चरणोदय से पवित्र (था)। जिसका चित्त आगम-रस में मान रहता था। जिसने चारों प्रकार के संघों का व्यवधार वहन किया था और शावक के आचार को भली प्रकार पाला था। जो नित्य धर्म के भार्ग में विचरता था। चारों प्रकार के दान से ऐसा प्रतीत होता था मानो (वह) गन्धहस्ति हो। जिसने अपनो देह सम्यक्त्वरत्न से अलंकृत की थी। (जो) कनकाचल के समान निष्कम्प और धैर्यवान् था। परिजन रूपी वैत कमल-वन में वह सुधी हंस स्वरूप था। जिनेन्द्रभक्तों के धीर्घ में जिसने प्रशंसा प्राप्त की थी। उसकी मृगनयनी दिउ-चन्द्रही स्त्री थी। (वह) जिन-शूत और गुरु की भक्त तथा शील से पवित्र थी। उसने शील की खदान, अमृत के समान भिष्ठ भाषा-भाषी चौधरी महणा नाम का पुत्र उत्पन्न किया। वह धन-धान्य-स्वर्ण से सम्पन्न, पंडितों का पंडित और गुणों से महान् तथा शान्त (था) ॥१-१६॥

घटा—वह दुखी जनों के दुखों का नाश करनेवाला, बुधजनों के समूह का शासन करनेवाला, जिन-शासन रूपी रथ की धवल धुरी, विद्या और लक्ष्मी का घर, रूप से मानो समुद्र था। (इसने) अहनिजि वैभव का विकास किया था ॥४॥

[१-५]

चौधरी देवराज का कौदुम्बिक-परिचय

(महणा का) लेमाही नाम की पत्नी देह में निबद्ध (प्राणों के समान) प्रेमी-प्रीतम (महणा) से प्रेम करती थी ॥१॥ देवगंगा की गति के समान मन्दगामिनी, ब्रतों से लीला करनेवाली संती, शील से पवित्र (वह) परिवार का पोषण करनेवाली थी ॥२॥ मनुष्य रूपी रत्न उत्पन्न करने की मानो खदान थी। वाणी-बोलने में बीणा वाद्य तथा कोयल के समान थी ॥३॥ अपने सुहावने सौन्दर्य तथा वस्त्रों से श्री राम की सीता जैसी श्रेष्ठ दिखाई देती थी ॥४॥ उसके उदर से चार (पुत्र) रत्न उत्पन्न हुए। (वे ऐसे प्रतीत होते थे) मानो अनन्त चतुष्टय ही मनुष्य रूप धारण करके आ गये हों ॥५॥ उन चारों में प्रथम पुत्र प्रसन्न मुख, लक्षावधि लक्षणों ने युक्त, वयसनों से मुक्त, अतुलित साहसी, सहस्रों को अकेले ही पकड़ लेनेवाला, गृह-सम्पदा के त्याग से (दानी) कर्ण के समान, पर्वत के समान धैर्यवान्, समुद्र के समान गम्भीर होने से ऐसा प्रतीत होता था मानों शेष नाग या विष्णु हों, देवी

णं सुरतरु पद्मोपणु सुहहरु । णं जिणधम्मुपयडु थिउ दसवह ॥१॥
 जि णियजसि पूरिथकाणि महि । जो णिय-सुहपालउ सुयण सुहि ॥२॥
 दिउराजु णामु चउधरिय सुहि । जिणधम्म-धुरंधरु धम्मणिहि ॥३॥
 विणाण-कुसलु वीयउ सुपुत्तु । जो मुणह जिणेसर-धम्मसुत्तु ॥४॥
 सुपवोण राय आवार कज्जि । गंभीरज सायह बहु गुणजिज ॥५॥
 आमु चउधरिय बिसुङ्गभाङ्ग । जो णिवमण-रंजह बिविहभाङ्ग ॥६॥
 अणु वि लीयउ रिसिवेब भत्तु । गिहभार-धुरंधरु कमलबत्तु ॥७॥
 चुगना णामें चउधरिय उत्तु । जो करह णिक्क उषयार तत्तु ॥८॥
 पुण चउधउ णंदणु कुलगणात्तु । अवगमिय त्रयल बिल्लाखिलात्तु ॥९॥
 जिणसमयामयरस-तिल चित्तु । छह्ना णामें चउधरिय उत्तु ॥१०॥

घटा

ए घउ भाइय, जिणमहाराहय, दिउराजु णामु गुरवउ सुमहि ।
 जाणा सुह बिलसह, अइयण-पोसह, णिय-कुल-कमलज्जु पुहहि ॥१॥

[१-६]

अण्णाहि बिणि जिणवरगंथ-दस्थु । सम्यतरयणलंकिय हियत्यु ॥१॥
 गह अह-गेहि दिउराजु साहु । चउधरिय राय-रंजण-पयासु ॥२॥
 भाबै बंदिउ तहं पासणाहु । पुण जिणगंथाणहं णविवि साहु ॥३॥
 सिद्धांतअत्थ भाविय मणेण । पुरयणसुहयारउ सुरधणेण ॥४॥
 तहं दिट्ठउ पुण सरसइ-णिवासु । माणिकराजु जिणगुरहं वासु ॥५॥
 तेण वि संभासण कियउ तासु । जो गोठि पयासइ बहु सुपासु ॥६॥
 त जिण-अंचण-पसरिज भुवेण । अविलउ बुह सूराणंदणेण ॥७॥

सूर्य-चन्द्र हो ॥६-८॥ सुख पूर्वक प्रजा का पोषण करने से ऐसा प्रतीत होता था मानों कल्पवृक्ष हो, जैनधर्म को स्थिर रखने और उसकी प्रभावना करने से ऐसा प्रतीत होता था मानों कुवेर हो ॥९॥ जिसके द्वारा दान और अपने धन से पृथिवी भर दी गयी थीं। जिसने अपने सुख के समान सुखों से सुधी और सुजनों का पालन किया ॥१०॥ उसका नाम चौधरी सुधी देवराज था। वह जैनधर्म की निधि था। जैनधर्म का भारवहन करने में धुरन्धर था ॥११॥ विज्ञान में कुशल, जिनेन्द्र द्वारा भाषित धर्मसूत्रों को जानने वाला, राजकार्यों एवं व्यापार कार्यों में कुशल, गम्भीर, यशागार, वह गुणज्ञ, राजा के मन को विविध रूपों से आनंदित करनेवाला, निश्चल परिणामों द्वारा चौधरी द्वारा सुपुत्र था ॥१२-१४॥ शृंखि और देवभक्त, गृहस्थी का भारवहन करने में धुरन्धर, कमल के समान सुखवाला, नित्य उपकार करनेवाले तीसरे पुत्र का नाम चुगना चौधरी कहा गया है ॥१५-१६॥ कुल का नाम प्रकाशित करनेवाला, सम्पूर्ण शिद्धान्विलास का प्राप्तकर्ता, जिनसिद्धान्त रूपी अमृत-रस से तृप्त चित्काला चौधरी छुट्टा नाम से चीथा पुत्र कहा गया है ॥१७-१८॥

घृता—जिनमति से सुशोभित ये चार भाई हैं। (इनमें चौधरी) मतिमान देवराज नाम का बड़ा भाई था। पृथिवी पर अपने कुल का कमल-स्वरूप वह नाना प्रकार के सुखन्विलास करता हुआ यति जनों का पोषण करता था ॥१-५॥

[१-६]

चौधरी देवराज और कवि माणिककराज का ग्रन्थ-प्रणयन-विषयक विचार-विमर्श

दूसरे दिन आगम आदि जिनेन्द्र द्वारा कहे गये ग्रन्थों में दक्ष, सम्यक्लब्ध रूपों रत्न से अलंकृत हृदयवाला चौधरी देवराज साहु राम-रंजित होकर पैदल ही जिनमन्दिर गया ॥१-२॥ वहाँ साहु देवराज ने भावपूर्वक वन्दना की तथा जिनग्रन्थों को नमन करने के पश्चात् सरस्वती-भवन में उन्हें सिद्धान्तग्रन्थों के अर्थ को गन से भाले हुए, स्वर रूपी धन में (उपदेश में) पुरजनों को सुखकारी, जिनगृह के दाम माणिकराज दिखाई दिये ॥३-५॥ माणिककराज ने भी—जो बहुश्रुतों की गोष्ठी को प्रकाशित किया करते थे, उसके (देवराज के) साथ सम्भाषण किया ॥६॥ जिनेन्द्र भगवान् की अचंता के लिए प्रसारित भुजाओं वाले बुधसूरा के पुत्र (माणिककराज)

भो अहरवालकुलकमलसूर । चुहयण-जण-मण-आसपूर ॥१॥
 जिनधम्भ-धुरंधर गृणणिकेय । जसपूर दिसंसर कियस सेय ॥२॥
 चउधारय वि महणासुय सुणेहि । कलिकालु पयलु णियमणि धरेहि ॥३॥
 मुज्जण अवियहु वि दोसताहि । वड्हंति पउर पुणु पुहइ माहि ॥४॥
 गड सुकइत्तणि पुणु बढगाहु । णिय हियह धरेपिणु पासणाहु ॥५॥
 सत्यत्थकुमलहरसहभरित । सिरि अमरवहरसेणाहु वि चरित ॥६॥
 तउ वंसु गरिद्वउ पुहइ मजिष । ये आदणाह हीणहु डुसजिष ॥७॥
 अहे जापदुसद्वर तथहु धरित । बरसात्प्रसङ्ग पमुहाद्वारि ॥८॥

घसा

तं बयणु सुणेपिणु, मणिपुलएविणु, भक्तह देवराजु चुहहो ।
 भो माणिकक वंडिय, सोल अखंडिय, बयणु एकु महु लुणहि लहु ॥९॥

[१-७]

णिय गेहि उदण्णाड कप्पविकखु । तं फलु को णहु बंच्छह समुक्खु ॥१॥
 पुण्णेण पत्तु जह कामधेणु । को णिस्सारहु पुणु वि गवरेणु ॥२॥
 तहं पहं किउ नहु पुणु सहं पसाड । नहु जम्मु सहलु भो अजजाड ॥३॥
 नहु धण्णु जम्मु परिसड चित्तु । कहयण-नुण कुलहु जेण पत्तु ॥४॥
 वहु जोणि अण्णताण्णतकालु । भवि भमह जीउ मोहेण बालु ॥५॥
 कहमवि पावह तारणभाड । अम्महं वसेण सो बहरभाड ॥६॥
 णवि जाणह जुल्लाजुल-भेड । णउ सत्थु ण गुरु अरहेतु-देड ॥७॥
 धावह दहदिहि वविणत्ति-खिणु । णउ भावह चेयणु परहभिणु ॥८॥
 लोहें बढउ अलिथउ रसंतु । परबणु परजुवह मणरसंतु ॥९॥
 मिच्छित्तु वि समरतपाजलिसु । णउ कहमवि जिणवरधरमु पत्तु ॥१०॥

द्वारा कहा गया ॥७॥ हे अग्रबाल—कुलरूपी कमल के लिए सूर्य के समान, पण्डित जनों के मन की आशा को पूर्ण करनेवाले, जैनधर्म में वुरत्कर, शुणों के आगार तथा शश के प्रसार से दिशा-दिशान्तरों को घबल बनानेवाले, चौधरी महण के मुपुच सुनो, अपने मन में कलिकाल प्रकट हो गया है ऐसा विचार धारण करें ॥८-९॥ दोषों को ग्रहण करनेवाले दुर्जन और मूर्ख पृथिवी पर प्रचुरता में बढ़ रहे हैं ॥१०॥ हे साहु ! मेरी बात सुनो, अपने मन में पार्श्वनाथ को धारण करो ॥११॥ शास्त्रार्थ में कुशल (हे चौधरी) श्री अमरसेन-बहरमेन के चरित का लब और रसों से भरो ॥१२॥ पृथिवी पर उनका श्रेष्ठ वंश ऐसा प्रतीत होता है मानों होन पुरुषों को दुस्साध्य आदिनाथ का वंश हो, जहाँ श्रेष्ठ तप धारण करनेवाले बाहुबलि जैसे पुरुष, प्रमुख स्त्रियाँ, और जैन आचार्य सिंह जन्मे ॥१३-१५॥

घरा—उसके (पण्डित माणिकराज के) वचन सुनकर मन में पुल-
कित होकर देवराज कहता है हे बालबहाचारी बुद्धिमान पण्डित माणिक-
राज मेरी एक छाटी सी बात सुनो ॥१६॥

[१-७]

**पं० माणिकराज के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अमरसेन-बहरमेन का
चरित-धरण हेतु निषेदम एवं पं० जी हारा स्वीकृति**

अपने घर में उत्पन्न कल्पवृक्ष के सुखद फल को कौन नहीं जाहता ? ॥१॥ यदि पुर्यकर्म से कामधेनु प्राप्त हो जाय तो धूलि उड़ानेवाले हाथी को आश्रय देकर उसे कौन घर से निकालेगा ? ॥२॥ आपने मेरे प्रति स्वयं कृपा की है । हे (कविवर) आज मेरा जीवन सफल हो गया ॥३॥ कवि-जनों के दुर्लभ गुण जिसमें प्राप्त हुए वह मेरा जन्म धन्य है और जित प्रसन्न है ॥४॥ यह अजानी जीव मोहवा अनन्तानन्त काल तक संसार की विविध योनियों में अप्यन करता है ॥५॥ जिस किसी प्रकार जब वह तरुणाई की प्राप्त करता है तो काम के वजीभत होकर वैर भाता है ॥६॥ उचित और अनुचित का भेद भी नहीं जानता । वह न अहून्नदेव को जानता है, न शास्त्र की और न गुरु को ॥७॥ धन के लिए खेद-विनित होकर दसों दिवाओं दीड़ता है किन्तु पर से भिन्न चेतन का ध्यान नहीं करता ॥८॥ लोभ में बैधकर असत्य भाषण करता हुआ परधन एवं पर-स्थिरों का मन में स्परण करता हुआ, मिथ्यात्वरूपी विषयरस के पान में तृप्त होता हुआ किसी भी प्रकार जिनधर्म को प्राप्त नहीं करता ॥९-१०॥

अहवा वि पत्तु णउ मुणह लसु । तं विहलउ हारह ता णरत्तु ॥११॥
रथणुव्य बुलहु सावयहु जम्मु । महपुण्ये भइ लद्धउ सुकम्मु ॥१२॥
ओ पंडिय भणि महु लहु चरित्तु । सिरि अमरसेण-वरसेणि मुत्तु ॥१३॥
ते सवण घण्णि जे सुणहि बाणि । संदेहु कियि मा चिल्लिठाणि ॥१४॥

घन्ता

इय चउबरियहं बयणे, वियसिय बयणे, पंडिएण हरसेविणु ।
ते कम्बु-रसायणु, सुहसयदायणु, पारद्धउ मणु देविणु ॥१५॥

[१-८]

अच्छहु दुज्जण दूरि बसंतहं । कामकोहमयलोहासत्तहं ॥१॥
दुज्जण-नस्थहु एय बबत्थहं । छिह-जिहाल ण पहु पय सत्थहं ॥२॥
दुज्जण आलणी व सम सीसह । उसम पत्तहं संगु ण बीसह ॥३॥
पत्त-अपत्तहं भेड ण जाणहि । विसयासत्तहं अत्थहं माणहि ॥४॥
जहु दुज्जण-जणणीयहु भवउ । तो परिहरियह मणुव सगव्वउ ॥५॥
दुज्जणु विसयकसायं रत्तह । अच्छहु सो पुणु कामे मत्तह ॥६॥
जो भवयणु सीलगुणवत्तहं । विसयकसायराय-परिवत्तहं ॥७॥
सोयदाय जो इंदिय दंडहं । दहुधम्भह-रयणत्तहं मंडहं ॥८॥
सो भवयणु वि खडतिय पउ णिहि पालहं । पत्तहं दाणु देह अणिवारह ॥९॥
सो भवयणु वि महु वयकिजहु । कम्मपयडि चूरि वि भुषिकज्जहु ॥१०॥
इह कहु बुलंघ महु तुच्छमहं । णउ मुणउच्छंदु गाहा दुवहं ॥११॥
ज्ञिणमध्गु ण जाणउ भिच्छरहं । णउ चउपहि बोहा पढ़बिय गहं ॥१२॥
बायरणु लक्ष्मण उर बीर-सामि । णउ विद्धउ कहव ण मुणिज ठामि ॥१३॥

यदि प्राप्त कर भी लेता है तो तस्व नहीं जानता । विफल होकर वह मनुष्यता को हार जाता है ॥१६॥ समुद्र में गिरे हुए रत्नों के समान श्रावक-कुल में जन्म दुर्लभ है । महान् पुण्य से मुझे यह सत्कार्य प्राप्त हुआ है ॥१२॥ हे पंडित ! मुझे श्री अमरसेन और बइरसेन का चरित सूत्ररूप में शोध कहो ॥१३॥ वे अवण (कर्ण) धन्य हैं जो चित्त स्थिर करके जिनवाणी सुनते हैं । इस विषय में अपने हृदय में कोई सन्देह मत करो ॥१४॥

धृता—इस प्रकार चौधरी के वचन सुनकर पंडित माणिक्कराज ने प्रसन्नमुख से हृषित होकर सैकड़ों प्रकार के सुखों को देनेवाले अपने काव्यरूपी रसायन को मन देकर आरम्भ किया ॥१-७॥

[१-८]

दुर्जन-स्वभाव-वर्जन, कवि का लोधि प्रवर्णन, कालिकाल-स्थिति तथा पन्थ-प्रणयन-निश्चय

काम, क्रोध, मान और लोभ में आसक्त दुर्जन पुरुषों से दूर निवास करना अच्छा होता है ॥ ॥ दुर्जन और सर्व स्वभाव से एक हैं । छिद्र देखकर सर्व जैसे हितकारी दूध को त्याग देता है इसी प्रकार दुर्जन हितेषी प्रजा का भी साथ नहीं देता (त्याग देता है) ॥२॥ दुर्जन सार वस्तु का त्याग कर देनेवाली चलनी और लथु आघात से दूट जानेवाले काँच के समान होता है । वह उत्तम पात्रों के साथ दिखाई नहीं देता ॥३॥ पात्र और अपात्रों का वे भेद नहीं जानते । विषयों में आसवत रहते हैं और धन को मान्यता देते हैं ॥४॥ यदि दुर्जन की माता सुजन होती है तो वह ऐसे मनुष्य की गर्व पूर्वक त्याग देती है ॥५॥ दुर्जन विषय-कथायों में मन रहता है । अच्छा हुआ तो फिर काम में उत्तमत रहता है ॥६॥ जो भव्य जन शीलगुणवान् हैं, विषय-कथायों के राग को वे त्याग देते हैं ॥७॥ जो शोकप्रद इन्द्रिय-दमन करता है, दस धर्म और रत्नश्रय से अलंकृत रहता है ॥८॥ वह भव्य पुरुष निधियाँ पाकर तीन खण्ड पृथिवी का पालन करता है और अनिवार्य रूप से दान देता है ॥९॥ ऐसे भव्य जन मुझ पर दया करो । (मेरी) कर्म प्रकृतियों को चूरकर (मुझे) मुक्त करो ॥१०॥ यह कथा दुर्लभ-ध्य है, मेरी तुच्छबुद्धि है, मैं गाथा और दुर्वाई छम्द नहीं जानता हूँ ॥११॥ जिनमार्ग नहीं जाना है, मिथ्यात्म में रति है, नीपाई, दोहा और पढ़दिया छन्द तथा गति नहीं जानता हूँ ॥१२॥ हे महावीर स्वामी ! व्याकरण और तर्क हृदय में नहीं हैं । कथा न देखी है और न किसी स्थान पर

णज लिहि अट्ठारह सुणिउ भेड । णज मुणउं सदवु सुह-असुह भेड ॥१४॥
 थीलंतहो महुपरि खलड वाय । ललिपकखरु जंविरु साणुराय ॥१५॥
 किउ रयउ सत्यु इत्यु जि महत्यु । मढु संसा परिवह्नहि हियत्यु ॥१६॥
 कलिकाल-मज्जि अवह दुसज्जि । जण दुवियह्नहि चालिह्वज्जि ॥१७॥
 मिच्छतलित्त दुष्वसणसत्त । धम्मेण चत्त गयपाणमत्त ॥१८॥
 ए रिसजणोह घरि घरि अमेहु । पयडंति वि अवगुण वि गतणोहु ॥१९॥
 बीसंति बुरासाय विविह भेग । हुंडहि चउगह-जिणमहर हेय ॥२०॥

घस्ता

सोयारे वज्जिउ, जिणु-जय पुज्जिउ, शोतुजिसउ सम्मइ णि रहु ।
 सो विषणम्मण थककउ, गणहर मुक्कड, कि पुणु अम्हारि सुहु चाइ ॥१-८॥

[१-९]

जहु तुच्छमुद्दि कियकम्ममहु । घिन्हुसे पयडउ सुकह इहु ॥१॥
 आयण्णाहु भविषण थिरभणेण । संकप्पु-दियप्पु वि मुह खणेण ॥२॥
 इह जंबूदीवे भरहलितु । रसलंडहमंडिड वर पवितु ॥३॥
 तहु मगहेसु सोहइ वरिट्ठु । तहु मज्जि वसइ राहगिहु मणिट्ठु ॥४॥
 घणकण समिद्दु तुहपणह जुत्तु । ण सुरखगिवपुह आइ पत्तु ॥५॥
 णिवसाहि चउवगाह अरहभत्त । जिणु पुज्जहि राहि वि अचलचित्त ॥६॥
 तहु राणउं सेणिउं एवहिपालु । सुहि भुंजहि णिव सिरि अरिभयालु ॥७॥
 तहु राणी चेन्ण-रुवखाणि । जिणसासणमत्तिव अमियवाणि ॥८॥
 परसप्पर रज्जु करंत सुहिं । मण इंडिडउ रहसुह करहि दिहि ॥९॥
 तावहि विपुलिव गिरिह सिहरि । बहसइमंडिड जहु महहहरि ॥१०॥
 वसवहुदोसरहियउ जिणेवु । पडिहार-बहु संजुड अणेवु ॥११॥

सुनी है ॥१३॥ लेखन के अठारह भेद में नहीं जानता हूँ । शब्दों के शुभ और अशुभ हेतु (भी) नहीं जानता हूँ ॥१४॥ बोलते हुए वायु स्वलित हो जाती है (तो भी) अनुराग पूर्वक ललित अक्षरों (से) कहता है ॥१५॥ इस महान शास्त्र में मङ्गे स्नेह है किन्तु ये हृदय में शंका लड़ रही है ॥१६॥ कलिकाल में कठिनाई आती है । लोग कुविचारी और दरिद्रता से दण्ड, मिथ्यात्म से लिप्त, दुर्व्यसनों में आसक्त, धर्म से चमुत और प्राण चले जाने पर भी मदिराशान में मत्त हैं ॥१७-१८॥ बुद्धिहीन और स्नेहविहीन ऐसा जनसमूह घर-घर में अवगुणों को प्रकट करता है ॥१९॥ विविध प्रकार के दुराशयी दिखाई देते हैं । वे जिनपत से रहित होकर चारों गतियों में अमण करते हैं ॥२०॥

वस्ता—सोच-विचार स्थान करता हूँ । इन्द्रिय-जयी जिनेन्द्र की पूजा करता हूँ । दोषों का त्याग करके सम्यकत्व का निर्वाह करता हूँ । उदासीनता पूर्वक मन स्थिर करके गणधर मुक्त हुए तो फिर क्या हमें सुख नहीं (होगा) ? अर्थात् अवश्य प्राप्त होगा ॥१-८॥

[१-९]

कथा-प्रारंभ : वीर-समवशारण का विपुलाचल पर आगमन
और वहाँ श्रेणिक का गमन

कृत कर्म महान् है और बुद्धि यथापि तुच्छ है (तो भी) यह सुकथा चृष्टतापूर्वक प्रकट करता हूँ—कहता हूँ ॥१॥ हे भव्यजन ! क्षण भर में संकल्प और विकल्प त्याग करके स्थिर मन से सुनो ॥२॥ इस जम्बूदीप में श्रेष्ठ और पवित्र छह खण्डों से सुशोभित भरतक्षेत्र है ॥३॥ उसमें मगध देश है और मगध देश के मध्य में स्थित मनभावन श्रेष्ठ राजगृही नगर सुहावना लगता है ॥४॥ धन-धान्य से समृद्ध और बुधजनों से सहित वह नगर ऐसा प्रतीत होता है मानो देव और विद्याधरों का नगर ही आकर प्राप्त हो गया हो ॥५॥ उसमें अहंक के भक्त चारों वर्ग के लोग रहते हैं । राहो भी (वहाँ) स्थिर चित्त से जिनेन्द्र की पूजा करता है ॥६॥ उस नगर में शत्रुओं को भय उत्पन्न करनेवाला तथा प्रजा का पालन करनेवाला राजा (श्रेणिक) राज्य लक्ष्मी को सुखपूर्वक भोगता है ॥७॥ उसकी रानी चैलना अमृत के समान मिष्टभाषिणी, जिनशासन की भक्त और सीन्दर्य की खदान है ॥८॥ वे दोनों सुखपूर्वक राज्य करते हुए विभिन्न दिशाओं में परस्पर में मन-इच्छित रति-सुख भोगते हैं ॥९॥ उसी समय विपुलाचल पर्वत के शिखर पर अतिशयों से मण्डित, इन्द्र के द्वारा पूजित, अठारह दोषों से रहित, आठ प्रातिहार्यों से सहित आनन्दकारी जिनेन्द्र तीर्थकर

समसरणु आउ महावीरतित्यु । तं अहसद्वदवणु कलिउ सुत्यु ॥१३॥
 णिज्जल-पद्म भद्रभस जलजुत्त । वणवाले जोइ वि रहसचित्त ॥१४॥
 तहं लेवि विफुलफल वर पवित्त । थाँर णिवह वि अगम कहह वत्त ॥१५॥
 ओ सुणिइ लेस रायाहिराय । विपुलद्विहि बीर वि लहु समाय ॥१६॥
 तं सुणि वि राउ संतुहु तहु । विष्णाइं वहु वत्थाहरण लहु ॥१७॥
 उद्गुडि सिहासण रहसजुत्तु । सिरि बोरजिंदहं पायभत्तु ॥१८॥
 पथसत्तजाइं जं दिलहि जिणु । परमेश्वर पणविड जाणकिरण ॥१९॥
 वंविड परोद्वि सेणिय णिवेण । आणंदभेरि वाक्यिलाणेण ॥२०॥
 तं सहै पुरवणु मिळिउ भत्ति । जिणवंदण अच्छण जायभत्ति ॥२१॥
 चेलणसमेज गउ वडि वि राज । गउ समवसरण जह धीयराउ ॥२२॥
 ओयरि वि गयंवहुं पियत जुलु । समसरणि पहद्वृत्त जिणुशुणंतु ॥२३॥

घटा

संबोधाउराउ, रुबजलोहु लिसायउ ।
 णामोक्षार कुण्ठु, पमणइ इयह यमायउ ॥२-२॥

[१-१०]

जय कम्मथणाघण अंडपवण । जय मयणद्वाह-उल्हवणघण ॥१॥
 जय विसय-वि-सय-धीसय-विसार । जय ण वि माणिय संसार-सार ॥२॥
 जय सोलहवण सुवण्ण-मुत्ति । जयमारिय-भव जाणिय भवित्ति ॥३॥
 जय जोयण-गामिण मगणवाणि । जय अंगवित्ति जिय सुजखाणि ॥४॥
 जय जय सोयविच्छ-समलंकिय । जयतिच्छत्त खमरोह ज संकिय ॥५॥
 जय पुफ्फविट्टि-पाडिय वि सुमण । जय धम्मचक्र हिय कुगङ्गगमण ॥६॥
 गंधोयविट्टि णिच्चं पडति । जय सुरणरविसईस वि णमंति ॥७॥
 ते (पय) धण वि तुवतिस्थ जंति । ते पाणि सहूल पूया-रयंति ॥८॥

महावीर का समवशारण आया। उसके अतिशय से उपकरन भली प्रकार फल गया ॥१०-१२॥ निर्जल स्थान प्रक्षुर जल से युक्त हुए। बनधाल का मन (यह सब) देखकर हर्षित हुआ ॥१३॥ वहाँ से श्रेष्ठ पवित्र फल-फूल लेकर और राजा के आगे रखकर वह समाचार कहता है ॥१४॥ हे राजाधिराज ! कुछ सुनिए विपुलाचल पर भगवान् महावीर का संघ आया है ॥१५॥ ऐसा सुनकर राजा ने उसे शोध अनेक वस्त्र और आभूषण देकर संतुष्ट किया ॥१६॥ श्री जिनेन्द्र महावीर के चरणों का भक्त वह राजा सहर्ष सिहासन से उठा ॥१७॥ जिस दिशा में ज्ञान-किरणवाले जिनेन्द्र थे उस दिशा में आगे को ओर सात पद चलकर परमेश्वर महावीर को प्रणाम किया ॥१८॥ राजा ध्रेणिक के द्वारा परोक्ष में बन्दना की गयी और धरण भर में आनन्दभेरी बजवाई गयी ॥१९॥ आनन्दभेरी के शब्दों में पुरजन शोध जिनेन्द्र की बन्दना, अर्चना, यात्रा और अंकित हेतु एकत्रित हुए ॥२०॥ राजा चेतना ने साथ हाथी गए बड़दर वहाँ जीतदाता (वहावीर) का समवशारण आया था वहाँ गया ॥२१॥ प्रिया के साथ हाथी से नीचे उतर कर वहाँ उसने समवशारण में प्रवेश किया और जिनेन्द्र महावीर की स्तुति की ॥२२॥

घटा—सौन्दर्य के व्यासे पुरुषों को जलाशय स्वरूप संवेगानुर राजा युगल रूप से नामोच्चारण करते हुए आकर इस प्रकार कहता है ॥१-९॥

[१-१०]

राजा ध्रेणिक की वीर-बन्दना एवं स्तुति

कर्मरूपी सघन बादलों को प्रचण्ड वायु के समान, कामरूपी अग्नि की जलन शान्त करने को बरसने वाले मेघ के समान, विषय रूपी सर्प के विष की दूर करनेवाले, संसार को सार-स्वरूप नहीं माननेवाले, सोलह श्रुंगार का त्याग करनेवाले, स्वर्ण आदि का त्याग करनेवाले, मारीच की पर्याय में निज भविष्य को जाननेवाले, एक योजन तक पहुँचनेवाली अर्द्ध-मागधी भाषा-ज्ञोलनेवाले, देह की दीप्ति से सूर्य की खदान को जीतनेवाले, अशोक वृक्ष से अलंकृत, तीन छत्र और चंचर-समूह से यश अंकित करनेवाले हे वीर ! आपकी जय हो ॥१-५॥ नित्य गन्धोदक की वर्षा होती है । हन्द्र, नरेन्द्र और नागेन्द्र भी नित्य नमस्कार करते हैं । देव पुष्प-वर्षा कर रहे हैं, कुण्डिनामन से मन को रोकने में समर्थ धर्मचक वाले वीर ! आपकी जय हो ॥६-७॥ वे कार्य आपके धन्य हैं जो तीर्थकरत्व को जन्म देते हैं ।

ते सोय धर्ण गुणगम-सूर्णति । ते यथण धर्ण तव आहुभि यंति ॥५॥
 सा रसणा तुव गुणलोललुलइ । सो साहु इत्थु तुव पडि चलइ ॥६॥
 त विस्तु वि तुव पथपुज्जलगु । तुहुं णिवसहि तं हियषज समगु ॥७॥
 तुव णाणकिरणु उज्जोयएण । णहु वि मिच्छय कोसिपसएण ॥८॥
 तुहुं परमपञ्जमहु पञ्ज वि वेहि । महु बुगाइ-पञ्जतइ-बचहरेहि ॥९॥
 इय थुड विरहावि ललियकखरेहि । जो ण वि विद्धुउ बम्महं सरेहि ॥१०॥

घन्ना

ति पवाहिण देविणु, भत्तिकरेपिणु, वंविड जिणवह-णाण-भडं ।
 -गोयम-पमुहजहितर, वंदि विहयसर, णर-कोहुन्निम बहुउ ॥१-१०॥

[१-११]

तं जहयहं सावय सुणिचं धम्मु । जे लहभहु सुरणरसिवहं गम्मु ॥१॥
 पुणु अवसह पाइ वि णिववरेण । पुच्छिउ सम्मह ललियकखरेण ॥२॥
 गोवालबाल जो जायहीण । किम गड सुरलोय वि भणु पवीण ॥३॥
 धण्णंकरु णामें इय सुणेवि । वीराणइं गोयमु भणह सोवि ॥४॥
 हो राणा णिसुणहि सावहणु । जंद्वादोउ वि दीवहं पहाणु ॥५॥
 तहु मजिस वि कणयायलु सुहाइ । विहि सूमाणे किउ दंदुणाइ ॥६॥
 तहु वाहिणविसि भरहंक वरिसु । सुरणरविज्ञाहरजणियहरिसु ॥७॥
 नहि णयरहं सति मणोहराइ । पुण्णायणायतरवरघणाइ ॥८॥
 जहि कमलिण हंसहि मंडियाइ । सोहंत णिरंतर सर-वराइ ॥९॥
 जहि गोडल सोहंहि गोहणाइ । सर सोहंहि सियवत्तय घणाइ ॥१०॥

वे हाथ सफल हैं जो (आपकी) पूजा रचाते हैं ॥८॥ वे कर्ण धन्य हैं (जो) गुणी जनों के समूह को सुनते हैं । वे नेत्र धन्य हैं (जो) आपकी छवि के दर्शन करते हैं ॥९॥ वह रसना (धन्य है जो) आपके गुणों में आसक्त दिखाई देती है । यहाँ साधु पुरुष वही है जो आपका अनुगमन करता है ॥१०॥ धन वह है जो आपके चरणों की पूजा के काम आता है । हृदय वह है जहाँ आपका और सम्पूर्ण ब्रतों का आवास होता है ॥११॥ आपकी ज्ञानकिरण के प्रकाश से मिथ्यात्म वैसे ही बिलीन हो जाता है जैसे प्रकाश के आगे उल्लं पक्षी ॥१२॥ आप परमपद मुझे भी दें । दुर्गति में पड़ने से (पहले) मुझे छीत लो अर्थात् बनाशी ॥१३॥ इन प्रकार जो कामवाण से विद्ध नहीं हुए उन वीर की ललित अक्षरों से (श्रेणिक) रत्नति करता है ॥ १४ ॥

धसा—तीन प्रदक्षिणाएँ देकर तथा भक्ति करके ज्ञानमय जिनेन्द्र (वीर) की बन्दना को । (इसके पश्चात्) यतीश्वरों में प्रधान गौतम-गणधर की विहँसकर बन्दना करके (श्रेणिक) मनुष्यों के कक्ष में बैठ गया ॥१-१०॥

[१-११]

राजा श्रेणिक का द्वालबाल के सम्बन्ध में प्रश्न और गौतम-गणधर द्वारा समावान

(राजा श्रेणिक समवशारण में) वह मुनि और श्रावक-धर्म सुना जिससे देव और मनुष्य मोक्ष-गमन प्राप्त करता है ॥१॥ इसके पश्चात् उचित अवसर पाकर राजा के द्वारा भली प्रकार ललित अक्षरों से पूछा गया ॥२॥ हे प्रवीण ! जो निम्न जाति का था वह अहोर का बालक सुरलोक (स्वर्ग) क्यों गया ? बताइए ॥३॥ गौतम-गणधर भी ऐसा सुनकर (महावीर को नमन करते हुए) कहते हैं—उस बालक का नाम धण्णकर है ॥४॥ हे राजन् ! सावधान होकर सुनो—द्वीपों में जम्बूद्वीप एक प्रधान द्वीप है ॥५॥ उसके मध्य में कनकाचल सुशोभित होता है । वह ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाता ने भूमि को मापने के लिए दण्ड का निर्माण किया हो ॥६॥ उसकी दक्षिण दिशा में भरतक्षेत्र है जहाँ देव, मनुष्य और विद्याधरों के घर है ॥७॥ जहाँ सुन्दर नगर हैं, पुण्यायतन स्वरूप संघन बृक्ष हैं ॥८॥ जहाँ हुंस और कमलों से मणित सरोवर निरन्तर सुशोभित रहते हैं ॥९॥ जहाँ गो-धन से गोकुल सुशोभित होता है, सफेद बदक पक्षियों से तालाब

मंथणाह मंजीरय-रवेण । णच्छांति मोर पहस्तियसिरेण ॥११॥
जहिं संति समिद्धाहं पद्मणाहं । मठवेव विहारह संघणाहं ॥१२॥

घना

जहिं सारि बलिल केयारहिं, बहसुकुमारहिं, गुमगुमंतक्षुप्यसरहि ।
ण कीरहिं भवभीयहिं, रक्षिय हलिणिहिं, अंपे-विजु णीलंसुयहिं ॥१-११॥

[१-१२]

छत्सु-बंडु विहुरेहि-भंगु । सारिक्खु मारि मउगमहं वग्गु ॥१॥
हरिसुच्छु (पुर) दोसंति तहि । करणोद्धु-शणित्ताहुणु जहिं ॥२॥
मलिणस्तणु जहिं मुणिवरगत्तहि । क्यतवियमझोलगुण-जुलहि ॥३॥
किमहि पुत्रियाहं जहिं भग्गु । किविणत्तणु नहुयालहि जिवसुणु ॥४॥
पक्षवाड जहिं वय-संघायहि । जत्सुलोढु लगामुहरायहि ॥५॥
कलहु ण वर जहिं रमणियसंगहि । पिथविओउ जहुं णहुच्छेपं तहि ॥६॥
गहणु जात्य पुणिमससिमित्तहि । माणभंगु जहिं पर अणुरस्तहि ॥७॥
णिगुणत्तु जहिं सुरवइचापश्चि । कहिणत्तणु जहिं पउमिण थणयहि ॥८॥
णउ सत्तविसणमहि इक्कु कोइ । वज्जरइजिणेसहपरमजोह ॥९॥
इह लोयपतिद्वज पुर बरिट्ठु । उसब्बमपुरु णामें सुरहइट्ठु ॥१०॥
बहु विभवसमिद्धउ वरपवित्तु । कइयण सद्यह सोहवित्तु ॥११॥
ण सुरहनिवासह सोहवित्तु । तं सुरहं-गेह-उधम हरंतु ॥१२॥
ण सम्मायउ सुरवइहि पुरु । ण महि पउमिण संपत्तु वर ॥१३॥

शाभता है ॥१०॥ दधि मन्थन करते समय मथानी चलाने से उत्पन्न मथानी में बैंझी हुई छुद्र घण्टियों की आवाज से हर्षित सिर से मोर नाचते हैं ॥११॥ जहाँ समृद्ध पट्टण है । मठ और देव-विहार संघ के लिए है ॥१२॥

घटा—जहाँ अति सुकुमार मैना पक्षी लताओं पर कीड़ा करते हैं । भीरि तालाका से गुह छुनते हैं । (निजहे से छन्द तोते ऐसे प्रतीत होते हैं) मानो वे भयभीत होकर नीलाम्बर धारी हलधर को कह रहे हैं कि उन्हें निरापद स्थान में रखो जहाँ उन पर आक्रमण न हो सके, आक्रमण न करो, न कराओ ॥१-११॥

[१-१२]

ऋषभपुर-नगर-वर्णन

जिस नगर में दंड छतरियों (छातों) में, भग्नता विधुर जनों में, मार-पीट गले के सार अंश में और मद हस्ति-वर्ग में ही था (जन समुदाय में नहीं) ॥१॥ वहाँ सिंह ही स्वच्छन्द दिखाई देते हैं । (मनुष्य नहीं), जहाँ करपोड़न पाणिग्रहण में है (अन्यत्र नहीं) ॥२॥ जहाँ मलिनता—ब्रत, तप, नियम और शील गुण से युक्त मुनि की देह पर है (अन्यत्र नहीं) ॥३॥ याचना—शिशु बालक-बालिकाओं में है (अन्य किसी में नहीं) । हे राजन् सुनो ! कृपणता—मधु-मक्षियों के छन्ते में या काल (घम) में है (अन्यत्र नहीं) ॥४॥ जहाँ पक्षपात पक्षियों के संघ में ही है (अन्यत्र नहीं), लोभ-यात्रा (तीर्थाटिन) का है (वैभव आदि का नहीं), राग—पक्षियों के मुँह में है (मनुष्यों में नहीं) ॥५॥ जहाँ कलह—(छन्द) स्त्री-सहवास में है (श्रेष्ठ पुरुषों में नहीं) । जहाँ श्रीतम का वियोग नखों के छेदन में है (स्त्रियों में नहीं) ॥६॥ ग्रहण जहाँ पौर्णमासी के चन्द्र मात्र का होता है (किसी अन्य का नहीं) मान-भंग—जहाँ पर वस्तु के अनुराग से ढोता है (अन्य किसी कारण से नहीं) ॥७॥ जहाँ निर्गुण इन्द्रधनुष है (अन्य कोई नहीं), कठिनता (कड़ापन) जहाँ स्त्रियों के स्तनों में है (अन्यत्र नहीं) ॥८॥ सप्त व्यासनों में कोई एक व्यासन भी नहीं है । जिनेश्वर की परमज्ञोति-रति को छोड़कर कोई रति (राग) नहीं है ॥९॥ इस लोक में प्रसिद्ध ऐसा नगरों में प्रधान ऋषभपुर तामक नगर है । वह देवों को भी प्रिय है ॥१०॥ वहू वैभव से समृद्ध, श्रेष्ठ और पवित्र है । कविजन शब्द और अर्थ से बोभते हैं ॥११॥ वह ऐसा प्रतीत होता है मानों देवों के निवास से सुखोभित हो । उसके भवन देव भवन की उपमा को धारण करते हैं ॥१२॥ श्रेष्ठ मम्पदा रूपी लक्ष्मी से पृथिवी पर ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्द्र का नगर ही

चउ विसिहि जरथ विसालु सालु । सोहइ रथणिहि विहुणिय तमालु ॥१४॥
 परिहा जहि संठिय पवर भाइ । विसहरि दीहरिय कुडिलभाई ॥१५॥
 सइ चित्तुव पश्चुरिसहं अलंघु । गंभीर सुधिर बुहमइ महग्नु ॥१६॥
 जहि सोहइ मढदेउलविहार । अच्छवर अउकतोरण सुसार ॥१७॥
 व्रेसायण तुल्लइ जहि वणाइ । णहि लग्नइ तिलयंजण वराइ ॥१८॥
 मत्तावारणइ वि राइयाइ । तोहेहि जग्न वर गोजताइ ॥१९॥
 जहि संति मणोहरु रायमग्नु । तंवोलरंगरंगिय धरग्नु ॥२०॥

घटा

इय पुरह पहा णजं, विणयसयाणजं, परधनु-हरणे पंगुभहि ।
 पर पियद संधउ, पर कह गुंगच णज वंदिय जण-काणहि ॥१-१२॥

[१-१३]

णामे अरिमद्दणु णिड पर्यङ्कु । जि अहवलराय ह लियउ वंडु ॥१॥
 तहु पहुमहावे रवसाओि । पाडलगाह गमणिय अभियवाओि ॥२॥
 णामे देवलवे सुहणिहाओि । जिणगुरपयभस्तिय सीलखाओि ॥३॥
 णिव-सुविह मंति भतिस्थजाणु । णियसेष्य पुरयण जहि पहणु ॥४॥
 तहु अभयंकरो वि विचहारो । जिवसह रिद्धिसहित सुयधारो ॥५॥
 पर-उवयारो-सम्माइटो । आराहइ णियहिय परमिटो ॥६॥
 तं भामिण कुसला वइयसुक्षु । जिणधम्मासत्तिय चत्तमिच्छु ॥७॥
 तं गिहि अच्छहि वे कम्मकरा । धण्णंकर-गुण्णंकर-भायवर ॥८॥
 गद्दउ गिहकम्म करेइ तहि । लहुवउ धणरकिलय उवयणेहि ॥९॥
 विणिण वि विणयंकर सलिलचित्त । अभयंकर-सेहिति अश्वभत्त ॥१०॥
 सुहि अच्छहि वणिघर हियसच्चित्त । विणिण वि वंधव तहु करहि वत्त ॥११॥
 इह पुन्नपाव-अंतरु वरिट्ठु । एषइ सुहि एषइ सहहि कट्ठु ॥१२॥
 एयइ वि रंक भूवह वि एक । भोयइ भुजहि रहसुह णिसंक ॥१३॥

अवतरित हुआ हो ॥१३॥ जहाँ रात्रि में चारों दिशाओं में ऊँचे साल और हवा में झूमते हुए तमाल कुक्ष शोभते हैं ॥१४॥ जहाँ स्थित श्रेष्ठ परिक्षा दीर्घकार सर्पकुण्डली के समान शोभती है ॥१५॥ वह परिक्षा सती स्त्री के चित्त के समान पर पुरुषों से अलंक्य, गम्भीर, और महान् ब्रुधजनों के समान सुस्थिर है ॥१६॥ जहाँ परमार्थ स्वरूप निर्मित मठ, देवालय, विहार और चौराहों पर चौक तथा तोरण शोभते हैं ॥१७॥ जहाँ नृभस्यर्णी श्रेष्ठ तिलक और अंजन वृक्षों से बन अर्लकारगृह के समान (शोभते) हैं ॥१८॥ जहाँ राजा के गमनागमन के लिए मदोन्मत्त हाथी और गोपुर (दरबाजे) शोभते हैं ॥१९॥ जहाँ मनोहर राजमार्ग का धरातल पान की पीक के रंग से रंगे हुए हैं ॥२०॥

घटा—इस नगर का राजा विनयवन्त और चतुर है। पराया धन हरने में पृथिवी पर वह पंगु, परसित्रियों को देखने के लिए अन्धा और दूसरों की कथा कहने में गूँगा है किन्तु लोगों को दान देने में उसे पाबन्दी नहीं है ॥१-१२॥

[१-१३]

शृष्टभपुर के राजा अरिमद्देन, श्रेष्ठी अभयंकर और उसके कर्मचारी धर्णांकर-पुण्णांकर का परिचय एवं पुण्य-पाप-फल धर्णी

अतिबलशाली राजाओं को जिसके द्वारा दण्ड धारण किया गया (वह) अरिमद्देन नाम का प्रचण्ड राजा है ॥१॥ देवलदे नाम की उसकी पटरानी सौन्दर्य की खादान, गुलाबी वर्णवाली, गजगामिनी, मिठ-भाषिणी, सुख-निधान, शील की खान, और जिनेन्द्र तथा गुरु के चरणों की भक्त है ॥२-३॥ पृथिवी पर वह प्रधान राजा मंत्रियों से मंत्रणा आत करके भलो प्रकार अपने नगरवासियों को सेवा करता है ॥४॥ वहाँ श्रुतज्ञ और ऋद्धियों से सम्पन्न, परोपकारी और सम्यग्दृष्टि अभयंकर व्यापारो रहता है। वह निज हृदय से परमेष्ठी की आराधना करता है ॥५-६॥ उसकी स्त्री कुशल, व्रतों से पवित्र, जिनधर्म में आसक्त और मिथ्यात्म हीन है ॥७॥ उसके घर में धर्णांकर और पुण्णांकर दो भाई कर्मचारी रहते हैं ॥८॥ बड़ा भाई वहाँ गृहकार्य करता है और छोटा भाई उपवन धन की रक्षा करता है ॥९॥ दोनों भाई विनीत, सरलचित्त और सेठ अभयंकर के परम भक्त हैं ॥१०॥ दोनों भाई हर्षित भन से सेठ के घर सुखपूर्वक रहते हैं और वार्तालिप करते हैं ॥११॥ यहाँ पुण्य और पाप में बड़ा अन्तर है। एक से (जीव) सुख (भोगता है) और एक से कष्ट सहता है ॥१२॥ एक रंक है और एक भूमिति है (जो)

विणि वि णिय पउमिणि विसय-सत्त । सुहु-दुहु कियकम्बे हुंति भक्त ॥१४॥
जं णिहबल-मझं तवयरण होइ । भु'जहु सुरन्संपह सुरहलोइ ॥१५॥
पुण् गरपउ पाइ वि तउ करेहि । किय कम्महणि वि सिवपउ ऊहेइ ॥१६॥

घला

एकइ हृषगयधड, कीडाहि चडि धरा, रह लंपाण जाण-चडाहि ।
सुविक्ष्य अहुपुणहु, भडश्वदवणहु, अगाह धावेहि विविहु भसीहि ॥१-३॥

[१-१४]

सावयकुलि कहुम वि लहु वि जम्मु । जहु जीव न पालिसि जिणहुं जम्मु ॥१॥
जिम जिम भवभमिणिहि लहसि दुक्ख । तिम तिम पचछतावह पडिसि मुक्खरे
पाच्छहु पचछतावह कवण काजु । ते कसह (ण) जे त्रु करिसु आजु ॥२॥
गहपाणी पहलउ पालिबथु । गहसप्पहि पीढह लीह अंथु ॥३॥
जिणि सुक्षिणि अर्णतर दुक्ख होइ । ते सुक्ख शरि ज्यो हियह कोइ ॥४॥
अहमिहु सरिस आहारअंति । तक्काल वमणु जिमते लसंति ॥५॥
संसार म जाणिसि जीव सुक्ख । मषुविहु सरिस गिरिमेरु दुक्ख ॥६॥
सुरनरतिरियादिक गति मशारि । सहियाजि दुक्ख ते तउ संभारि ॥७॥
ईसा-विसाय-मय-कोह-माणु । चितंतु चवण देवहं विमाणु ॥८॥
सहु खंडहि हियडहु फुटूजंत । जहु सत्तधाउ संघडिड हुन्त ॥९॥०॥
छमास चवणु पुण् चित होइ । जं दुक्ख न सक्खहु कहमि कोइ ॥१॥१॥
दृक्क दृक्क तीइ अवहुर विलंति । एहु सेविकणह राजो रहंति ॥१॥२॥
मणु अत्तणि खयखसखासरोग । पियमायपुत्रबंधव-विजोग ॥१॥३॥
वह-वीषम-ताढणमसि हणाय । दालिह-दुक्ख परिभव घणाय ॥१॥४॥

निश्चित होकर रति-सुख आदि भोग भोगता है ॥१३॥ दोनों अपनी स्त्रियों में विषयासक्त हैं । हे भाई ! सुख और दुःख कृतकर्मों से होते हैं ॥१४॥ जिसकी निश्चल मति तपश्चरण में होती है (वह) स्वर्गलोक की देव-सम्पदा को भोगता है ॥१५॥ इसके पश्चात् मनुष्य पर्याय पाकर तप करता है और कृत-कर्मों को नाश कर शिवपद पाता है ॥१६॥

घट्टा—एक परिश्रम करके (जिसने) अति पुण्य किया है वह धोड़े, हाथी, रथ, पालकी वाहनों पर चढ़कर पृथिवी पर क्रोड़ा करता है । योद्धा घट्टा वारण करके विविध भक्ति के साथ उसके आगे दौड़ते हैं ॥१३॥

[१-१४]

धर्मांकर-पुण्णांकर का जीव-वशा और मनुष्यगति के दुःखों के सम्बन्ध में चिन्तन

जीव यदि किसी प्रकार श्रावक-नुल में जन्म प्राप्त कर लेता है (तो वह) जिनेन्द्र के धर्म को नहीं पालता है ॥१॥ वह मूर्ख जैसे-जैसे संसार-ध्रमण करते हुए दुःख पाता है वैसे-वैसे उसे पछताना पड़ता है ॥२॥ हे भाई ! पीछे पछताने से क्या लाभ ? जिससे उसमें फैसला न पड़े वह (कार्य) तू आज हो कर ॥३॥ पानी बाहर निकलने के पहले पार बाँधो या बाँध की रक्षा करो । सर्व निकल जाने पर धंधा पुरुष हो लकीर पीटता है ॥४॥ जिन सुखों के पश्चात् दुःख होता है उन सुखों को ज्यों ही कोई हृदय में धारण करता है, वे सुख अति मिष्ट आहार के पश्चात् जीमते ही तत्काल होनेवाले बमन के समान दिखाई देते हैं ॥५-६॥ संसार में जीव को सुख मधु की एक बूँद के बराबर और दुःख मेह पर्वत के बराबर जानो ॥७॥ हे भाई ! आपने देव, मनुष्य और तिर्यक गतियों में जो दुःख सहे हैं उन्हें सम्हालो ॥८॥ ईर्षी, विषाद, माया, क्रोध और मान (आदि के कारण) देवों के विमान से च्युत (होने के सम्बन्ध में) चिन्तन करो ॥९॥ सप्त धातुओं से निर्मित हुआ हृदय भी फूट जाता है । (उसके) सैकड़ों दुकड़े हो जाते हैं ॥१०॥ छह मास से च्युत होने की चिन्ता होने लगती है । उस समय के दुःखों को मैं कहने में समर्थ नहीं हूँ अथवा कह नहीं सकता हूँ ॥११॥ जो सेवा करती हुई पंचितबद्ध सेविकाओं के समान रहती हैं वे देवांगनाएँ एक-एक कर दूर जाते हुए विलीन हो जाती हैं ॥१२॥ मनुष्य पर्याय में स्थ, खाँसी और श्वास रोग तथा माता-पिता, पुत्र और बान्धवों का वियोग है ॥१३॥ बध-बन्धन, ताङ्न, असि-प्रहार, दरिद्रता और तिर-

संकोह्य शपलउ अंगबंग । अहमुख वहु असुई पूयसंग ॥१५॥
गदभवासि नरय सय बुकल हुंतु । जिउ वसइ अहिउ नवमास संतु ॥१६॥
षडिलोम तहमिहि पर जलंति । समकालसुईचंपे वि दिति ॥१७॥
जा वेयण तहु अट्ठागुणोय । जम्मदखणि णंत गुणी भणीय ॥१८॥

घर्ता

इव नरयहि दुख्यु समो सहि वि, कट्टि कट्टि तहि णीसरए ।
अइ पांचि गहियउ मुक्खु जिउ, पुणु तिरियत्तणि संयडए ॥१-१४॥

[१-१५]

तिरियत्तणि सीयातवु सहंति । तिसु-भुवन-प्रमुख एरवसि पडेति ॥१॥
गलकंबलच्छेषक संकुसार । निलंचछण-कंधिहि पुढि-भार ॥२॥
इग-तिजि अयर लिलोस-जाणि । जिउ सहइ नरइबहुबुह अयाणि ॥३॥
शंति सीउ एंति तापु । तहं वज्जसुङ्ग-डंसह वियापु ॥४॥
घण-थायघोर-मुग्गर-यहार । अबरुपर तिक्कुमार-मार ॥५॥
करवित्तिहि किञ्जिह दुण्णिखेड । कुम्भीकडाह-वेयण-पचंड ॥६॥
पाषण जिम किञ्जिह चुन्न-चुन्न । सूलौ पोहज्जह अकथपुन्न ॥७॥
भेदिजह गद्वरदेसेघाय । अंघरि ओच्छालह धरवि पाय ॥८॥
सेवंति तत्थ असिपत्तच्छाह । पवणिहि डर्जसहं पत्त साह ॥९॥
नरयाण पडह तिणि लिघ्नभित्त । कर अंगुलि नासा अहर-कन्न ॥१०॥
वेसानर वसी पुस्तलीय । आलिंगण विजज्जह वलिखलीय ॥११॥
गालियकथीरु जिम परजलंत । पाइज्जिह जलभुह मोहयंत ॥१२॥
तहं अंगमंसुकाप्य वि सरोसु । घालिज्जह तहु मुंह कह वि दोसु ॥१३॥

स्वर्व आदि के शब्दों का सुख है ॥१४॥ इभी अंशोऽपात् उन्कुचित करके अद्युचितीय के साथ अधोमुख होकर जीव को नी मास या उससे अधिक समय तक गर्भवास में नरक के सैकड़ों दुःख होते हैं ॥१५-१६॥ दूसरे विरोधी गृहस्थ वहाँ जलते हैं। ईर्षा करते हैं। वे सुख के समय सुई के समान चुभते हैं ॥१७॥ यह वेदना गर्भवास-वेदना से आठ गुनों अधिक होती है और जन्म के क्षणों की वेदना तो अनन्त गुनों कही गयी है ॥१८॥

घटा—इस प्रकार नरक के समान दुःखों को सहकर बढ़ी ही कठिनाई से वहाँ से निकलता है। इसके पश्चात् यह मूर्ख जीव बहु पाप करके तिर्यक-गति को प्राप्त हो जाता है ॥१९॥

[१-१५]

तिर्यक और नरकगति के दुःखों का वर्णन

तिर्यकगति में (जीव) प्रमुख रूप से परवशता वश अरही आदि कील के नुकीले अंश से छोड़े जाने, गलकम्बल आदि के भेदे जाने, प्रजननशक्ति के विनाश हेतु अण्डकोश दबाये जाने, कंधे और पुट्ठों के ऊपर भार लादे जाने (से उत्पन्न दुःख) और शीत-ताप तथा भूख-प्यास सहते हैं ॥१-२॥ अज्ञानी जीव नरक के एक और तीन से तीनों सागर पर्यन्त बहुत दुःख सहता है ॥३॥ वहाँ एक बार लगातार शीत और एक बार में लगातार ताप सहता है। वज्र के समान मजबूत चोंचदाले ढांस दुःख पहुँचाते हैं ॥४॥ घनघीर घनों की मार, मुद्घरों के प्रहार और ऊपर से कुरुक्षेत्री की तीव्र मार (सहता है) ॥५॥ करोंत से देह के दो खण्ड कर दिये जाते हैं। कुम्भीकड़ाह में पकाये जाने से प्रचण्ड वेदना (होती है) ॥६॥ सूखे पक्ष के समान चूर-चूर कर दिया जाता है। पापियों को फाँसी के फंदे में घिरोया जाता है ॥७॥ हाथीदाँत से भेदन कराया जाता है, पैर पकड़कर आकाश में उछलवाया जाता है ॥८॥ वहाँ गर्भ हृवाओं से जलते हुए जीव तल्बीर के समान तोक्षण पत्तों और शाखाओं वाले वृक्षों की छाया का सेवन करते हैं ॥९॥ नरक प्राप्त हो जाने पर मधु सेवियों के हाथ की अङ्गुलियाँ, नासिका ओठ और कान छिन-छिन कर दिये जाते हैं ॥१०॥ वेश्यागमियों को अग्नि से तपाईं गयी लाल बर्ण की (लीह) पुतलियों से बलपूर्वक आँलिगन कराया जाता है ॥११॥ दूसरों से ईर्षा करनेवाले और मदिरा पीने वालों को उनका मुह मोड़कर गला दुआ रींग जल के रूप में पिलाया जाता है ॥१२॥ वहाँ मांस खानेवालों को क्रोधपूर्वक दोष बताते हुए अंगों

महु मज्जमंस परती-विलासि । एहु फलु संपञ्जह नरयनासि ॥१४॥
कम्कस-सिल-उष्परि जेम वस्थु । अप्पालिथ सेवह तिम अवस्थु ॥१५॥
पारा जिम किञ्जह लंडखंड । चलि पाव भोगक्षसि मिलह पिंड ॥१६॥
चउगह-भमंत मह तिश्छतिक्ख । मिच्छत्तमोहि सहियाजि दुक्ख ॥१७॥
ते समरवि समरवि मनहमाहि । करि सुगुरु वथणु मनपछि सिवाहि ॥१८॥

घर्ता

इम जीउ णि चउगह, जोणियले, भमह वि मोहासत्तज ।
जि भजिम दुबच्चोवाणहृच, वहु पञ्जाय वि लितु मुघंतज ॥१-१४॥

[१-१६]

जीविउ-षण-जुधवण वथिउ जाणि । अंजलि-जल-उष्पम कर वसाणि ॥१॥
खिणि-खिणि तुहुह तण्णवि करंत । इकि हसह इकिक दीसहि रथंत ॥२॥
खणि मितआह-पहु-विसह-कालु । घम्महं वि लवंस आलमालु ॥३॥
जं कलिल करंतज करि सु अज्जु । लबभह कि न लबभह कलिल कज्जु ॥४॥
पिय-माय-मुत्त-माया ममालि । जिउ पडिउ कुडंवा तणह जालि ॥५॥
न वि करतज संकह किमह पापु । पुणु दुक्ख सहह एकलउ आपु ॥६॥
लबभह नहु वसिवा जाणि गेहि । हियडाम न बंधसितिणिस गेहि ॥७॥
चद्वायह चित्तिहि वसह जेम । परदेसिड पंथिउ वसह तेम ॥८॥
उगिसह दिक्षस सो इक अंधु । निक्कलसि ओणि वडियारि कंधि ॥९॥
बेहाव जाडि वहु वि सिमसाणि । सरिसउ न कैपि परमत्थ जाणि ॥१०॥
विणु मुज्जम केम होसह कुदुंब । हणि चित स करि घम्महं विलंबु ॥११॥
दिण इक कुणिण इक घडिय रोह । खाइसह पीसह वलिसह कोह ॥१२॥

का मांस काटकर उनके मुँह पर मारा जाता है ॥१३॥ इस प्रकार नरक वास में मद्य, मांस और मधु तथा परस्त्रीविलास के सेवन से यह फल प्राप्त होता है ॥१४॥ जो अभक्ष्य भक्षण करते हैं उन्हें वहाँ कर्कषा पत्थर पर हाथ से बैसे ही पछाड़ा और पीटा जाता है जैसे वस्त्र ॥१५॥ पारा जैसे खंड-खंड लिये जाने पर भी पुनः मिलकर एक हो जाता है ऐसे ही यहाँ कुकर्म और भोग-विषयों के बद्दीभूत मनुष्यों का पिड खंड-खंड होकर भी मिल जाता है ॥१६॥ मिथ्यात्मी और मोही प्राणी चारों गतियों में ऋमण करते हुए तीक्ष्ण दुःख सहता है ॥१७॥ अतः गृहओं को वाणी मन में ही स्मरण करो । मन में यही मुझ-वाणी किंवदंकरा होने ही ॥१८॥

घट्ठा——दुर्बचन रूपी बाणों से आहत होकर जिसके द्वारा बहुत पर्याएँ धारण की गयीं और स्थागी गयीं ऐसा मोहासक्त जीव इस प्रकार चारों गतियों की थोनियों में ऋमण करता है ॥१-१५॥

[१-१६]

अण्णंकश-मुण्णंकर भाइयों का सांसारिक-चिल्तन और कर्त्तव्यबोध

बुद्धिमानों ने जीवन, धन और घौवन को अंजुलि के जल के समान अस्थिर बताया है ॥१॥ तथा रखने का यत्न करते हुए भी वह क्षण-क्षण में झीण होता है । (संसार में) एक हँसते हुए और एक रोते हुए दिखाई देता है ॥२॥ मित्रता, प्रभुत्व और इन्द्रिय-विषयों का समय भी क्षणिक है । मृत्यु से बिरे हुए है जीव । मृत्यु को धर्म से काटो ॥३॥ कल कार्य प्राप्त होता है या नहीं (क्या भरोसा) अतः कल करनेवाले कार्य को आज (ही) करो ॥४॥ माता-पिता, पुत्र, ये सब माया जाल हैं । उसमें पढ़ा हुआ जीव कुटुम्ब का विस्तार करता है ॥५॥ पाप करते हुए किसी प्रकार की शंका भी नहीं करता और फिर आप अकेला दुःख सहता है ॥६॥ हे गृहस्थ ! उन्हें प्राप्त करता है अथवा निश्चय से नहीं इस ज्ञान के बशी-भूत होकर अत्यन्त आसवित से उनमें हृदय को न बांधो ॥७॥ जैसे परदेशी पर्याक उदासीन चित्त से अर्थात् अपना न मानकर (पराये धर में) रहता है ऐसे ही पराया धर मानकर उदासीन चित्त से धर में रहो ॥८॥ सूर्योदय हो जाने पर वह एक अन्धा ही है जो बाहर निकलकर कन्दरा में गिरता है ॥९॥ स्मशान में सारहीन ध्यान करनेवाले के समान कोई भी परमार्थ को नहीं जानता है ॥१०॥ मेरे बिना कुटुम्ब का भरण-योषण कैसे होगा ऐसा विचार करके धर्म की प्राप्ति में बिलम्ब मत करो ॥११॥ (वियोग होने पर) एक दो दिन एक घड़ी रोकर फिर सभी कोई खानेपीने लगेंगे

कुक्षिखयउ करतउ धंम वेहु । हो इति म करि पुगल [वि] सणेहु ॥१३॥
 अप्पणउ नाहि भाडह वहृति । वाहियह धम्मि तं चेव तं तु ॥१४॥
 समुदाउ न संबल न वि मुहुत्तु । जिउ करत पयाणु न सउण सभु ॥१५॥
 नवलंत चलाउ लहइ कोइ । लब्बह जह उद्बह रोइ रोइ ॥१६॥
 वयरीवसि पडिया समरखिति । कायर परि मरत न होइ किति ॥१७॥
 भडिवाउ सुजसु-भह मह-महंतु । स लहिबनह सूरसणि मरंतु ॥१८॥
 संसारि नहो अप्पणउ कोइ । लहूप्पा वेणा लहि भिरुड आइ ॥१९॥
 जिउ पडिउ कुँडवावत्तिगति । सूयरहमाहि ममह पहुत्ति ॥२०॥
 जइ कालि कुँडवउ-संकलाउ । तउ सीगिहि संकल उत्तरोउ ॥२१॥
 लहु संजम अप्पउ तारि-तारि । आसा-वासिणि मन पडि हंसारि ॥२२॥

घन्ता

सुकुरुंध-कजिज वहु पाउ जिउ, करह ज अप्पउ चेयह ।
 वहु सीउहुइ तावह सहए, णउ अप्पुमरणुमणि चेयह ॥१-१६॥

[१-१७]

अथिकारित-जीवित-कम्मराउ । ऐतिव करंतु पडि यउ अवाह ॥१॥
 वंविहरि-कुरुंधह वंवि वालि । रक्षिखयउ न सक्कहु वालि हालि ॥२॥
 गल-संकल-घरणी-वाहु-वंड । पगि पुत्तु-नेह वेडी-पचंड ॥३॥
 हथकडग-मित्त-पिय-माय-भाय । जिउजडिउ ण सक्कहु वलि वि पाय ॥४॥
 छडिपडियति संकल कम्म जोगि । जइ तुहु वंदिजण वयणु लोगि ॥५॥
 पुरिसत्तणु करि-अठिहंसु-णहि । कायरपण पडिसि म वलिथ गाहि ॥६॥

॥१३॥ हे दुख करनेवाले ! देह से धर्म हो ऐसा करो, पुद्गल से स्नेह मत करो ॥१४॥ देह अपनी नहीं है, सभी किराये के समान उसे धारण किये हुए हैं, वह धर्म में बाधा पहुँचाता है तो त्याग दो ॥१५॥ जब जीव (चेतन) प्रस्थान करता है तब न समुदाय का सहारा रहता है न महूर्त का, न शकुन का और न शक्ति का भी ॥१६॥ उसे जाते हुए बलपूर्वक कोई पकड़ नहीं पाता । जो भी आता है रो-रो कर उठ जाता है (चला जाता है) ॥१७॥ युद्धक्षेत्र में काथर वैरी के बश में होकर मर जाते हैं परन्तु (उल्की) कीर्ति नहीं होती है ॥१८॥ जो योद्धा शूरवीरतापूर्वक मरता है वह सुयश से परिपूर्ण होकर महान् पुरुषों के द्वारा पूजा जाता है (आदर पाता है) ॥१९॥ संसार में अपना कोई नहीं है । लेन-देन सक ही मिलन-संयोग है ॥२०॥ जीव कुटुम्ब रूपी भौवर के गर्त में पड़ा हुआ है । सूकर के समान प्रभुता मानता है ॥२१॥ कुटुम्ब-बाँधने को साँकल स्वरूप है । उस साँकल (जंजीर) को शीघ्र उतारो, और मृत्यु पर विजय करो ॥२२॥ आशाओं और इन्द्रिय-वासनाओं में पड़े हुए हे मन ! तू संसार में संयम लेकर अपने को तारो-तारो (अपना कल्याण करो । भवसागर से तर जाओ) ॥२३॥

धर्म—हे जीव ! (तू) कौटुम्बिक भलाई के लिए अनेक पाप करता है । शीत और ताप को सहता है, अपने मरण का भी मन में विचार नहीं करता किन्तु अपने चेतन की भलाई के लिए (कुछ) नहीं करता है ॥१-१६॥

[१-१७]

**जीव की कौटुम्बिक स्थिति, कर्म, पुण्य-पाप का स्वभाव तथा
सम्पदवर्जन वारण करने का परामर्श**

कर्मराज जीव का अधिकारी है । वह अपराधियों के पास जाकर उन्हें पेरता है । उन पर आघात करता है ॥१॥ वह कुटुम्ब रूपी बन्दोघर में बन्द करके आघात करता है । उस समय विद्याधर बाली भी रक्षा नहीं कर सकता है ॥२॥ पत्नी बाहु-दण्ड रूपी गले की साँकल है और पुत्र-प्रेम रूपी पैरों में प्रचण्ड बोढ़ी है ॥३॥ मित्र, माता-पिता और भाई रूपों हाथ में हथकड़ियाँ हैं । मूर्ख जीव शक्ति पाकर भी इस जेल से मुक्त नहीं हो पाता है ॥४॥ लोक में मुनियों के बचन हैं कि कर्म योग से अर्थात् उद्यम करने से बन्दियों की साँकल टूटकर झड़ जाती है ॥५॥ (अतः) अहंत के मार्ग में पुरुषार्थ करो । शक्ति पाकर कायरपन में मस पड़ो, कायर मत

जिम जिम काया अणुहृष्ट सुखल । लिम तिम जाणेकउ अधिक दुखल ॥७॥
जाणतु सहइ जह दुखल देहु । खउ पाष-पुन्नउ चिति एहु ॥८॥
इम जाणि अधिरु संसार-वक्तु । संजम करि अप्पउ पाष-मुक्तु ॥९॥
परिहरि कोहाइ कसाय-बारि । पसरंतु पंच इदिय निवारि ॥१०॥
वाहिरि-अङ्गभतरि तव-विहाणि । कारि पुन्नह संघय कम्महाणि ॥११॥
अह पालि न सबकह जहचरितु । तज दूढ करि सावयधम्म चित्तु ॥१२॥
पंचेदिवत् भणुयत्तखिसु । आयरिय जणे सुकुलत्त दिसु ॥१३॥
गुरुदेवहैं सो मणी लहेवि । इक चित्ति सुह जिणघम्म सेवि ॥१४॥
रे जीव म आणिसि बलि लहेसु । भणुयत्तणि सावयकुलि-पवेसु ॥१५॥
चितामणि लहु समूद्रभजिस । पडियउ बलि लबभह केम चुजिस ॥१६॥

घटा

सम्मतु-धरिजह पाणपित, पणबोस वि बोसहि सुखकउ ।
गुण बहुसहित णाएहि मणि, बसु आंगेहि सहिककउ ॥१-१७॥

[१-१८]

दय-मूलधम्म अरिहंत-देउ । णिगंय-सुगुरु समत्त एउ ॥१॥
गुरु-वयण-जाणि मिछ्छत्त मणि । कुदेउ-कुगुरु-पुट्ठिंहि म लगि ॥२॥
सिज्जह-मूणिव चारित्तु-भट्ठु । सिज्जह कुल-सावय-मग्नु-भट्ठु ॥३॥
संमत्तहीण सिज्जह न जेण । अरिहंतु इक्कु मणि धरित तेण ॥४॥
सीयल-गो-गा-चामुङ्ग-बंडि । खितपाल-विनायक-पमुहच्छंडि ॥५॥
गणगउरवच्छुवारसि-विसासि । ए फलु संपञ्जह नरहवासि ॥६॥
बडसाइति कुलदेवति सराधु । करना सम्मतु वि घटह आधु ॥७॥
संसारचविक जे रमहि देव । किम मुकत्तिहि-कारणि तोहिं सेव ॥८॥
संगंय जि बुझह अप्पभारि । ते गुरु किम सबकह परह तारि ॥९॥
जिणि धम्म होह जीवहैं संघारु । किम लबभह लिणि संसारपार ॥१०॥

बनो ॥६॥ ज्यों ज्यों यह देह सुख का अनुभव करती है त्यों त्यों अधिक दुःख जानो ॥७॥ यदि देह दुःख सहता है तो जानो कि पापों का धाय करके यह पुण्य प्राप्त करता है ॥८॥ इस प्रकार संसार को बक और अस्थिर जानकर संयम को धारण करके अपने को पापों से मुक्त करो ॥९॥ क्रोध आदि चारों कषायों का त्याग करके पंचेन्द्रिय-विषयों के प्रसार का निवारण करो ॥१०॥ बाह्य और आभ्यन्तर तप करके कमों की निर्जरा और पुण्य का संचय करो ॥११॥ अथवा यदि चारित्र का पालन नहीं कर सकता है तो श्रावक के धर्म में चित्त दृढ़ रखो ॥१२॥ मनुष्यज्ञेष्ठ के आर्यस्तुष्ट में विद्यमान मनुष्यों द्वारा कुल और पंचेन्द्रियत्व को पाकर गुण के द्वारा गृहीत जो मार्ग है वह प्राप्त करके एक चित्त से शुद्ध जीनधर्म का पालन करो ॥१३-१४॥ हे जीव ! यह न जानो कि यह मनुष्य-देह और श्रावक के कुल में प्रवेश किर प्राप्त कर लोगे ॥१५॥ समृद्ध के बीच में गिरा हुआ नितामणि रत्न देखो कैसे किर प्राप्त होता है ॥१६॥

घटा—(अतः) प्राणश्रिय पञ्चीस दोषों से रहित, आठ गुण और आठ अंगों से सहित अकेले इस सम्यग्दर्शन को मन में धारण करो ॥१-१३॥

[१-१८]

सम्यक्त्व एवं मिथ्यात्म-वर्णन

धर्म वह है जिसका मूलाधार दया है, देव-अहंकृत हैं और सुगृह निर्यन्त्र साधु । इन सत्य तत्वों पर श्रद्धा करो ॥१॥ गुरुवाणी को जानो । मिथ्यात्म मार्ग में और कुण्ड तथा कुदेव के पीछे मत लगो ॥२॥ चारित्र से भ्रष्ट मुनीन्द्र और कुल के मार्ग से च्युत होकर भी श्रावक सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥३॥ किन्तु सम्यक्त्व-विहीन सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाता । अतः जिससे (सम्यक्त्व हो) ऐसे एक अहंकृत को मन में धारण करो ॥४॥ शीतला माता, गो-माता, नौदिया बैल, चामुण्डा और चण्डी देवी, क्षेत्रपाल और विनायक देवों को प्रमुख रूप से त्यागो ॥५॥ गणगौर और बत्सवारसा आदि में विश्वास करने के फल स्वरूप नरक-वास प्राप्त करता है (होता है) ॥६॥ बरसा और कुलदेवता आदि में श्रद्धा करने से सम्यक्त्व आधा घट जाता है ॥७॥ जो देव संसार-चक्र में रमता है उनकी सेवा मुक्ति का कारण कैसे (हो सकती) है ॥८॥ जो सपरिग्रही गुरु अपने ही भार से डूब रहा है वह गुरु दुसरों को कैसे पार लगा सकता है ॥९॥ जिस धर्म में जीवों का घात होता है उस धर्म से संसार से पार होना कैसे प्राप्त होता

कुलधनम् शुद्ध अप्पणं पालि । परषम्भकुञ्जचानिद टालि ॥११॥
वरि कियउ भलउ चंडालकम्भ । परनिद न भासिसि परहम्भम् ॥१२॥
परमप्पउ लब्धइ अप्पैचिति । संसार अण्ठतउ परहैचित ॥१३॥

घटा

असु-मूलगुणहं पालंतघहं, सत्त वसण-परिहाह जि किञ्जह ।
सम्मद्वसण णिम्मलेण, पहमी पडिमा एम धरिझह ॥१४॥

[१-१९]

इय आणि मुकरि थोङ्गु जुलु । दूसरय-रम्य-दीरिहि न चित्तु ॥१५॥
इणि सत्त-नरय-संगम-विचारि । जूआदिक सत्तइ विसण वारि ॥१६॥
वावीस अबभक्ख-अण्ठतकाय । वत्तोस वि वज्जहु वनु-अपाय ॥१७॥
महु-भज्ज-मंस-मव्वान म भविष । गउजर-भूलादि-कलोट-रकिस ॥१८॥
सूरण-पिडालू-पिड-जाति । वेयंगण वज्जहु जिमण-राति ॥१९॥
घोल-वडा-संधाणउ अपाण । विवलन्म केम जीवह सुखाण ॥२०॥
वाम वि वहिप्पहं विवलन्मु होह । तं असणे पाउ अण्ठति जोह ॥२१॥
पावेण णरयवासउ वि वाण । तस्व वि नहुप्पले पछ्य माण ॥२२॥
अणच्छाणिउ-पाणी-भूण-धोणि । संयज्जहु जलयर-जीव-जोणि ॥२३॥
हियडाम मिलिह नवकार-मंतु । करि पञ्चखाण नियमह संजुत ॥२४॥
पडिकमणं सामाइकु संभालि । पोसह वह विकायाति टालि ॥२५॥
वावियह जुधणु सस्तेहि खिति । संबलि जाणोवउ पे परति ॥२६॥
वे वियह जु वलि वीवाहि-गाहि । इणि भवि परभवि तिण आहि-आहि ॥२७॥
करि करण अलिउ घण (जोञ) बुल्लि । परधण-तिण परतिय-माय तुल्लि ॥२८॥
घण-धन्तन-खित-परिगह-पमाणु । परिहरि कूडातुल कूडमाणु ॥२९॥
इउ भासिउ जिणवरि घम्म-लेसु । आराहि जेम तुट्टइ किलेसु ॥३०॥
लढ़ी सामाणी पुन्त-जोणि । पम्माउ करिसि तउ पडिसि सोणि ॥३१॥

है (अधका कैसे संभव है) ॥१०॥ इतर व्रतों की कुचर्चा और निन्दा को टालकर अपने कुलधर्म का भली प्रकार पालन करो ॥११॥ चाष्ठाल का कार्य भी करना पढ़े तो वह भले ही भली प्रकार कर लो परन्तु परनिन्दा न करो और न दूसरों के मरण का कारणभूत बचन या गुप्त बात कहो ॥१२॥ परचिन्तन से अनन्त संसार और आत्मचिन्तन से परमपद प्राप्त होता है ॥१३॥

धत्ता—अष्ट मूलगुणों का पालन करते हुए सम व्यसन का त्याग कोजिए और निर्मल सम्यग्दर्शन पूर्वक पहलो प्रतिमा धारण कोजिए ॥१-१८॥

[१-१९]

सप्त व्यसन, अनन्तकाय, अभक्ष्य और अकर्तव्य विवार-विभव

इस प्रकार जान करके जो आचरणीय हैं उनमें संलग्न हो जाओ । रागदोष से चित्त दूषित मत करो ॥१॥ सम नरक प्राप्ति के कारण जानकर इन जुआ आदि सातों व्यसनों को त्यागो ॥२॥ बाईस अभक्ष्य और बत्तीस अनन्तकाय को भी छोड़ो । वे बहुत हानिकर हैं ॥३॥ मधु (शहद), मद्य (मदिरा), मास, मक्खन, गाजर-मूली, कंदरुआ आदि (जमीकन्द), राख-माटी मत खाओ ॥४॥ सूरन, पिढ़ालू और पिंग जाति के पदार्थ, बैंगन तथा रात्रि-भोजन छोड़ो ॥५॥ धोल, बड़ा (दहो-बड़ा) संधान अचार और द्विदल पदार्थ जानकार लोग कैसे जीमते हैं (जीमेंगे) ॥६॥ कच्चे दूध को जमाकर बनाये गये दही में द्विदल पदार्थों का मिश्रण द्विदल कहलाता है । उसे खाने में यति पाप बताते हैं ॥७॥ पाप से नरकबास जानो । वहाँ भी महात्र दुःख से (जीव) पकाया जाता है ॥८॥ अनछुना पानी नहाने-धोने में लेने से जीव जलचर-योनि प्राप्त करता है ॥९॥ नियम लेकर प्रत्याख्यान करके णमोकार मंत्र हृदय में धारण करो ॥१०॥ विकथाओं को टालकर प्रतिक्रमण, सामायिक और प्रोषध व्रत को सम्हालो ॥११॥ जीवों के द्वारा जो धन खेत में बोया जाता है वह परलोक का सम्बल जानो ॥१२॥ वर और वधु दोनों पक्ष के जो लोग फिर विवाह आदि में व्यय करते हैं वे इस भव में और आगामी भव में मानसिक व्याधियाँ पाते हैं ॥१३॥ दया करके झूठ मत बोलो । पराये धन को तृण सम और परस्ती को माता के समान (समझो) ॥१४॥ धन-धान्य और खेत आदि परियह का प्रमाण करो । कम-ज्यादा तौलनाभापना छोड़ो ॥१५॥ जिनेत्र ने इस प्रकार धर्म का संक्षिप्त स्वरूप कहा है । उसकी आराधना करो जिससे कि बलेश (दुःख) टूटते हैं । नष्ट हो जाते हैं ॥१६॥ सम्पदा पुण्य के योग से

जिणधम्महं विणु न वि सषक सुक्षम् । जिणधम्महं विणु न वि होइ सुक्षम् ॥१८
इउ परमश्वर इउ परम-मंति । मिछल-वयणु मन पञ्चि मंति ॥१९॥

घन्ता

मिच्छत्तु विच्छांडहि जीब तुहै, जिम तुट्टह संसार ।
मण्य सग्नि सुह पाइ करि, पाबहि भोक्त्त-कुवार ॥१-१॥

[१-२०]

इउ चिति वि विणि वि भाय तहि । हम णिकंभिय जिणधम्म-रहि ॥१॥
इह विवहारी घणु इत्यु लोह । जो दिणि-दिणि मुणिवर-दाणु देह ॥२॥
जिगु-अंचह बसुविह-बछ-लेह । जण-पोसह सतू-कार-बेह ॥३॥
साहम्मयवच्छलु करह सोह । सहस्रतुदयालउ-हियह होह ॥४॥
अरहंतुच्छहि णउ णभह कासु । जिणवर-वय-धारिय-तिणह दासु ॥५॥
हम पुण्णहीण जिणधम्म-क्रत । वहु पावर्पक खुडिभय णिचत ॥६॥
संसार-भवणनव-पडिउ जीउ । णीसरह ण विणु जिणधम्म-कील ॥७॥
इउ चिति वि जिणवर-धम्म-नत । अच्छहि सुहजाणे लीणचित्त ॥८॥
णउ दूहहि सुसुह कहव तहि । कीरति केर विवहारियहि ॥९॥
अणहि दिणि चितउ साहु तहि । ए विणि भव जिणभत्त-मणि ॥१०॥
किजजाइउवाउणिच्छरहि खणि । ॥११॥
किय काम्म असुह कप्पेहि रउ । जि संपज्जइ इण सुरहपउ ॥१२॥
अणहि दिणि चिति वि सेयालहं । सेटिठ लेवि गउ भाय वि हालह ॥१३॥
एणविज विस्तकिति मुणिसारउ । काम-कुखु कप्पणह कुठारउ ॥१४॥
जो भवहुं भव-उवहि उतारउ । साधवाय जो वाणि वियारउ ॥१५॥
जो धमस्थ-क्षाण-मउणेहि थक्कु । सावयहुं अम्मु ईरहि णिसंकु ॥१६॥

आप हुई है। प्रमाद करोगे तो शोक में पड़ोगे ॥१७॥ जैनधर्म के बिना न हन्द्र-सुख होता है और न ही मोक्ष ॥१८॥ ये ही परम अधर है और यह ही परम मंत्र है। हे भाई ! मिथ्यात्व वचनों में मत पड़ो ॥१९॥

घटा—हे जीव ! तू मिथ्यात्व का परित्याग कर जिससे कि समार-भ्रमण टूटे। समाप्त हो और मनुष्य पर्याय लया स्वर्ग के सुख प्राप्त करके मोक्ष का द्वार प्राप्त करो ॥१-१९॥

[१-२०]

अण्णोकर-पुण्णकर का विजातमावलोकन, अभयंकर का उनके प्रति चिन्तन और मुनि विश्वकीर्ति द्वारा आवक-धर्म वर्णन

इस प्रकार दोनों भाई वहाँ (अभयंकर के घर) विचारते हैं कि हम जैनधर्म में रहकर भी निकम्मे हैं (आत्मकल्याण के लिए कुछ नहीं करते) ॥१॥ इस लोक में यह व्यापारी-अभयंकर सेठ धन्य है जो प्रतिदिन मुनि को (आहार) दान देता है ॥२॥ अष्ट द्रव्य लेकर विधि पूर्वक जिनेन्द्र की पूजा करता है। मनुष्यों को काम देकर जीवों का पोषण (रक्षा) करता है ॥३॥ वह साधीमियों पर वात्सल्य (भाव) स्नेह करता है, हृदय से हजारों जीवों पर दया करता है ॥४॥ अहन्त-देव के सिवाय किसी अन्य देव को नमन नहीं करता। जिनेन्द्र के वचनों को अथवा ब्रतों को जो धारण करते हैं वह उनका सेवक है ॥५॥ हम पुण्यहीन हैं, जो धर्म त्याग-कर बहु पाप रूपी पंक के नीचे निपत्त हैं ॥६॥ भव-सागर में पड़ा हुआ संसारी जीव बिना जैनधर्म रूपी कील (का सहारा लिए वहाँ से) नहीं निकलता है ॥७॥ ऐसा विचार करके जैनधर्म में नत (वे दोनों) तल्लीन चित्त से शुभ ध्यान में बैठ जाते हैं ॥८॥ वे किसी भी प्रकार से वहाँ प्राणियों को नहीं दुखाते। व्यापारी सेठ अभयंकर के यहाँ (ही) कीड़ा करते हैं ॥९॥ उनके सम्बन्ध में (एक) दिन सेठ ने विचार किया—ये दोनों (भाई) भव्य हैं, जिनेन्द्र के भक्तों में मणि के समान श्रेष्ठ हैं। उपाय करता हूँ और ध्यण भर में (भव-सागर से) पार लगाता हूँ ॥१०-११॥ जिससे इत्हें देव-पद प्राप्त हो वह अजित अशुभकर्म रूपी मल को काटता हूँ ॥१२॥ किसी दूसरे दिन विचार करके सेठ दोनों भाइयों को तत्काल लेकर चैत्यालय गया ॥१३॥ काम रूपी दुर्बक्ष को काटने के लिए कुठार स्वरूप सारभूत मुनि विश्वकीर्ति को प्रणाम किया ॥१४॥ भव्य जनों को संसार-सागर से तारनेवाले और स्याद्वाद-वाणी के विचारक, धर्मध्यान के लिए मौन पूर्वक स्थित वे मुनिराज शंका विहीन होकर आवक-धर्म

किञ्जइ सामायउ तिष्णि-काल । पोतहुतवासु किञ्जइ सुहाल ॥१७॥
जिणपूण-पश्चाणु-विलेवणाहं । वंभवउ पालह रउ-हराहि ॥१८॥

घटा

धम्मु वि वह लक्खण, सिवपउ वक्षण,
वाण चञ्चकद्व विज्जाहि ।
सत्तुह वय किञ्जइ, गंथ-सुणिज्जाइ,
किञ्जइ साजय एह चिह्नि ॥१-२०॥

[१-२१]

॥ उपतं च ॥ सो जयउ जेण विश्वियं, संबद्धर चाड मासि पञ्चेसु ।
जिधंस्म सावयाणं, जेण वसायेण अम्ममए ॥ छ ॥
॥ दोहा ॥ इउ णिसुणेविण मुद्दमई विवहारीहि वि तेण ।
तं दुह भायहं कम्मकर, एहाणु कराविउ तेण ॥
॥ यतः ॥ स्नानं नाम अनः प्रसाद जननं कुःस्वप्न-विद्यंसनं,
शोचस्यापतयां मलापत्तुरणं सवर्द्धनं लैजसा ।
रुपोद्योतकरं सिरसुखकरं कामाग्नि-संदीपनं,
स्त्रीणां मन्मथमोहनं अम्भुरं स्वाने दसेते शुणा ॥ छ ॥
एहाणु कराइ वि दुहुवन्धवेहि । पहराविय वस्थई सासि-समेहि ॥ १ ॥
गउ रयणमद्वय-वर पडिम जेत्यु । वसु वववहं चिष्णह वि जो महत्यु ॥ २ ॥
जावहि कम्मकर पुजाणतथ । विवहारिय गिएहइ फुल्ल सुत्य ॥ ३ ॥
अद्वे कम्मेरह देह तत्थ । णउ लहिभि भव्य परवस्थ-वस्थ ॥ ४ ॥
बुजहइ विवहारिय कि एण लेहु । भहु मण अच्चरित पुणुसवेहु ॥ ५ ॥
ते भणहि जसस हम फुल्ल लेहि । तहु पुणु होह हमि तं ण तेहि ॥ ६ ॥
णउ अलिउ वयणु हमि भणिउ लोह । बज्ज-रह जिणेसह-परमजोह ॥ ७ ॥
जो भोयणकाले चरम सेह । तस्स वि सरोरि वहु तित्ति होह ॥ ८ ॥
तहु अम्म-अष्टमहु एहु भेह । जो करह सु तिष्पहु सुकिय हेह ॥ ९ ॥

पालने को प्रेरित करते हैं ॥१५-१६॥ (वे कहते हैं कि—) कर्म-मल को दूर करनेवाले ब्रह्मधर्य को पाली, श्रिकाल सामायिक करो, सुखकारी प्रोषध उपवास करो और अभिषेक तथा बिलेपनपूर्वक जिनेन्द्र की पूजा करो ॥१७-१८॥

घटा—शिव-पद प्रदायी दश लक्षण धर्म (धारो), चारों प्रकार के दान दो, प्राणियों पर दया करो, आगम-ग्रंथ सुनो, यही श्रावकधर्म की विधि है । पालन कीजिये ॥१८-१९॥

[१-२१]

[पूजा में पर द्रव्य-ज्यवहार सम्बन्धी अण्ठकर-पूजाकर के विचार
तथा मुनि विश्वकीर्ति का उपबोध]

कहा भी है—जिसके प्रभाव से धर्म विहीन श्रावक धर्ममय हो जाते हैं वह वर्षगाँठ महोत्सव जिसके द्वारा चातुमासि के पर्वों में मनाया जाता है वह जयवन्त हो ॥

दोहा—ऐसा विशुद्धमति मुनि विश्वकीर्ति से सुनकर उस व्यापारी अभ्यंकर सेठ के द्वारा दोनों कर्मचारी भाई नहलाये गये ।

क्योंकि—स्नान में दस गुण होते हैं—

- (१) मानसिक प्रसन्नता का उत्पादक
- (२) अशुभ स्वप्नों का विनाश
- (३) शोकहारी
- (४) मलिनता को दूर करनेवाला
- (५) तेज-संबद्धक
- (६) सौन्दर्य का उद्योतकर
- (७) सिर के लिए सुखकर
- (८) कामाग्नि का उत्तेजक
- (९) स्त्रियों का मन्थन-मोहन और
- (१०) शमहर ।

सेठ अभ्यंकर दोनों भाइयों को स्नान कराकर और चन्द्रमा के समान श्वेत उज्ज्वल वस्त्र पहनाकर तथा बहुमूल्य अष्ट द्रव्य लेकर जहाँ रत्नमयी श्रेष्ठ प्रतिमा (थी वहाँ) गया ॥१-२॥ जाते हुए सेठ कर्मचारियों को पूजा में चढ़ाने के लिए सुन्दर और स्वच्छ फूल ले लेता है ॥३॥ वहाँ वह आधे फूल कर्मचारी भाइयों को देता है । (किन्तु) वे भव्य दोनों भाई पर द्रव्य और वस्त्र नहीं लेते हैं ॥४॥ सेठ (उनसे) पूछता है (द्रव्य) क्यों नहीं लेते ? मेरे मन में आश्चर्य और सन्देह (प्रकट हो रहा) है ॥५॥ वे भाई कहते हैं (हे सेठ) मदि हम आपके फूल लेते हैं तो इससे आपका पुण्य होता है हमारा नहीं ॥६॥ हमने क्षूठ नहीं कहा है । जिनेश्वर की परम-ज्योति पर हमारी वज्र के समान दृढ़ प्रीति है ॥७॥ भोजन के समय जो नैवेद्य (पकवान) का सेवन करता है उसके ही शरीर में तृप्ति होती (सभी को तृप्ति प्राप्त नहीं होती) ॥८॥ धर्म और अधर्म में यही भेद है ।

णउ लेहि साहु-परदब्धु तेण । आराहति जिणु निष्ठिर मणेण ॥१०॥
तं सुणि विवहारी बोसु जाउ । ए भववहै जिण भण-सुद्धभाउ ॥११॥
मण-वयण-काय परश्वथ-धत्त । गित्थरहि भवंत्रुहि वेद्ध भत्त ॥१२॥
गिय जयवर-पासह विण्ण-भाय । जिण-धम्मुपरि जिणि चितु लाय ॥१३॥
॥ उत्तं च ॥ वहुमाणो वंदणयं, गुण-थुइ लहु उवसगा-गिगोहण ।

उवधारदाणमेकय, गुरुपूया पंचविहा होइ ॥१४॥

पुणु पुणु दिवहारिय पणमि गुरु । पुणु मुणिवर ए दी भाय णिरु ॥१४॥
षड पुज्जहि जिषावर मज्जु दब्धु । तं कारणु बुझहि साहु-भञ्जु ॥१५॥
तं णिसुणि भणहु गुरु अमियदाणि । तह-णाण-सजुलउ सीलखाणि ॥१६॥
भो कम्मकर जिणणाहु पूय । ॥१७॥

तुनि किण करहु दुम्माइ हरोय । जें सुर-णर-फणिपउ लहुहि जीय ॥१८॥
तं णिसुणि वि धणकर-पुण्णकर । अक्षहि परिउत्तर सुच्छु णिरु ॥१९॥
गिय दब्धहं शुमुमहं हंमि लेर्हि । अंचहि जिणसामि उं थुइ करेहि ॥२०॥
तं णिसुणि भणहु जह किचि वव्धु । जह अत्थि तुम्ह पहि करहु भञ्जु ॥२१॥

घट्टा

शुक्रह कम्मकर, भणिव महुर गिर,
महुपहि कजडीय पंच जई ।

तं मोल्हि कि लक्ष्मह तर्हि,
कुसुम अमोल्लह मुणि सुमहि ॥१-२॥

॥ गुरुतं ॥ यतः ॥ जले तैलं खले गुह्यं, पात्रे बाने मनागपि ।

प्राल्ने सास्त्रे स्वयं जांति, विस्तारव सुसक्षितः ॥
॥ उक्तं च ॥ यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीणः, स पंडितः स भृतवान् गुणजः ।
स एव वक्ता स च दशानोयः, सर्वे गुणा कांचनमाश्रयति ॥४८॥

जो पुण्य कार्य करता है वही परम त्रुप्ति को पाता है ॥१॥ यही कारण है कि हे सेठ ! हम पर द्रव्य नहीं लेते । अपने स्थिर मन से जिनेन्द्र की आराधना करते हैं ॥२०॥ ऐसा सुनकर सेठ को दुख उत्पन्न हुआ । (वह विचारता है कि) ये भाई भव्य हैं, शुद्धभाववाले हैं, (इनके) मन में जिनेन्द्र (विराजमान) हैं ॥२१॥ मन, बच्चन और काष्ठ से परन्वस्तु का त्याग करके भवत ये दोनों भाई भवसागर से शीघ्र पार हो जानेवाले हैं । उस पर निकल जाने वाले हैं ॥२२॥ जैनधर्म पर जिन्होंने चित्त लगाया है उन दोनों भाइयों को वह सेठ यतिवर विश्वकीर्ति के पास ले गया ॥२३॥ कहा भी है— बहुत मान-सम्मान सहित कल्पना करना, गुण-स्तुति करना, उपसर्गों का (निवारण करना), दोषों का गोपन करना और उपकार के लिए गुरु को दान देना इस प्रकार गुरुपूजा पाँच प्रकार की होती है ।

सेठ अभयंकर बार-बार गुरु से कहता है । हे मुनिवर ! ये दोनों भाई निश्चय से मेरी द्रव्य से जिनेन्द्र को नहीं पूजते हैं । हे साधु इन भव्य (पुरुषों से) इसका कारण पूछो ॥१४-१५॥ ऐसा सुनकर तीन ज्ञान के धारी, शील की खदान गुरु अमृतमयन्वाणी से कहते हैं—हे कर्मचारी भाई ! जिनताथ को पूजो ॥१६-१७॥ जिससे जीव सुरेन्द्र, नरेन्द्र, नारेन्द्र पद पाता है, दुर्गति को हरनेवाली जिनेन्द्र की पूजा तुम क्यों नहीं करते ॥१८॥ ऐसा सुनकर धर्ण्यंकर और पुण्यंकर भली प्रकार प्रत्युत्तर स्वरूप कहते हैं— हे स्वामी ! निज द्रव्य से हम फूल लेते हैं और जिनेन्द्र की पूजा तथा स्तुति करते हैं ॥१९-२०॥ ऐसा सुनकर यति विश्वकीर्ति कहते हैं—हे भव्य ! यदि तुम्हारे पास कुछ द्रव्य है तो (पूजा) करो ॥२१॥

धृता—उन दोनों कर्मचारियों में एक कर्मचारी ने मधुर वाणी से कहा— हे यति ! मेरे पास पाँच कौड़ियाँ हैं । हे विद्वान् मुनि ! उन कौड़ियों के मूल्य से अमूल्य पुण्य कैसे प्राप्त कर सकता हूँ ॥१-२१॥ गुरु ने कहा— जल में तैल, दुष्ट पुरुष को कथित रहस्य, सत्यात्र को दिया गया किंचित् दान और बुद्धिमान को दिया गया शास्त्र स्वयमेव ही सुशक्ति से फैल जाते हैं ॥

कहा भी है—जिसके (पास) बन होता है वही मनुष्य कुलीन, वही पंडित, वही श्रुतज्ञ और गुणकान तथा वह ही वक्ता और दर्शनीय होता होता है । यथार्थ में सभी गुण द्रव्याभित हैं अथवा द्रव्य का आश्रय लेते हैं ॥४॥

[१-२२]

तं नि (ण) सुणि वि वीपउभणहं बाय । हृङ्कि करेमि णिहि-हीणु जाय ॥१॥
 एकइ ण चराडी जाइ महु । किउ पुजनउ गुरु तिल्लोय-पहु ॥२॥
 यउ अविलउ विणि वि भाय णिरु । वउ लिहि जईपहि दुरियहरु ॥३॥
 चउ विह आहारह ऐमु किउ । णिसुणतं भल्लषण अह सुहिज ॥४॥
 पुणु विणि भाय गुरु कहि सुमई । किउ अण-पयारह पुणु हवई ॥५॥
 तहं अखलइ मुणि चउमासि एसु । अट्ठाहियणांदोसुर-पञ्च एसु ॥६॥
 किज्जह णिम्मलु वउ रघु-हरेसु । जिण-पुजजा किज्जह तउ करेसु ॥७॥
 तं णिसुणि वि मण-वय-काय वे वि । संथिय उवासु निय गुर-समीधि ॥८॥
 णवयार-गुणहि एयग चित्त । जं राहहं सुर-णर सिवह-पल ॥९॥
 यय सुरजगम्भि णिय साहु सत्थ । किय एहाणु पहिरि अंदुजज-वत्थ ॥१०॥
 कउडियहं पंच तहं देवि तत्थ । लिय फुल्ल सुयंधहं रहसि सुच्छ ॥११॥
 जिण-सुह-गुरु पुजिल वि थुइ करेवि । सुहज्जाणे सामायउ सरे वि ॥१२॥
 पुणु भोयण-वेलहू सेटिठ सत्थ । उवविट्ठ वेवि चह भूजणत्थ ॥१३॥
 तिणह भायण सेटिठणि घित्तु भोजु । बडरस सजुसुच्छहूह डमणज्जु ॥१४॥
 सुपरोसिउत्तहं भञ्जु जोहं । णित्थरिहूह णिय किय पुण लोह ॥१५॥
 तहं चितहि णियमण सुद्ध भाय । जह पत्तु मिलहू इव को वि आय ॥१६॥
 तं देहि भोजु तं णह वि पाय । ॥१७॥
 इय चिति वि भावहि भावणाहं । आ मोक्ष-सोक्ष-उप्याय णाहं ॥१८॥
 तं पुणहं चारण-जुयल आय । तव-तेय-विवायर मयण-घाय ॥१९॥
 शिद्धहं दंसणू वरु देवयाहं । गुर णिय समाणु जसु पिहमिमाहं ॥२०॥

[१-२२]

[अष्टांकर-पुष्टीकर का विश्वकीर्ति मुनि से ब्रत-प्रहृण तथा चारण-
युगल को आहार-बान एवं पुष्ट-महिमा]

ऐसा सुनकर दूसरा भाई कहता है—मैं द्रव्य-हीन हो गया हूँ, क्या करूँ ॥१॥ मैं एक कौड़ी भी उत्पन्न नहीं करता हूँ अर्थात् मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। हे गुरु ! तीन लोक के स्वामी की मैं कैसे पूजा करूँ, उन्हें कैसे पूजूँ ॥२॥ मुनि ने दूसरे (इस निर्धन) भाई से कहा—यति से पापहारी ब्रत प्रहृण करो ॥३॥ वह भव्य पुरुष यह सुनते ही अति सुखी हुआ। उसने जारी शब्दान् ले आहार (लठा) का निपाम किया (लिया) ॥४॥ इसके पश्चात् वे दोनों भाई मतिमान् गुरु से कहते हैं—दूसरे प्रकार से यह कैसे होता है ? ॥५॥ मुनि कहते हैं—इस चातुर्भासि में आष्टाङ्गिक भन्दीद्वार पर्व में पाप-मैल को दूर करनेवाले निर्मल ब्रत को कीजिए, जिनेन्द्र की पूजा कीजिए और तप करो ॥६-७॥ मुनि से ऐसा सुनकर मन-वचन और काय से वे दोनों भाई अपने गुरु के पास उपवास में बैठ गये ॥८॥ जिसकी आराधना से देव और मनुष्य मोक्ष पाते हैं उस णमोकार मन्त्र को वे दोनों भाई एकाग्रचित्त होकर जपते हैं। मन्त्र की आवृत्ति करते हैं ॥९॥ सूर्योदय होने पर वे दोनों अपने सेठ (अभयंकर) के साथ गये। उन्होंने स्नान और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल श्वेत वस्त्र धारण करके पाँचों कीड़ियाँ बहीं (सेठ को) देकर तथा सहर्ष (सेठ से) सुगन्धित सुन्दर-स्वच्छ फूल लेकर जिनेन्द्रदेव जिनवाणी और गुरु की पूजा-स्तुति करके सामायिक करने के पश्चात् भोजन का समय होने पर सेठ के साथ वे दोनों भाई पकवान खाने बैठे ॥१०-१३॥ सेठानी छहों रसों से युक्त, क्षुधा का दमन करनेवाला भोजन लेकर और ज्ञानी, भव्य उन दोनों भाइयों को लोक में किये अपने पुण्य से परोसकर (भव-सागर से) पार हो जाती है (भव-सागर से पार होने का बन्ध कर लेती है) ॥१४-१५॥ वे निर्मल परिणामी भाई तब विनारते हैं—यदि कोई भी पात्र आकर मिल जाता है तो उनके चरणों की वन्दना करके यह भोजन उन्हें दें ॥१६-१७॥ ऐसा चिन्तन कर वे भाई मोक्ष-सुख के समान मुख की उपाय स्वरूप (सोलह) भावनाओं को भाते हैं ॥१८॥ उनके पुण्य से कामजयी तप रूपी तेज से सूर्य स्वरूप दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आते हैं ॥१९॥ उन सिद्ध यतियों के दर्शनार्थ देव आते हैं। वे गुरुओं को अपने नृप इन्द्र के समान किन्तु यश से पृथक्/मिन्न विचारते हैं/मानते हैं ॥२०॥

गय शब्दु वंसु महि णट्ठयाहं । पाविज्ञाइ तं पुण्ड्रं कियाहं ॥२१॥
किल्प पुण्ड्रं पसायं तरइ भड़ । किंपुण्ड्रे संपहु होइ जाड ॥२२॥
विषु पुण्ड्रे जीउ च अहु चहु । पावेष्य पाकहु मकम् दुहु ॥२३॥
चुहुहेण वि माणसि गद्ध लोड । संपज्जाइ सुज्जहं जाइ जाड ॥२४॥

धृति

तहु विष्णि वि भायर, वय-णिम्मायर,
णिय-णिय-भोयणु सम्बु लहु ।

मुणिन्मुशलहं दिष्णउं, चह संपुणउं,

गय चारण जायास पहु ॥१-२॥

इय महाराय सिरि अमरसेण चरिए । चउधग सुकहकहामयरसेण
संभरिए । सिरि पंडिय मणि माणिक्कवि रहए । साधु महणा-सुप चउधरी
वेवराज णामंकिए । धणणंकर-पुणणंकर धम्मंलाभ, बहराग-भाव,
मुणिदान-पयच्छुण वणणणं णाम पढमं परिच्छेय समतं ॥ सन्धि ॥१॥

यः शोभते सकलसाधु जनेषु नित्यं,

गंभीर-धीर्य निखिलार्थं गुणैरतीव ।

श्री जैनशासन समुद्र-विवद्वनेन्वुः,

श्रीमान् सदा जगति नवतु वेवराजः ॥

इति आशीर्वादः ॥ उक्तं च ॥

हृषा सम्बत्य सिया, सिहिणो सम्बत्य चित्तियं गस्ता ।

सम्बत्य जम्म-मरण, सम्बत्य भोयण-भोयं ॥१॥



जिनका पृथ्वी पर द्रव्य और वंश नष्ट हो जाता है वह पुण्य-क्रियाओं से प्राप्त कीजिए ॥२६॥ किये हुए पुण्य के प्रसाद (प्रभाव) से भव्य जीव (भव-सागर से) तर जाता है, सम्पत्ति हो जाती है ॥२७॥ बिना पुण्य के जीव सुख नहीं पाता । किन्तु पाप से बहु दुःख पाता है ॥२८॥ दुःख से मन में अतीव सोच-विचार को (चिन्ता) प्राप्त होता है और सोच-विचार से (शारीरिक) क्षीणता उत्पन्न होती है ॥२९॥

घटा—उन निर्मल परिणामी दीनों भाइयों ने अपनी-अपनी सम्पूर्ण भोजन-सामग्री से युक्त थाली शीघ्र युगल चारण मुनियों को दे दी । स्वामी (आहार लेकर) दीनों चारण मुनि आकाश में चले गये ॥१-२२॥-

अनुवाद

यह महाराज श्री अमरसेन का चरित चारों वर्ण (वर्ण) को रसों से भरपूर, सुकथनीय कथाओं से युक्त है । पण्डितमणि श्री माणिक्कवि के द्वारा सेठ महणा के चौधरी देवराज नामधारी पुत्र के लिए रचा गया है । इस ग्रन्थ का धण्णकर-पुण्णकर को धर्म-लाभ, उनके वैराग्य-भाव और मुनियों के दान प्रदान का वर्णन करनेवाला प्रथम परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ सन्धि ॥१॥

जो सम्पूर्ण साधु जनों में गाम्भीर्य, धैर्य, सम्पूर्ण अर्थ और अतीव गुणों से नित्य सुशोभित होता है, श्री जैनशासन रूपी समुद्र की वृद्धि के लिए चन्द्र स्वरूप वह श्रोमान् देवराज संसार में सदैव आनन्दित रहे । यही आशीर्वदि है । कहा भी है—

हंस सर्वत्र इवेत और सिंह सर्वत्र चिन्तनीय, तथा बड़ों के समान आचरणशील (होता है) । जन्म-मरण सर्वत्र है और भोजन में उपभोग्य पदार्थ सर्वत्र (हैं) ॥१॥



द्वितीय परिच्छेद

[२-१]

ध्रुवक

हो सेणिय अरि वि डसेणिय, अगमइ अण्णु वि भासमि ।
जिहं विष्णि वि रायहु सुय, अइ लंविवभुय, हुय तिहु संसड णासमि ॥३॥
मण-बयण-काय करि सुझ भाउ । विउ पुण्णु सुहंकर असुह-घाउ ॥४॥
तो जाह वि विवहारिय खुतउ । भोयणु करहु बत्थ किउ जुलउ ॥५॥
अं विष्णउ तुमि मुणिवरिय दाणु । तुम्हहं सरि अण्णु ण कोइ जाणु ॥६॥
ते अकथहि णिसुणहि सेटिठ भव्य । णउ भुजहि भोयणु अम्ह-इव्य ॥७॥
हमि सपलं वप्य-संतोसु जाउ । णउ भावह अम्हहं असण-भाउ ॥८॥
तं सुणि वि सेटिठ जंपइ तुरंतु । साहमिमव-बचछलु करहि तत्तु ॥९॥
जइ एवर्हि अपणत्थेण मित्त । तउ भुजहि भोयणु रहस-विलु ॥१०॥
सं सुणि वि भणहि वे भाय जुत्तु । णिय भुयहं उप्यायउ चह णिदत्तु ॥११॥
णउ कहच्छंडिज्जइ दउ वि जुत्तु । जो वयणे वोलिझह पविलु ॥१२॥
इव चउविह असणहं अम्ह णेमु । सूरगमि भोयणु करहि लेमु ॥१३॥
तिणि वयणु सुणेधिणु सेद्वि सुट्ठु । कम्मारयहं किउ विष्ण शुट्ठु ॥१४॥
जंचछटिहि रत्तिहि विहि लिहिओ । तं मत्थहं अकखर-माल घिज ॥१५॥
वेवेहि लिहायाउ विहि लिहिऊ । तं फेडण कुइ ण समत्यु हुउ ॥१६॥
जइ आरोहइ गिरि-सिहरि जीउ । उहि लंघि पयालहं जाइ भोउ ॥१७॥
विहि लिहियह अकखरमाल-करि । तं फलइ णरहु सुरणाय सिरि ॥१८॥
कहमरणवस्थछुद्दृइ ण जीउ । जइ जाइ विएसह जमह-भीउ ॥१९॥
जहं कायकलेवरच्छाह् सरि । तं लगउ भइ [वि] सरीर परि ॥२०॥

[२-१]

[अण्णकर-पुण्णकर का चतुर्विध आहार-स्थाग और समाधि-
मरण वर्णन]

ध्रुवक

हे शत्रुओं को डसनेवाले श्रेणिक ! अति दोषबाहु राजकुमारों के सम्बन्ध में तुम्हारे हुए संशय का नाश करता हूँ और आगे (क्या हृषा) कहता हूँ ॥३॥

मन-वचन और काय से शुद्ध, पुर्णवान्, कल्याणकारी, अशुभघाती दोनों भाइयों को तब सेठ ने जाकर उपयुक्त वस्त्र धारण करके भोजन करो, कहा ॥१-२॥ जो चारण मुनियों को तुम दोनों ने दान दिया है । तुम लोगों के समान अन्य दूसरे को नहीं जानता हूँ ॥३॥ वे भव्य (भाई) कहते हैं हे सेठ ! सुनो । हम अब भोजन नहीं करते हैं (करेंगे) ॥४॥ हमारे सम्पूर्ण शरीर में संतोष उत्पन्न हुआ है । हे भाई ! हमें भोजन नहीं भाता है ॥५॥ ऐसा सुनकर सेठ तल्काल कहता है—हे पूज्य ! साधार्मियों से स्नेह/श्रीति करिये ॥६॥ हे भित्र ! यदि इस प्रकार भोजन करना है तो सहर्ष चित्त से भोजन करो ॥७॥ सेठ के इस कथन को सुनकर वे दोनों भाई कहते हैं—हम अपने ब्राह्मण से उपासित भोजन ही निश्चय (करेंगे) ॥८॥ जो वचन (हम) बोलते हैं, (इसी प्रकार) जो ब्रत भली प्रकार बोला जाता है/प्रहण किया जाता है, उसे कैसे भी त्यागना नहीं चाहिए ॥९॥ हमारा चारों प्रकार के आहार का सूर्योदय में ही आहार करने का कल्याणकारी नियम है ॥१०॥ उनके वचन सुनकर सेठ ने भली प्रकार कर्मचारी भाइयों से विनय/प्रार्थना की ॥११॥ वष्ठोपवास की रात्रि में माथे पर विधाता ने जो अकरमाल लिख दी है (वह) स्थिर है ॥१२॥ भारग के द्वारा लिखाया गया और विधि द्वारा लिखे गये को कोई भी बदलने को समर्थ नहीं हुआ ॥१३॥ जोब यदि पर्वत की चोटी चढ़ जाता है, भयभीत होकर समुद्र लौंचकर पाताल में चला जाता है तो भी विधाता की लिखी अक्षर पंक्ति (लेख) मनुष्य, देव और नागेन्द्र को भी फल देती ही है ॥१४-१५॥ यम से भयभीत होकर यदि जोब विदेश भी चला जाता है (तो भी) किसी प्रकार से भी मरणकाल नहीं छूटता है अर्थात् मरण काल अपने निश्चित समय पर आता ही है ॥१६॥ जैसे शरोर को छाया शरीर का अनुसरण करती है हे भाई ऐसे ही वह शरीर के पीछे लगा हुआ है ॥१७॥

घटा

धणकरु पुण्यकरु, भाइ कल्पकरु, सुहभावक-भावे वि न्मे।
किउ कालु समाहिंहि, णव-पथ आवर्हि, जें नर-सुर-पउ होइ जगि ॥१४॥

[२-२]

सणिकुमरि-सन्गि ते वे वि जाय। उप्पायसिलाहि वि जम्मु-पाय ॥१५॥
बिभिय जो कहिं ते बस-दिसाहैं। को यहं ठाणु वि कि पुणियाहैं ॥१६॥
इय चितंते तहं अद्विष्टाम् । उप्पणाल चारिवं सताकु जालि ॥१७॥
रिसि-सायर भुजि वि परम आउ । अच्छार-यण-समु पुणु मुंचि काउ ॥१८॥
इह जंक्वदीवहं भरहवरिसु । संठियर पसिङ्गु [क] कुलिंग-देसु ॥१९॥
तहिं दलवदृणु णामें पदृणु । वहु वेरहु वि सेण-आवदृणु ॥२०॥
बड-विश्छुब संदीसहि पत्तहैं । णउ हिसणुहिसइ [सह] पत्तहैं ॥२१॥
चउ-गोउर-मुह णं कमलासणु । उज्जल तिणिण कोहु ईसरतणु ॥२२॥
तहं सूरसेणु णरबह पर्यहु । अरि-गिरि-शिरवलणहू वज्जवंहु ॥२३॥
तं सधलंतेउर उपरि राणी । णामें विजयादेवि-सयाणी ॥२४॥
इत्थंतरि कुरदेसु खण्डउ । गजपुर णामें धण-कण-पुणउ ॥२५॥
तहि णलइ अहवलु देवबत्तु । देवसिरि भज्जहि रहहि रत्तु ॥२६॥
सह पुहमि पहाणउणिवह [हि] पुञ्जु । णिय लेय-जिल्लड जेण सुञ्जु ॥२७॥
तहं गजपुर-सामिहि सूरसेणु । लगियउ केर तं मणि-रवणु ॥२८॥
संतुहउ णखह दिणा वेस । वहु हय-गय-वाभर-च्छत-कीस ॥२९॥
तहं सूरसेणु णिव रहह जाम । विजयादेविहि संजुत्तु ताम ॥२३॥
भुजह भोयह सो वि णरेसह । सह-सत्तु-वयालउ बूङ्हिहि-सुरगुर ॥२७॥
तहं समयहं पुञ्चहं भावणेहि । मुणि-वारण-जुयलहं वाणवेहि ॥२८॥
धण-पुणणं केउ कमेण सरि । उप्पणइं विजयादेवि-उरि ॥२९॥

व्रता— अष्टमंकर और पुण्यकर दोनों कर्मचारी भाइयोंने शुभ (सोलह कारण) भावनाओं को भाते हुए तथा जिससे भनुष्य और देव-पद होता है उस नौ पद वाले णमोकार मंत्र जपते हुए समाधिमरण किया ॥२-१॥

[२-२]

[सनत्कुमार-स्वर्ग से जायकर राजा सूरसेन के युगल पुत्र के रूप
में अष्टमंकर-पुण्यकर का जन्म-बर्णन]

वे दोनों भाई सनत्कुमार स्वर्ग में जाकर उत्पादशिला पर जन्म प्राप्त करके विभ्रम में पड़ जाते हैं (वे यह नहीं समझ पाते कि) दस दिशाओं में कहाँ से किस पुष्य से आये हैं । यह कौन स्थान है ॥१-२॥ इस प्रकार किष्मार करते ही उन्हें अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ । इस ज्ञान से (उन्होंने) सब कुछ जान लिया ॥३॥ सात सागर की छेष्ठ आयु को भोगने के पश्चात् अप्सरा के समान सुन्दर देह त्याग करके (राजा सूरसेन की रानी विजया-देवी के गर्भ में आये) ॥४॥ इस जम्बूद्वीप का (एक) भरतक्षेत्र है (उसमें) प्रसिद्ध कलिंग देश स्थित है ॥५॥ उस देश में दलवट्टण नाम का पत्तन-नगर है । (उसके) द्वार-दरवाजे से बहुत सेना घूमती-फिरती है ॥६॥ नगर में बट वृक्ष दिखाई देते हैं । उस नगर में हिंसक (भी) हिंसा नहीं करते हैं ॥७॥ चार गोपुरों में वह ऐसा प्रतीत होता है मानों चतुर्मुख ब्रह्मा हो । उज्ज्वल तीनों कोट ईश्वर के द्वारा रचे गये प्रतीत होते थे ॥८॥ वहाँ बैरो छपी पर्वत के वैरियों के सिर स्वरूप विखरों को तोड़ने के लिए बज्जदण्ड स्वरूप प्रचण्ड सूरसेन नृपति है ॥९॥ उस राजा के अन्तःपुर की जानवान् विजयादेवी प्रधान रानी है ॥१०॥ इसी राजा के शासन के अन्तर्गत सुन्दर कुरुदेश (कुरुक्षेत्र) है । (उसमें) धन-धान्य से परिपूर्ण गजपुर (हस्तिनापुर) नाम का (नगर है) ॥११॥ वहाँ अति बलशाली देवदत्त राजा देवश्री भार्या में मग्न रहता है ॥१२॥ निज सेज से जिसके द्वारा सूर्य भी जीत लिया गया है (वह) पृथिकी पर सभी राजाओं के द्वारा पूजा जाता है ॥१३॥ गजपुर के राजा को मन में सूरसेन अच्छा लगता है ॥१४॥ उसने उस राजा (सूरसेन) को देश, वोहे, हाथी, चैवर, छत्र और कोष देकर संतुष्ट किया ॥१५॥ वहाँ राजा सूरसेन जब तक रहता है उसके साथ विजयादेवी रहती है ॥१६॥ बुद्धि से बुहस्ति के समान, हजारों प्राणियों पर दया करनेवाला वह राजा भोगों को भोगता है ॥१७॥ उसी समय पूर्व कुत भावनाओं के द्वारा और चारण ऋद्धिभारी युगल मूनियों को (पूर्वभव में) दान दिये जाने से धण्णकर और पुण्यकर

ॐ हुरि परिहरि अबयरियहं । ॐ लबणं कुसद्व-पीडिवहं ॥२०॥

घर्ता

जं पुवव-भवतर, जिणु-पुजिजउकर, पावित्र उत्तिव जम्मु भवि ।
संपुण्णहं रथभहं णव मासहं तहं, उप्पण्णहं जुपलाहं भवि ॥२१॥

[२-३]

सुह दिणयहिं सुमुहुत्तहि वेरहि । लगुण पुणहं शयण समेयहिं ॥१॥
भज उक्कुउ एरवह-सुयह जम्मु । मंगलु गाइजजह तिह-हरम्मु ॥२॥
बहेतहं तोरण णिकहं वारि । विरवावलि भह भणंति वारि ॥३॥
बहु वायहं बजिजय विविह णाथ । णच्चंति विलासिणि अह सराह ॥४॥
बुहिय वलिदि य वाणे पोसिय । बत्थाहरण सुयण संतोसिय ॥५॥
गहवहं णामं किउ अमरसेणु । लहुवह णामं किउ वहरसेणु ॥६॥
बुत्तइ जणहिं असेसहिं धणहु । बद्दइ बाल आसिकय पुणहं ॥७॥
माया-पिघरहो णेहु जणंतहं । वियसियमुहुं सपणहिं रंजनहं ॥८॥
करि कराहं जुवहहिं खिज्जंतहं । बालइ माय-थणे कीलंतहं ॥९॥
पुण माया-पिघरहि मंतेप्पिणु । अह राडण बहु थोनु मुणेप्पिणु ॥१०॥
विहि पुञ्चे सुणहुत्ते जोएं । उज्जायहु जि समप्पिज वेरएं ॥११॥
उज्जाएं पुण बहु सुव-धामे । पडिगाहिय सो जस सिरि कामे ॥१२॥

घर्ता

अकच्छट्टप बगाइं, मुणि वि समरगाइं,
अबखर-भेड पथासियड ।
सक्कहं पाइय विहि, देसि सधल लिहिं,
गण वित्थर वि समासियड ॥२-३॥

[२-४]

गुद्धण उबएसिउ तहं सुअंगु । लक्षण-लंकारु-विहृति-लिगु ॥१॥
उबएसिय संधि-समास भव्य । वायरण-भेय णाणा जि कम्ब ॥२॥

दोनों क्रम से विजयादेवी के गर्भ से ऐसे उत्पन्न हुए—आये मानों नारायण और प्रतिनारायण, लव और कुश या इल्द्र और प्रतीन्द्र बबनरित हुए हों ॥१८-२०॥

घसा—पूर्वभव में जिनेन्द्र की पूजा करने से पृथिवी पर उन भाइयों ने उत्तम जन्म पाया। गर्भ में नी महीने रहकर वे युगल रूप में होकर उत्पन्न होते हैं ॥२-२॥

[२-३]

[अमरसेन-बहरसेन का नामकरण, जन्मोत्सव एवं शैक्षणिक वर्णन]

राजा के कामदेव के समान सुन्दर पुत्रों का शुभ दिन, शुभ मूहूर्त और पुण्य लम्बन के समय में जन्मोत्सव मनाया गया। राजमहल की स्त्रियों के द्वारा मंगल गीत गाये गये ॥१-२॥ राजद्वार पर तोरण बाँधे गये, भाटों की स्त्रियाँ विस्तावलियाँ गाती हैं ॥३॥ भाँति-भाँति की ध्वनि करनेवाले बहुवाद्य बजाये गये। विलासिनी स्त्रियाँ अति सराहना करती हुई नाचती हैं ॥४॥ दुःखी और दरिद्री जनों का दान से पोषण किया गया। वस्त्र और आभूषणों से आत्मीयजन या सज्जन संतुष्ट किये गये ॥५॥ (राजा ने) बड़े पुत्र का नाम अमरसेन और छोटे पुत्र का नाम बहरसेन रखा ॥६॥ सभी जन धन्य हैं—कहते हैं। (इस प्रकार के बालक पुण्यात्मक थाशीषों से बढ़ते हैं ॥७॥ माता-पिता स्नेह प्रगट करते हैं। स्वजन बालकों के मुस्कराते मुँह से अनुरंजित होते हैं ॥८॥ स्त्रियों के द्वारा हाथों हाथ ले जाये जाते हैं। बालक माता के स्तन से खेलते हैं ॥९॥ इसके पश्चात् माता-पिता के द्वारा परामर्श किया गया, अधिक लाड़ में उन्हें अधिक दोप ज्ञात हुये ॥१०॥ (अतः) उन्होंने शीघ्र शुभ मूहूर्त और शुभ योग में विधि पूर्वक (बालक) उपाध्याय को समर्पित किये ॥११॥ इसके पश्चात् बहुज्ञान के भण्डार उपाध्याय ने बालकों को ग्रहण करके यश-श्री की कामना से (पढ़ाया) ॥१२॥

घसा—उन्होंने अ ह आदि समस्त स्वर, कवर्ग-चवर्ग-टवर्ग-तवर्ग और पवर्ग, समस्त छन्द, अक्षर, भेद, संस्कृत और प्राकृत की विधियाँ, देशी समस्त लिपियाँ और गणित का विस्तार तथा संकोच प्रकट किये। सिखाये ॥२-३॥

[२-४]

[अमरसेन-बहरसेन का विद्याभ्यास एवं बनक्षीड़ा-वर्णन]

गुरु के द्वारा भव्य उन कुमारों को समझाये गये (काव्य के विविध) अंग-लक्षण, अलंकार, विभवित, लिङ्ग, सन्ति, समास, व्याकरण और भाषा

भासा-भेद्यं जाणियदं तवकु । जिहं भमहि गयणि पुणु गहर्व जक्कु ॥३॥
 गुरु दाकियादं जे परम सब्ब । छह-दद्वदं पचलह सत्त-तच्च ॥४॥
 आणियमर-वडरे लिणि वगा । घमपत्थ-काम वे णय समगा ॥५॥
 आयम-सत्थहं मणि मंत-तंत । भेसह अउव्व संजोय-जंत ॥६॥
 गंधव्व-गेय वर णद्व-भेय । हय-गय-वाहण-विहि पण अणेय ॥७॥
 एमाइ सथल विजजाहं कोमु । लिकिल वि आयउ-गिहि विगय दोमु ॥८॥
 बहूद्वहि ससि धी-कलाहं वे वि । णिव-सुषणहं पुरयण इटु ते वि ॥९॥
 हुव जोखण-सिरि-संपुण-गत । वहु कल-विण्णाणद्व सिकिल तत्त ॥१०॥
 णिय रुवे जितउ मयणराउ । जिम जिण-धम्मोपरि सुङ्ग भाउ ॥११॥
 गं सुहि हरि-विट्ठि वि तहु कुमार । वणकोलहं सुहि म[अ]हिकुमार ॥१२॥
 यहु पुरयण रंजहि अमियवाणि । खिव रञ्जु-मुरंधर सुकलसाणि ॥१३॥

घटा

तहु विणि वि भायर, गुण-रथणायर,
 अमरसेण-वद्वसेणि धल ।
 विणि-दिणि पिय-जणणिहि, वंद्वहि पथ तहि,
 सत्थत्थहि विणि वि कुसल ॥२-४॥

धत ॥ सैलवेन्यस्त विद्याण, जौधने विषईवण ।
 वद्वके मुन [नि] धर्ती [वृत्ति] तां, योगिनां से तनुत्यजां ॥१॥
 विद्या [विद्व] त्वं च नृपत्थं च, नैवतुल्यं कदाचि (च) नः,
 स्वदेसे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूजयेत् (पूज्यते) ॥२॥
 ॥माहा॥ णव जोखण अहूवं, विणि वि कंदप्प समउ विहि रहयं ।
 पञ्चमिणि मणिहियहारा, णिम्माविया वे विहि कुमर ॥३॥

[२-५]

णिय विण्णाणे रंजेहि लोय । सुहि अचछहि विणि वि अस्ति-अजेय ॥१॥
 एस्वंतरि णिय माय सविलिहि । चलाह-पाण-मियारी-वस्तिहि ॥२॥

के अनेक भेद, तर्क वैसे ही प्राप्त हो गये जैसे आकाश में धूमने के पश्चात् चक्र चक्री को प्राप्त हो जाता है ॥१-३॥ गुरु ने परम सत्य, छह द्रव्य और इसके पश्चात् सात तत्त्व बतलाये ॥४॥ अमरसेन और बइरसेन धर्म, अर्थ और काम तीनों वर्गों तथा दोनों भव समग्रतः जानकर आगम, शास्त्र, मणि, मंत्र, तंत्र, वपूर्व औषधियाँ, उनके अनुग्रह, धंत्र, गच्छर्व, गीत, नृत्य-भेद, अश्वभाज आदि अनेक वाहन-विधियाँ और गम्भूर्ण निर्दोष विद्याकोश सीख करके घर आये ॥५-८॥ राजा और स्वजन तथा पुरजनों को प्रिय वे दोनों दोज के चन्द्रमा को कलाओं के समान बढ़ते हैं ॥९॥ यौवन-श्री से शरीर सम्पन्न होने पर वहाँ बहु प्रकार की कला और विज्ञान सीखकर उन दोनों के द्वारा अपने देह-सौन्दर्य से कामदेव वैसे ही जीत लिया गया जैसे जैनधर्म में शुद्ध भावों से काम को जीत लिया जाता है ॥१०-११॥ वे दोनों कुमार धोड़ों पर बैठकर सुखपूर्वक वनझोड़ा को जाते हुए ऐसे लगते हैं मानों नागकुमार ही जा रहे हों ॥१२॥ राजा के राज्य रूपों बुरों को धारण करनेवाले, सुख की खदान वे दोनों राजकुमार राजा और द्वार्ग-नासियों का अमृतोपम-मीठी वाणी से अनुरंजन करते हैं ॥१३॥

घट्टा—वहाँ शास्त्रों के अर्थ की व्याख्या करने में कुशल, गुण-रत्नाकर अमरसेन और बइरसेन दोनों पराक्रमी भाई प्रतिदिन माता-पिता के चरणों में बन्दना करते हैं ॥२-४॥

क्योंकि कहा है—शैक्षण अवस्था में विद्याभ्यास, यौवन में विषय-भोग, बृद्धावस्था में मुनिवृत्ति तथा अन्त में योगी के समान शरीर का त्याग करे ॥१॥

विद्वान् और राजा की कभी तुलना नहीं की जा सकती । राजा अपने देश में ही पूजा जाता है (जबकि) विद्वान् सर्वत्र सम्मान पाता है ॥२॥

॥ गाथा ॥ विधाता के द्वारा नये यौवन और महान् रूप-सौन्दर्य से कामदेव के समान रचे गये वे दोनों कुमार स्त्रियों के मन में हिये के हार स्वरूप निर्मित किये गये थे ॥३॥

[२-५]

[गजपुर की रानी देवधी का अमरसेन-बइरसेन को मारने का माया आल तथा राजा देवदत का रानी को सान्त्वना देना]

शत्रुओं को अजेय वे दोनों कुमार निज ज्ञान से जन-जन का अनुरंजन करते हैं और सुख पूर्वक रहते हैं ॥१॥ इसी बीच राजा को प्राणों से अधिक प्रिय एवं विद्यालयाक्रमपनी सीतेली भाला के द्वारा कुमारों का पराक्रम

जोइ वि कुमरहं तेउ पराकमु । णउ सहि सबकइ तुही विवकमु ॥३॥
 चितइ दुही एव बो भायर । माराशमि णिव-पास दुहायर ॥४॥
 किचि दोषु इणि अलिज पयासउ । रुसइ ण रबइ देयं इणिसउ ॥५॥
 इणि अग्नाइ-महु सुय कि किजजहिं । जिज सुजजगइ-तेय पर्यंगहि ॥६॥
 इणि तेयं कहु उप्पम दिजजइ । अहवलबंडहं सबक ण पुज्जह ॥७॥
 यउ चिति वि अचछइ घर सचित । कुमरहं दुह-सलिलय दुखपस ॥८॥
 इतर्थसरि सूरसेणु गउ सेवहिं । संपत्तउ गजपुर-णिव-केररहि ॥९॥
 सहं केर करि वि पहु आउ घरि । तह बुद्ध-धरणि मणि सहलु सरि ॥१०॥
 स[सु]त्तुय सिज्जासणि भउण लए । णउ बोलइ पिच्छइ कहु ण तए ॥११॥
 तहि अवसरि राणउ णिहि पहट्ठु । णउ जोबहणिय पिय-पाण इट्ठु ॥१२॥
 रह-थाणि ण विट्ठी अलिजखाणि । तहि बुज्जिह वि गउ जिहं यिय वयाणि ॥१३॥
 तहि पास बड्डुउ रहतचिलु । उद्रावइ कर-गहि कहि नियत् ॥१४॥
 के कारणि सुनी रुसि वेवि । जो सुह दुहयालउ हणउ सो वि ॥१५॥
 णउ उत्तर किपिण बैइ तहु । हुय बंकी भउणइं भणह णहु ॥१६॥
 पुण वार-वार पहु विणवेह । ललिकखरेण तहु मणु-हरेह ॥१७॥
 कह-कहव मणाचिय पय-पडेवि । वयणहं वि रयणा-संघडे वि ॥१८॥

घत्ता

अबल हे महु राणी, एहुह पहाणी,
 णिय-णिय परिहउ सिन्धु महु ।
 जो तुज्जुण भावहं, बहु दुह-दावहं,
 हणइ तुर्तउ वहरि-तुहु ॥२-५॥

[२-६]

तं सुणि विजहं णिसुणि परमेसर । अहि विण केर गयउ महु मणहर ॥१॥
 गजपुरणयर-सामि-पासह वर । तहि विण लगिय ते पावहु घर ॥२॥
 अमरसेणि-बहुसेणि दुहंकुर । अह अंकाणण-धयण विणिदुर ॥३॥
 संडणु सीलु मज्जु रयणु वर । णउ मणहि तुह संक सुषण णिर ॥४॥

देखा गया । वह दुष्टा उन कुमारों के पराक्रम को सहन नहीं कर पाती है ॥२-३॥ दुष्टा दोनों भाइयों के करीत से ही दृक्षडे कराकर राजा से मरवाने का विचार करती है ॥४॥ इन पर उसने मिथ्या दोष लगाया और शीघ्र इनसे वह रुस जाती है, खाना नहीं खाती है ॥५॥ वह विचारती है जैसे सूर्य की तेज गति के आगे पतंगे क्या कर सकते हैं ऐसे ही इन कुमारों के आगे मेरा पुत्र क्या कर सकता है ॥६॥ अति बलशालियों को इन्द्र पूजता है । इनके तेज की किससे उपमा की जाय ॥७॥ ऐसा विचार कर कुमारों के दुःख देने की शत्य के दुःख से दुःखी वह सचित घर में बैठ जाती है ॥८॥ इसी ब्रीच सूरसेण गजपुरनरेश की सेवा में गया और नरेश की क्रीड़ा में पहुँचा ॥९॥ वहाँ राजा (देवदत्त) क्रीड़ा करके घर आया । दुष्ट रानी स्मरण करके शत्य मन में धारण कर लेती है ॥१०॥ मौन लेकर वह सेज पर सो गयी, न किसी से बोलती है न देखती है ॥११॥ उसी समय राजा ने घर में प्रवेश किया । वह अपनी प्राणप्रिय प्रिया नहीं देखता है ॥१२॥ मिथ्याभाषण की खदान वह रानी रत्नस्थान में (भी उसे) दिखाई नहीं दी । वह मूर्खा जहाँ बैठी थी राजा पूछकर वहाँ गया ॥१३॥ हृषित दित्त से उसके पास बैठ गया । (वह) हृदय की बात कहने को कहकर हाथ पकड़कर उठाता है ॥१४॥ पूछता है—हे देवी ! किस कारण से रुस कर सोयी हो ? जो तुझे दुःखकर हो उसी का वध करूँ ॥१५॥ वह उसे कुछ भी उत्तर नहीं देती है । मौन रहते हुए करबट बदल लेती है, बोलती नहीं ॥१६॥ इसके पश्चात् राजा बार-बार विनय करता है, उसके मन को अच्छे लगनेवाले ललित अक्षरों से कथाएँ कहकर, रत्नाभूषण बनवाने का बच्चन देकर मनाते हुए (उसके) पैरों में गिरता है । पैर पड़ता है ॥१७-१८॥

धत्ता—हे मेरी प्रधान रानी ! जो तुझे अच्छा न लगता हो, बहुत दुःख देता हो, जो तुम्हारा शत्रु हो उस अपने प्रतिष्ठाती को मुझे शीघ्र बताओ, तत्काल उसे मारता हूँ ॥२५॥

[२-६]

[अमरसेन-वद्वरसेन के सिर-भंजन की राजाज्ञा-बण्णन]

उस राजा की विनय सुनकर (रानी कहती है)—हे राजा ! सुनिये । जिस दिन गजपुर नगर से (आप) स्वामी के पास गये उसी दिन आपके घर आग लग गयी ॥१-२॥ अमरसेन वद्वरसेन के मुख से निकली बाणी अति बक्ष तथा दुःख जनक और कम्पन उत्पन्न करनेवाली है ॥३॥ मेरे शील

अह पर्यं [सु] लुद्धहि तुव पट्टण । हृष्टहि हरि-चडि कीरहि उववण ॥५॥
 कहव कहव भहु सीलु ण खंडिउ । रक्षित मह णिय सीलु अभंगउ ॥६॥
 तं सुजेवि पहु कूरह खटउ । णउ जाणइ पवंचु पिय शुद्धउ ॥७॥
 हृककारि वि मायंग रउहइ । कुमरहं मारणत्व खल-खुद्धइ ॥८॥
 रे मायंगहु पर-तिय-सत्तहु । अमरसेण वहरसेणि कुपुत्तहु ॥९॥
 मारहु वेएँ महुण चिरावहु । विणि वि सिर-खुडि महु विकलावहु ॥१०॥
 चिर्ताहि मणि मायंग सुजेपिण । णिम्मल सील कुमर स लहइ जणु ॥११॥
 तं कहिग्वाय जाहि बोस-खुय । पुरथण सुहयाणइ लंब-भुय ॥१२॥

घत्ता

णिव रज्जहि मंडण, अरि-सिर-खंडण, दुडर अहतरणं अमर ।
 दुहिपह-दुहखंडण, रोर वि हंडण, इणि सरिसुर-णर अचिछ धरा ॥२-६॥

उक्तं च—

काके सौख्यं दूतकारेषु सत्य, कलाके धैर्यं धृष्टो तत्-निर्दिश ।
 सर्वं क्षांति सत्रो कामेषि सांति, राजा मित्र' केन वृष्टं अुतं वा ॥७॥

[२-७]

पुण [स] जेपह पुण मायंगहि । रे कि जितहु रहहु म इत्तहि ॥१॥
 हरि-चडि कुमर गए णंदण वण । कोलहि पावकम्म रंजाहि जण ॥२॥
 मारहु वेइ जाइ भहु परिहउ । भहु कुल अवजस-दिणउ पडहउ ॥३॥
 रहय सवव मायंगहु ते वण । दिदुइ णिव-णंदण सुच्छमणि ॥४॥
 पुण पुण चिर्ताहि मायंग तहि । कि राउ-गहिलउ हुवउ मणि ॥५॥
 णिय तेएँ जितउ जेण इणि ॥६॥
 सुव रज्ज-धुरंधर सुगइ-पंथ । तं किह दिज्जहि हमि मारणत्व ॥७॥
 अह हंमह देस-णियालु देइ । णउ जुज्जइ रायहं सुख-वहेइ ॥८॥
 णउ घायहि विणि वि णिव-रयणु । जइ रक्षद्दहसु णिपहु कहु वयणु ॥९॥
 ते फिरि वि समायहसु किय घरि । अच्छे ते रयणि सर्वित भरि ॥१०॥

रुपी रत्न के खण्डन में ये न तुम्हारी शंका मानते हैं न निश्चय से स्वजनों की ॥४॥ ये प्रचंड हैं, आपके नगर के बाजार को लूटते हैं, (इस समय) घोड़ों पर सवार होकर उपवन में कीड़ा कर रहे हैं ॥५॥ शील खण्डित न करने को बार-बार कह-कह करके ही मैंने अपना शील अभंग रखा है ॥६॥ ऐसा सुनकर कूर राजा रुठ गया । वह प्रिया के झूठे प्रपञ्च को नहीं समझता है ॥७॥ वह कुमारों को मारने के लिए भयावने, दुष्ट, लुद्र मातंग को चिल्लाकर बुलाता है और (कहता है) हे मातंग ! परस्त्री में आसक्त कुपुत्र अमरसेन और बहरसेन को शीघ्र मार डालो, देर मत लगाओ, दोनों के सिर काटकर मुझे दिखाओ ॥८-९॥ ऐसा सुनकर मातंग मन में विचारता है कि निर्मल शीलवन्त, निर्दोष, पुरजनों के सुखकारी, दीर्घवादु कुमारों को पाकर कैसे धार्तु, कैसे उनका वध करूँ ॥११-१२॥

घता—अमरसेन राजा के राज्य का आभूषण, शशु के सिर का खण्डन करनेवाला, कठिन (भव-सागर से) बिना नीका के पार होनेवाला, दुष्टियों के दुख को मेटनेवाला, दरिद्रता का नाशक है । इसके समान पृथिवी पर देव या भनुष्य (कोई नहीं) है ॥२-६॥

कहा भी है—कौए में शुचिता, जूये में सत्य, नयुसक में धैर्य, मदपान में तत्त्व-चिन्तन, सर्प में क्षमा, स्त्रियों की काम-वासना में शान्ति, और राजा में मिश्रता किसने देखी अथवा सुनी है ॥६॥

[२-७]

[कुमार-धात सम्बन्धी मातंग-चिन्तन-वर्णन]

वह राजा बार-बार मातंग से कहता है—हे मातंग ! क्या सोच रहे हो, यहाँ मत रहो ॥१॥ लोगों का मनोरंजन करनेवाले पापकर्मी वे कुमार कीड़ा करने घोड़ों पर चढ़कर नन्दन-बन गये हैं ॥२॥ शीघ्र जाकर मेरे कुल को अपयश देने में लगे हुए (कुमारों को) मेरी श्याम लगी लकड़ी मारो ॥३॥ वे सभी मातंग बन गये । (उन्हें) राजपुत्र स्वच्छ हृदय दिखाई देते हैं ॥४॥ वे मातंग वहाँ बार-बार मनमें विचारते हैं कि क्या राजा आनंदचिन्तनगल हो गया है ॥५॥ निज तेज से जिनके द्वारा सूर्य जीत लिया गया है, राज्य-भार को धारण करनेवाले, सुगति (मोक्ष) के वे पथिक राजकुमार हमें मारने के लिए क्यों देते हैं ? ॥६-७॥ अथवा (राजा) हमें (भले ही) देश से निकाल दे किन्तु राजा के पुत्रों को वध के कार्य में नहीं लगाऊ ॥८॥ राजा के दोनों रत्न नहीं धातते हैं । यदि राजा का वचन रखते हैं तो वे कुमार लौटकर घर कैसे आ सकते हैं ।

विणु उग्राह पूण् णिव-आण लेवि । णउ इक्षुव येष्ठिद्य जाह ते नि ॥११॥
णिस-गंदणवण हृष-रुठ राय । कोडंति सुख्छ रह सेण-भाय ॥१२॥
तो भणहि चंड भो कुमर-भाय । तुम मारण पेसिय हृष्म राय ॥१३॥
तुम अलिच कलंकु सुणेवि आय । इव सुपरहु णिय मणि बीयराय ॥१४॥
तुम मरणावत्यहं सुग्रह-दाय । सरल गुलि सोहिय पाणि-वाय ॥१५॥
तिणु वपणु सुणेविणु रायपुत्त । हम कि किउ पहु अवराहु इत ॥१६॥

घटा

गत किउ पहु भल्कउ, वपणु अमुल्कउ, णिकज्जें पहु कुविड हमि ।
गत हियइ वियारिउ, बोसु हमारउ, कि लग्राह अह णत्य विमि ॥२-७॥

उक्तं च—

भोगितः कंचुकासक्त्या कूरा कुटिलगामिणी,
दुःखेसर्पणी यत्या, राजा च भुजंगवत् ॥१॥
मणि मंत्रोषधी सवस्य, सर्वं [वै] वर्षं विलोकितः ।
नृपद्विष्टविषे वर्षं, न ब्रह्मा पुनरुत्थितः ॥२॥

[२-८]

परसपर जंपहि वे वि भाय । भो वंशव भयि जाणिउं स राय ॥१॥
बउ रायदोसु णिक्कहु मुणेहि । विरमायहि किउ हमि अस्त्र हैहि ॥२॥
णउ माय-पियरह व होह दोसु । परिणवहु स (सु) हा सुहु करम घोसु ॥३॥
किय कम्महं अग्रहच्छुद्धि णत्य । हंडहि जिम सत्यहं जु लिउ मत्य ॥४॥
भो चंड-यस्म इम करहु जात्ति । हम खंडहु सिर णिव करहु संति ॥५॥
तं सुणि मायंगह वयह भाउ । उपण्ठउ कुमरह भणहि भेड ॥६॥
जहु णिय-युर-चहु वि जाहु विएसहं । जहु तुम-णाउ ज सुणहु पहुत्तहं ॥७॥

इस प्रकार वे रात्रि में विचार करते हुए सो जाते हैं ॥९-१०॥ सूर्योदय होने पर पुनः राजा की आज्ञा लेकर भी जाकर (बन में जाकर) उन्होंने (राजकुमारों को) बाड़ी के भीतर बन्द नहीं रखा ॥११॥ अमरसेन और बहरसेन दोनों भाई राजा के घोड़ों पर चढ़कर राजा के नल्दन बन में स्वच्छन्द रहकर झीड़ा करते हैं ॥१२॥ तब चाण्डाल कहते हैं—हे कुमार भाइयों ! राजा के द्वारा हम तुम लोगों को मारने के लिए भेजे गये हैं ॥१३॥ तुम्हारे झूठे कलंक को सुनकर (हम) आये हैं । अब अपने मन में बीतराग देव का स्मरण करो ॥१४॥ सरणकाल में तुम्हारे हाथ और पैरों की सुखोभित अँगुलियों की सरलता सुगति की देनेवाली है ॥१५॥ उनके बच्चन सुनकर राजपुत्रों ने कहा—यहाँ हमने राजा का क्या अपराध किया है ॥१६॥

घस्ता—राजा ने भला नहीं किया । निष्कारण राजा बहुमूल्य बचन (कहकर) हम पर कुपित हए । हमारा दोष हृदय में नहीं विचारा । मारने के लिए क्या (हम) कुमि प्रतीत होते हैं ॥२८॥

कहा भी है—राजा सर्प के समान और दुःखों से राती छुर और टेढ़ी-मेड़ी चाल चलने वाली तथा सर्प की कांचुली में आसक्त सर्पिणी के समान है । सभी प्रकार से दग्ध जीव या सर्प-नृश से दग्ध मणि-मंत्र आदि वौषधियों से स्वस्थ देखा गया है किन्तु राजा के दृष्टि-विष से दग्ध को पुनः उठते (विकास करते) नहीं देखा गया ॥१-२॥

[२-८]

[अमरसेन-बहरसेन का कर्म-फल-विवरण, तथा उन्हें जीवित रहने देवे का मातंग-चिन्तित उपाय-वर्णन]

वे दोनों भाई परस्पर में कहते हैं हे भाई ! मेरे द्वारा वह राजा जाना जाता है (मैं राजा को जानता हूँ) ॥१॥ निश्चय से राजा का दोष नहीं जानो । हमें क्यों रोक कर विरपाया जा रहा है । बोड़े हिन-हिना रहे हैं ॥२॥ माता अथवा पिता का दोष नहीं होता है । (यह तो) शुभ और अशुभ कर्मों का परिणमन कहा है ॥३॥ पूर्वोपार्जित कर्म छूटते नहीं । जैसे भाल में साथ लिये हैं (उन्हीं के अनुसार जीव) संसार अग्रण करता है ॥४॥ हे यम चाण्डाल ! राजा की शान्ति करो, हमारे सिर के टुकड़े-टुकड़े करो, अब शीघ्रता करो ॥५॥ ऐसा सुनकर चाण्डालों के द्वया भाव उत्पन्न हुआ । वे कुमारों से गुप्त बातें कहते हैं ॥६॥ यदि अपने नगर को

तज्जन्दांडहि इब लहु तुम कुमरहं । मणित णिव-सुव-वयणु चंडलहं ॥१॥
गय कुमर [विपदि] सिर-लेप कित्तु । कुण्डल-समउल-हहुरेण लित्तु ॥२॥
पहु-गग्मह थाइ वि गह-सिरेण । ए आणिय वे सिर तुम-भणेण ॥३॥
एविच्छहि तुब सुब तुब-अणिट्ठ । ए हववर विधिं वि लेहि सुट्ठ ॥४॥
तं जोइ वि णरबहु भणिय चंड । पुर-वाहिर लेप्पिणु जाहु मुंड ॥५॥
थाइजाहु सूरिय उवरि वे वि । जं पुरयणु जोवहि आइ ते वि ॥६॥

घता

तहु लेप्पिणु तुंडह, वेय चंडह, घरियह सूरिय-उवार तहि ।
तहं सुणि णिव पत्तिहि, कुमर-मरणु तहि, रहसिय अंगि ण वाह कर्हि ॥२-४॥

[२-९]

विजयावे रोबहु भुव हसोय । हा णरबहु कि किड पइइहेय ॥१॥
णव याणित जुत्ताजुत्त देव । दुट्ठि सुणि वयणह णिव हसेव ॥२॥
णिदोस अकज्जे किरण-त्तेय । माराविय णंदण रणि अजेय ॥३॥
हा हाइ वदइय महि कियउ तुज्जु । इष मणह-मणोरह पुज्जि तुज्जु ॥४॥
तह र्यणु सुणेप्पिणु अहस दुकिल । रोबति भव्व तिरयंच-पकिल ॥५॥
भव्वहं संबोहिय णिवह पत्ति । अच्छहु सुब-सोय-विओय-अत्ति ॥६॥
सुहि अच्छहु णरबहु णिय पुरेहि । भुंजेहु वि रहसुहु रह-समेहि ॥७॥
तं सुणि वेवरायहं सुच्छ कहा । कहि कुमरह गह कहि भइय दुहा ॥८॥
कि मुय कि जोवहि सीलणिहि । कहि संपत्तह-पुर-राय-दुहि ॥९॥
तं णिसुणि भणह दुहु सुणहि भव्व । भो वेवराय णिव णि वह युव्वु ॥१०॥
श्वत्यंतरि कुमर वि णिव-नभए । णटु इणिव-पाण लए वि गए ॥११॥
बहु भूमि वह वि गय वणि-गहणि । जहि कुल-कुलसि तव वरस वणि ॥१२॥
जहि मणुव ण वीसह सउण तहि । मइ सधणइ तण-अंकुर वि जहि ॥१३॥

छोड़कर विदेश-ऐसे स्थान में जाओ जहाँ राजा तुम्हारा नाम न सुने तो
तुम कुमारों को अभी शीघ्र छोड़ देते हैं। राजपुत्र चाण्डालों के बचन मान
कर चले गये ॥७-८॥ कुमारों की प्रतिमाओं के सिर कुण्डलों सहित रधिर
से लिप्त करके राजा के आगे रखकर बिनत सिर से (चाण्डालों ने कहा—
हे राजन् !) तुम्हारे द्वारा कहे गये तुम्हारे लिए अनिष्ट तुम्हारे दोनों पुत्रों
के ये सिर तुम्हारो इच्छानुसार लाये गये हैं। ये दोनों श्रेष्ठ अश्व हैं, भली
प्रकार ग्रहण करो ॥८-९॥ उन्हें (पुत्रों के सिर) देखकर राजा ने चाण्डालों
से कहा—फिर मुण्ड लेकर नवर के बाहर जाओ और सूर्य (प्रतिमा)
के ऊपर दोनों स्थापित करो जिससे कि नगरवासी आकर उन्हें भी
देखें ॥९-१०॥

चत्ता—चाण्डाल शीघ्र फिर मुण्ड लेकर वहाँ सूर्य (प्रतिमा) के ऊपर
स्थापित कर देते हैं। कुमारों का मरण सुनकर राजा की पली के अंगों में
हर्ष कहीं नहीं समाता है ॥१०-१॥

[२-९]

[विजयादेवी का पुत्र-शोक और कुमारों का बन-गमन-बर्णन]

राजा (देवदत्त) हँसता है और विजयादेवी रोती है (और कहती है
है कि) हे राजन् ! प्रजा के लिए तूने यह क्या किया ? ॥१॥ हे स्वामी !
तूने उचित-अनुचित नहीं जाना । रानी के बचन सुनकर दुष्ट राजा हँसा
॥२॥ (रानी कहती है—) निर्दोष, युद्ध में अजेय और सूर्य किरण के समान
तेजवान् कुमारों को अकारण मरवाकर आपने मेरी हाय हाय बढ़ी की
जबकि मैंने तुम्हारे मन के मनोरथों की पूर्ति की ॥३-४॥ उसका रुदन सुन-
कर अति दुखी भव्य जन, तियंच और पक्षी रोने लगते हैं ॥५॥ भव्य जनों
ने रानी को सम्बोधा कि पुत्र शोक से वियोग का दुःख अच्छा होता है ॥६॥
राजा अपने नगर में सुखपूर्वक रहता है और रति के समान रति-सुख भोगता
है ॥७॥ ऐसा सुनकर राजा के द्वारा मतिमान् से पूछा गया कि स्वेच्छा-
नुसार कुमार कहीं गये (उनका) क्या हुआ ? ॥८॥ राजा को दुःख देने-
वाले शील की निधि वे नगर से कहाँ चले गये ? क्या मर गये (या) क्या
जीते हैं ॥९॥ ऐसा सुनकर बुद्धिमान कहता है—हे भव्य देवदत्त राजा
सुनिये स्तुति करो कि वध न हुआ हो ॥१०॥ इसी बीच राजा के भय से
सूर्य के समान तेजवान् वे कुमार भी ग्राण बचाकर भाग गये ॥११॥ भूमि
पर बहुत चलने के पश्चात् वे ऐसे गहन बन से गये जहाँ बन में बृक्ष अपने
कुल को बढ़ाते हैं ॥१२॥ जहाँ मनुष्य दिखाई नहीं देते, पक्षी ही दिखाई देते

जहि गुजहि सीह-भयंकराहै । वंतिय-चिक्कारहै कइ घणाई ॥४॥
 जहि के करति लाओ भर्मति । वहु कोल वसुह पुण-पुण खर्मति ॥५॥
 कउसिय सहइ धू-धू करत । बाइसहै सहै तत्थहै करत ॥६॥
 सद्दूल-सोह-चित्ताह-रोज़ा । गडेस-संबर-मिय-महिस बुज़ा ॥७॥
 लउगा-मज्जारहै-सेहि-कुज़ा । अहै बुटु जोव जे मणि-विरुज़ा ॥८॥
 कथहै हरिणहै हरि हारयति । णडलाइ-सप्प संगरु करति ॥९॥
 जहि भूय-पिसायहै संचरति । डाइणि साइणि जोयणि भर्मति ॥१०॥
 जहि जमु संकह गच्छत एण । किं मगुय ण मराहै सर तएण ॥११॥
 ते हहन्सकडि-वणि पुण-जोहै । सहयाह वरु वि दिटुड शुमोड ॥१२॥
 सहै तजि बोसमियहै पंथरोण । वहुच्छुह-निसपाह वि गत्तखीण ॥१३॥
 ते जाणहै गच्छहै भूमि भाय । ते पय चालहि णं कु वियराय ॥१४॥
 संसाह-असाह वि मणि मुणेहु । हो लोय हो पुण्णासउ करेहु ॥१५॥
 जि पावहु सासय-पड वि साह । ज वि जोयहु जे भव दुहह भाह ॥१६॥

घना

ते भायर, सच्च कथायर, सुजजोत्थ वणि संठिय ।
 ण वि चोह वि कंवलु, णज तहै संवलु, किप संप्णास विगंठिया ॥२-५॥

[२-१०]

वइसेणि भणिउं सुणि अमरसेणि । पहु रहुड हमकज्जेण केणि ॥१॥
 विणु अवरहि णिव कि उ(कि)अमुसु । णज जाणिउं जुसाजुत्तु तत्तु ॥२॥
 तं सुणि वि पउलउ अमरसेणि । भो वंधव विष्मायहि वयणि ॥३॥
 अण्णहु ण कासु णियमेण मुणि । तं णिसुणि चवह लहु वइसेणि ॥४॥
 जं माइ अलोकह कज्जु भणहै । तं पहु जण णिविड कि कुणहै ॥५॥
 भो वंधव दं तिय लज्ज-चत्त । कि कि ण भणहि सुइरि णिय भत्त ॥६॥
 जिह चिर जसहरु कुञ्जय णिमिसु । राणिय मारित विय कंठ वित्तु ॥७॥
 मरिझण सत्तगह जोणि दत्तु । पुणु किय सुकम्भ वेवत पत्तु ॥८॥

हैं, जहाँ अति घने तुणों के शंकुर भी हैं ॥१३॥ जहाँ सिंह गरजते हैं, हाथी बादलों के समान चिक्कारते/दहाढ़ते हैं ॥१४॥ जहाँ के के कारते हुए सुना कुत्ते घूमते हैं, वराह बार-बार पृथिवी खोदते हैं ॥१५॥ उल्ल घू-घू शब्द करते हैं, कौए वहाँ बोलते हैं ॥१६॥ शार्दूल, सिंह, चीता, रोज, गेंडा, सौंचर, मृग, भैंसा, लोमड़ी, विलाव, सेही, हाथी, रोछ आदि जहाँ मन के विरुद्ध कार्य करनेवाले अति दुष्ट जीव हैं ॥१७-१८॥ कहीं मिह हरिण पकड़ते हैं, कहीं वहाँ न्योले सर्प से युद्ध करते हैं ॥१९॥ जहाँ भूत-पिण्डाच संचरण करते हैं, डाकिनी, शाकिनी और जौगिनी भ्रमण करती हैं ॥२०॥ जहाँ यम भी जाते हुए शंका करता है, काले हिरण्य-मनुष्य के बाण से मरने को आशंका करते हैं ॥२१॥ ऐसे संकटपूर्ण वन में उन्हें पुण्य-योग से एक आम्र वृक्ष दिखाई दिया ॥२२॥ क्षुधा (भूख) तृपा (पिपासा) से ज्ञान कार्य वे पथिक उस वृक्ष के किनारे विश्राम करते हैं ॥२३॥ वे दोनों भाई बाहन से भूमि पर ऐसे जाते हैं जैसे बीतरामी पैदल भूमि पर चलते हैं ॥२४॥ मन में संसार को असार जानकर लोभ करते हो तो पुण्यास्त्रव का करो जिससे कि सार स्वरूप शाश्वत-भद्र (मोक्ष) प्राप्त हो और जिससे संसार के दुःख रूपी बोझे का संयोग न हो ॥२५-२६॥

घता——वस्त्र, काम्बल और सम्बल से रहित, सत्य के क्रेता वे दोनों भाई निर्गन्ध होकर सन्यास धारण करके सूर्योदय होने तक वन में स्थित रहे ॥२-३॥

[२-१०]

[रानी देवधी की कुटिलता के सन्दर्भ में अमरसेन-वइरसेन का पारस्परिक ऊहापोह]

वइरसेन ने कहा हे भाई अमरसेन मुतो—राजा हमारे किस कार्य से रुष्ट हुआ ॥१॥ वहाँ राजा ने विना अपराध के अयोग्य कार्य क्यों किया । (उन्होंने) उचित और अनुचित नहीं जाना ॥२॥ ऐसा सुनकर अमरसेन ने उत्तर दिया हे भाई ! दुराचारिणों माता के बचन नियम किसी दूसरे के द्वारा समझे नहीं गये । ऐसा सुनकर छोटा भाई वइरसेन कहता है ॥३-४॥ जो माता राजा को मिथ्या कार्य कहती है लोगों ने उसकी कुनीति की क्या निन्दा की ॥५॥ हे भाई ! जो स्त्री लज्जा विहीन होती है (वह) स्वेच्छाचारिणी अपने भत्तर से क्या क्या नहीं कहती है ? ॥६॥ जैसे वामन पुरुष के निमित्त चिरकाल तक जीवित रहनेवाले यशोधर (राजा) को रानी ने गला पकड़ कर (दबा कर) मारा और स्वयं मरकर छठे नरक को प्राप्त हुई । इसके

रत्ना वेविए पंगु णिमित्तु । तं तिय वेदि वि णिउसु दहि घित्तु ॥३॥

घत्ता

भणुवह मण-मोहणि, सुगङ्ग-णिरोहणि, दुच्चारणि णीएहि रया ।
गेहूंधण राहुं, तं रत्ताहुं, कि ण करहि रड-लुड घुय ॥२-१०॥

उक्तं च—

गंगाए रात्रुलेजि सायदजलहुं नैश परिष्टार्ण ।

जाणति बुद्धिवंता, महिलाचरियं न जानति ॥ छ ॥

[२-११]

इयते सुणे वि लतु धंष्ठवेहि । हंमहं उबयारणि णेम एहि ॥१॥
सावत्तिय मायरि होइ सुहि । जं एव पसार्यहि जुषहि महि ॥२॥
पुर-पट्टण दोसहि गाम जणि । वंदेसहि निणु शुरु मुणहि सुणि ॥३॥
पिडिछजह वहु विहु चरित महि । दुज्जण-सज्जण किउ मुणहि तहि ॥४॥
तहं काल विडविय रयणि तत्थ । तरु दुष्णिहु णिदस माय सुध्य ॥५॥
बद्धसेणु पहुच्चा भयउ रख । इथंतरि सहकारेहि विषख ॥६॥
जबसु वि जकिखणि ते वसहि सार । सुह कोर रुचि णिजिज णिय मार ॥७॥
कीडा णिमित्त ते भाय विहु । अह रुद्रवंत सोहण इटु ॥८॥
ता कीरि-पिया णिय कीरु वुत्त । ए गरुद-मणुद जुहराय जुत्त ॥९॥
इणि किजजह वहु विहु भत्ति तसु ॥१०॥

धम्मत्थ-काजि पिय सुगय-हेय । संपज्जहु सुर-णर-पउ तहेय ॥११॥
पंकिखाहि सुभाउ धम्मत्थ हूउ । अतित्यहि करि पिय वाण-हेड ॥१२॥
तं णिसुणि कीरु सुणि कीरि पिए । णउ अत्यि दब्बु हम पास घुए ॥१३॥
उबयारु करउ हूउ इणु भव्बु । विणु दब्बे कोइ न करइ गब्बु ॥१४॥
उबयारे उबयारु करंतहं । सद्बहुं कोइ करइ णिदभंतह ॥१५॥
जं किजजह तं अवगुणु करेह । तं विरलउ जणणी जणाङ्क लोह ॥१६॥
अतिथिहि परवादी णिच्चएण । विणि वि धंष्ठव अच्छहु सुहेण ॥१७॥

पश्चात् अच्छे कार्य करके उसने देव पर्याय प्राप्त की ॥७८॥ रत्तादेवी ने पंगुल (माली) के निमित्त राजा को पकड़कर और उसे बेरकर जलाया (था) ॥१०॥

घसा—मनुष्यों के मन को मोहनेवाली, सुगति की निरोधिनी दुराचारिणी वह रक्तादेवो स्नेह से अन्धे हुए आसक्त पुरुषों के द्वारा ले जाई जाती है। निश्चय से इह के लोभी क्या नहीं करते हैं ॥२-१०॥

कहा भी है—गंगा की बालू और समुद्र जल का कोई परिमाण नहीं है तो भी बुद्धिमान् (उसे) जानते हैं किन्तु महिलाओं के चरित्र को नहीं जानते हैं ॥४॥

[२-११]

[अमरसेन-बद्रसेन के सम्बन्ध में यक्ष-वर्षणि के विचार]

इस प्रकार अमरसेन को सुनकर बद्रसेन उनके कथन का अनुयमन करते हुए कहता है—नियम से यहाँ जिसकी कृपा से हम दोनों पृथिवी पर सुखी हैं वह सौतेली माता हमारी उपकारिणी है ॥१-२॥ नगर और ग्राम के लोगों को देखते हो, जिनेन्द्र की वन्दना करें, गुरु को ध्वनि / उपदेश सुनें ॥३॥ पृथिवी पर दुजोंनों और सज्जनों के द्वारा आचरित विविध चरित्र को देखें और जानें/समझें ॥४॥ वहाँ वृथा (के नीचे) दोनों ने रात्रि में विश्राम किया। दोनों को भली प्रकार से नीद आई ॥५॥ सुरक्षा हेतु बद्रसेन पहरेदार बना। इसी बीच उस आम्र वृक्ष के निवासी यक्ष और यक्षिणी तोते (इन भाइयों को देखकर) निष्कर्ष निकालते हैं कि ये दोनों भाई हैं, कीड़ा के लिए बैठे हैं, अत्यन्त रूपवान् हैं, भले सौन्दर्य से इन्होंने क्षमदेव को पराजित किया है, ये सुहावने और मन-भावन हैं ॥६-८॥ स्वतों तोते ने अपने प्रीतम तोते से कहा—ये दोनों महान् मनुष्य हैं, ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे राजा हों ॥९॥ इनकी अनेक प्रकार से भक्ति करें ॥१०॥ धर्म के कार्य हे प्रीतम ! सुगति के हेतु हैं। उनसे मनुष्य और देव पद प्राप्त होता है ॥११॥ हे प्रीतम ! निश्चय से (ये) स्वभाव से धार्मिक हैं, अतिथि हुए हैं, (इन्हें) दान दो ॥१२॥ ऐसा सुनकर तोते ने अपनी प्रिया से कहा—हे खिलो ! निश्चय से हमारे पास द्रव्य नहीं है ॥१३॥ मैं इन भव्य पुरुषों का उपकार करता हूँ। बिना द्रव्य के कोई (भी) अभिमान नहीं करता है ॥१४॥ उपकार करते हुए का सभी प्रकार से कोई (भी) उपकार करता है इसमें संशय नहीं है ॥१५॥ लोक में ऐसी विरली हो माता ऐसी सन्तान को जन्म देती है जो अपकारी पर भी (उपकार) करता है ॥१६॥ निश्चय

अपवाईं पाउ हरेह लहु । अतिथिहि सगासुर मज्जम पहु ॥१८॥
किहलंबह एवहि सो जि भवु । वहु आवह पडि उद्धरह भवु ॥१९॥
सरणागय रक्खह विव्व चित । तं सुव अंडिय भुवि सुयणु भत्त ॥२०॥

घस्ता

इत्थंतरि कीर्तिहि, कीर भणितं तहि सामिय वयणु ण भणहि इहु ।
सुकूहु पञ्चहे, गुज्जहं आणहं तुह सहकारह फलेह तवा ॥११॥

[२-१२]

विजाहर वहयहं वि शुद्धु । सहस्र बयालहं अंव मिदु ॥१॥
आणि वि तं दिजजहि णिव्वयार । वहु रुचणि विजामय वि सार ॥२॥
तिणि सायं सेसच्छुहु विलाह । सुहु हवहि वि पुण्णो किण्ण होइ ॥३॥
तं समयहि लेयर एय त्राय । पुच्छित विजाहुर विणय वाय ॥४॥
सहकारह काहि गुण महु निरत्तु । मण संसर फेझहि एव तत्तु ॥५॥
संपञ्जहु महु सुहु हियहु तत्तु । तं णिसुणि वि लेयर वीउ वुत्तु ॥६॥
लहु विकलहं फलु सायहु पञ्चित्तु । जव लगिग रहेह उरि णरहं भत्त [त्तु] ॥७॥
विण विण णियदंतहं थुञ्जह जाम । कुञ्जंतु करुडा पुहमि ताम ॥८॥
उगिलहु पंच सह [र] रुपण वेह । सुज्जोदय वेला कम्म जोइ ॥९॥

उक्तं च—

सम्पदि यस्य न हर्षो, विपदि विषादो रणेपि धीरत्वं ।
तं भुवनश्रयतिलकं, जमयति जननी सुतं विरला ॥१॥
वि गु(र)ला जाणति गुण, विरला पालंति निष्ठणो सामी ।
विरला परकज्जकरा, परदुक्षेहि दुष्किषया विरला ॥२॥
वीयहं साहारह जो फलु सावहं । सत्तम विण लहु रञ्जु सु पावहं ॥३॥
भुजह णिव्वसिरि अचल सु इच्छहि । सप्तल वसुधर णिव पम सुञ्जहि ॥४॥

से दोनों अतिथि भाई हैं, शुभोदय से अच्छे देश में उत्पन्न हुए हैं, परोपदेशी हैं ॥१७॥ निजोपदेशी पापों को शीघ्र हरता है और स्वर्ग के देवताओं में प्रभुत्व (इन्द्र पद) (पाता है) ॥१८॥ इस प्रकार इन भव्य अतिथियों को विफल करो जिससे कि उम्मार हेतु इन भव्य पुरुषों को फिर आना पड़े ॥१९॥ पृथिवी पर सज्जन-भवत वही है जो शून से शोभित उत्तम चित्तवाले शरणागत की रक्षा करता है ॥२०॥

धता—इसके पश्चात् प्रिया (तोते) के द्वारा अपने प्रीतम (तोते) को कहा गया—हे स्वामी ! ऐसे बचन मत कहो । पर्वत की ओटी पर एक गुप्त स्थान है, वहाँ दो आम कले हैं ॥२-११॥

[२-१२]

[यक्ष दम्पति द्वारा अमरसेन वड्हरसेन को खात किये थे
आम-फलों का भाहृत्य-धर्णन]

विद्या-सम्पन्न वह विद्याधर (कीर पक्षी) बहुरूपिणी विद्या का स्मरण करके ब्रती, हजारों जीवों पर दया करनेवाले, निविकार शुद्ध दोनों भाइयों को मीठे आम लाकर देता है ॥१-२॥ फलों के स्वाद से सम्पूर्ण क्षुधा तिरोहित हो जाती है । सुख होता है । लोक है—पृथ्य से क्या नहीं होता ॥३॥ उसी समय एक विद्याधर पक्षी ने विनत बदन से (दूसरे) विद्याधर पक्षी से पूछा ॥४॥ उसने कहा है पूज्य ! आम-फल के गुण कहकर/बताकर मेरे मन का संशय दूर करो ॥५॥ जिससे मेरे हृदय को सुख प्राप्त हो । ऐसा सुनकर दूसरे विद्याधर ने कहा ॥६॥ सूर्योदय के समय करने योग्य जिस समय दौत धोता है उस समय पृथिवी पर करुडा (कुल्ला) करते हुए (करके जो) छोटे वृक्ष के पवित्र फल का स्वाद लेता है वह (स्वाद) जब तक मनुष्य के हृदय में रहता है, पोषण करता है और वह मनुष्य नित्य पौच सौ रत्न उगलता है ॥७-९॥

कहा भी है—जिसे सम्पति की प्राप्ति में हर्ष और विपत्ति में दुःख नहीं होता । युद्ध में धैर्य धारण किये रहता है, ऐसे तीन लोक में तिलक स्वरूप पुत्र को विरली माता ही जन्म देती है ॥१॥ गुणों को विरले ही जानते हैं, विरले स्वामी ही निर्धन को पालते हैं, पर कार्य करनेवाला विरला होता है और पर-दुःख में दुःखी विरला ही होता है ॥२॥

जो दूसरे आम वृक्ष के फल का स्वाद लेता है वह सातवें दिन शीघ्र राज्य पाता है ॥१०॥ अपनी इच्छा के अनुसार अचल राज्य-लक्ष्मी को

सल्लै जाणहि चयमणि भंतिहि । गय भगेवि लेयर णिव आणहि ॥१२३॥
 सुणिड वयणु मयि लयर चक्रतहि । महि पिय जंयित करहु तुरंतहि ॥१३४॥
 वे चूय फलहि आणियहि वेहि । विजजहि विहि भायहि रोड-ओहि ॥१४५॥
 गय उडिहवि विष्णि वि उवयारहि । गिरि सुकूट सहकार फलाहि जहि ॥१५६॥
 तं आणिय गिष्ठि वि तुंच गहि । पुणु पुणु सुचियहि वि ताहं महि ॥१६७॥
 विहुइ सहकारहु उवरि सुहि । अवभागयं वाणहु देण विहि ॥१७८॥
 तं संबंधु सुणिड वरसेजहि । जं खयरेहि वि वहिड गरीगहो ॥१८९॥
 तहि अवसरि जग्गिड अमरसेणु । णिड पहरह विहुउ सुहणि सेणु ॥१९०॥
 णिय लहु भायणिदसकलजहि । जे वि भप्पाउरु वज्जिय भज्जर्हि ॥२०१॥
 तावहि साहारहि उवरि घित । वे अंव सुरुल कुमरग पत्त ॥२१२॥
 वहुसेणि लेवि से गंठि बढ़ । णिड याणहि गरुवज भाइ बुढ़ ॥२१३॥

घटा

सुत्तर लहु भाई, गरुव सहाई, जे पाछ्य मण इंच्छ जणि ।
 पह समर्थहि उद्गुड, णिय मणि तुट्टुड, पणमिते गरुवउ बीर तहि ॥२-१२॥

[२-१३]

सु विहारे चलिय वे वि वीर । भय भीसणु उववणु चत्तु धीर ॥१॥
 तहं मग्ग जंत विहुउ रवणु । सु सरोवर कमलणि णीरचलणु ॥२॥
 तहं विहुइ जाह वि सुख्तुपालि । वहुतरवरमंडिय रवग-खालि ॥३॥
 तहि अवसरि वरसेणेहि गंठि । णय अंचलु खुलिल वि रोडणहि ॥४॥
 सहकार गरुव दिउ जेटु भाय । यहु असहिवेव णिव-रिहि-दाय ॥५॥
 गय भिण्ण-भिण्ण विष्णि वि कुमार । उज्जाणभूमि कथ सुद्धि वार ॥६॥
 किरि सम्मायहि सरबरहं तीर । किष्कायसुद्धि तहं सुद्धणोर ॥७॥

भोगता है, सम्पूर्ण पृथिवी के राजा (उसके) चरणों में लोटते हैं (चरणों की सेवा करते हैं) ॥११॥ इन्हें मन में एक जन्म से दूसरे जन्म की मुक्ति का हेतु जानो—ऐसा कहकर विद्याधर अपने स्थान पर चले गये ॥१२॥ हे मेरे प्रिय प्रीतम् ! विद्याधर को कहते हुए जो मैंने सुना है वह तुरन्त करो ॥१३॥ वे दोनों आम्र फल शीघ्र लाओ और राह से भटके हुए भाइयों को विविष्ठवर्क दीजिए ॥१४॥ वह विद्याधर कीर दोनों भाइयों के उपकार के लिए जहाँ आम के फल थे उस पर्वत की शिखर पर गया ॥१५॥ वह भूँह से पकड़ पकड़ कर उन्हें लाकर पृथिवी पर गिराता है ॥१६॥ इस प्रकार अभ्यागतों को विविष्ठवर्क दान देकर वह सुखपूर्वक आम्र पर बैठ जाता है ॥१७॥ बइरसेन ने अतुर विद्याधरों द्वारा जो कहा गया उसे सुना ॥१८॥ इसी समय अमरसेन जाग गया । अपने भाई को सुलाने के लिए जिससे कि (उसके) हृदय का भय छोड़कर भाग जाता है, वह सुखपूर्वक बैठ गया और पहरा देता है ॥१९-२०॥ तभी कुमार के आगे दो आम्र फलों का सुन्दर गुच्छा ऊपर से आ गिरा ॥२१॥ बइरसेन ने उन्हें लेकर गाँठ में बांध लिया । बुद्धिमान् बड़ा भाई यह जान नहीं पाता है ॥२२॥

घस्ता—जिसके द्वारा मन इच्छित (वस्तु) प्राप्त कर ली गयी है वह छोटा भाई बड़े भाई की सहायता से सो गया और भोर होते ही उठ गया । उसने अपने मन में संतुष्ट होकर बड़े भाई को प्रणाम किया ॥२-१२॥

[२-१३]

[अमरसेन-बइरसेन का वन से प्रस्थान, सरोवर पर विद्याम और बइरसेन को रत्न-प्राप्ति वर्णन]

वे दोनों धीर-वीर महा भयानक उपदेन को छोड़कर प्रभात होते ही चल दिये ॥१॥ मार्ग में जाते हुए उन्हें शरद ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्र के समान स्वच्छ कमल और जलवाला सरोवर दिखाई दिया ॥२॥

बड़ा भाई वहाँ—अनेक प्रकार के बृद्धों और पश्चियों के कल्परब से सुशोभित सरोवर के बांध पर जाता है ॥३॥ इसी समय बइरसेन ने वस्त्र को गाँठ खोलकर पथ-भ्रमित बड़े भाई को अविद्यमान देव और राजाओं की ऋद्धि को देनेवाले बड़े आम्रफल को दिया ॥४-५॥ दोनों कुमार ऋद्धि (शीत आदि निवृत्ति) के लिए उद्यान भूमि पर (वन में) भिन्न-भिन्न हो गये (पृथक् पृथक् स्थान पर चले गये) ॥६॥ इसके पश्चात् लौटकर वे सरोवर के किनारे आये । उन्होंने शुद्ध जल से शारोरिक ऋद्धि की ॥७॥

बहरसेन ने अपने मन में जैसा शुक-दम्पति से सुना था वैसा करने का विचार किया ॥८॥ छिपकर वह प्रमाणफल हेतु (सत्य-असत्य जानने को) सुखकारी आम्रफल निगल गया ॥९॥ मुँह धोता है और मुँह में पानी भरता है तथा नियमानुसार पृथिवी पर कुल्ला करता है ॥१०॥ इच्छानुसार लौकिक सुन्दर वेष (वस्त्राभूषण) देनेवाले वहाँ पाँच सौ रत्न वीज्ञ गिरते हैं ॥११॥ यक्षिणी (कीरि) के कहे अनुसार रत्न गिरते ही अपने वस्त्र में बांधकर छिपा लिए ॥१२॥ वहे भाई को इस वोई देव नहीं दिया ; उसने वहे फल के रहस्य की प्रतीक्षा की ॥१३॥

घट्टा—गुण रूपी रत्नों की खदान दीनों भाइयों ने स्वच्छ जल में स्नान किया । पश्चात् निर्मल चित्त से वे द्यालु सुखपूर्वक सरोबर से बाहर निकले ॥२-१३॥

साहु महणा के पुत्र चौधरी देवराज के लिये रचे गये महाराज श्री अमरसेन के चारों वर्ग की कहने में सरल कथा रूपी अमृत रस से भरपूर इस चरित में श्री अमरसेन-बहरसेन की उत्पत्ति, बालकीड़ा, विद्याभ्यास, और साथ-साथ उनके गमन का वर्णन करनेवाला दूसरा परिच्छेद सम्पूर्ण हुआ ॥संधि॥२॥छ॥

जब तक सर्वज्ञ की वाणी का संसार में बास है, जब तक हिमालय पर्वत है, जब तक पृथिवीतल पर तरंगित गंगा बहती है, जब तक शेषनाम पृथिवी का भार धारण किये हैं, और जब तक समुद्र में वेगपूर्वक माला रूप में उठती हुई लहरों की गर्जना है, तब तक देवराज अपने पुत्र-पौत्र आदि के साथ सुखी रहकर आनन्दित रहें ॥इति आशीर्वादा॥१॥

जिहनइ जितनउ सिरजियउ, धणु विवसाउ सहाउ ।

तिहनइ तितनउ संपज्जह, जिह भावह तहि जाउ ॥

जिसे जहाँ सचिकर हो वह वहाँ ही क्यों न चला जावे किन्तु उतना और वैसा ही वह धन, व्यवसाय और स्वभाव वह पाता है जैसा और जितना जिसने सूजन किया है ।



तृतीय परिच्छेद

[३-१]

ध्रुवक

एवाहि भासमि साह, जिहे विओउ विहि भाय भउ ।
 णिसुणहि मामहराय, सावहाणु हो एवि सउ ॥१॥

साह वइसेणि बहु-विह-पथार । गुह अहे पथ-सेवइ णिलिवार ॥२॥

तो वज्वह[हि]विलसइ सुच्छचित । संपाडह बडरस-भोजु णित ॥३॥

भुजावह भापहि करि वि भति । जं उथरहे जासइ भुकल-अति ॥४॥

पहिरहि देवंगई वत्य णित । जायण-ज्ञन पोसहि दाण भत्त ॥५॥

तहि अवसरि कुज्जसइ अमरसेणि । भो सुणहि वाय महु वइरसेणि ॥६॥

कहि लङभय संपइ गुणणसेणि । जं पोसहि णिय कर होण-दीण ॥७॥

तो णिसुणि भणइ तहु वइरसेणि । जिणधम्म-भत्तु पुणहणसेणि ॥८॥

सुणि वंधव जव पहु हमह रुटु । मारण पट्ठाए चंड बुट्टु ॥९॥

तहं परियण-गरवइ-राघकीय । अंतरि पवेसु महु दिष्णु तीप ॥१०॥

दीणार सत्त पञ्चणा करि । मझ रकिखय निप भंडार शरि ॥११॥

तं लेवि आउ भो भाय सुहि । विलसउ सुह संपइ कम्म सुहि ॥१२॥

तहि अवसरि सत्तम दिण कुमार । गय कंचणपुर रणि कुणिवार ॥१३॥

णिव-णदणवण ओपरिय जाय । जहं कूवा-सरवर-सुच्छ-वाय ॥१४॥

बहु तरवर सहियउ परिव-रम्मु । फळ-फुल सुयंवहं अलिहिरम्मु ॥१५॥

कीरहि णर-णारिय रहसचित । णिय कंतु रंजावहि कमल-वत्त ॥१६॥

तहं कोइल सद्दइ जणहं रम्मु । हरि शुल्लहि तरवर-साहरम्मु ॥१७॥

घन्ता

तहं उववणि, पहसिय-मणि,
 गड कंचणपुर विमलमई ।
 वइसेणिकुमार, णिलिय-मार,
 भोयणस्थ सामगि लई ॥३-१॥

[३-१]

[अमरसेन-बहुरसेन का कंचनपुर-प्रवास-वर्णन]

ध्रुवक

हे मगधराज (श्रेणिक) ! जिस प्रकार दोनों भाइयों का विद्योग हुआ (वह) सभी संक्षेप से कहता है, सावधान होकर सुनो ॥३॥ वहाँ बहुरसेन निविकार भाव से बड़े भाई के चरणों की विविध प्रकार से सेवा करता है ॥४॥ उस समय वह स्वच्छ हृदय द्रव्य से भोग-विलास करता है । नित्य छहों रसों से युक्त पेट की क्षुधा-वेदना को माशनेवाला भोजन भक्षित्पूर्वक भाई को करा करके (स्वयं) करता है ॥५-६॥ नित्य देवताओं के समान दिव्य वस्त्र पहिनता है, भक्षित्पूर्वक दान देकर याचकों का पोषण करता है ॥७॥ उसी समय अमरसेन पूछता है । कहता है हे भाई बहुरसेन ! मेरी बात सुनो ॥८॥ जिससे अपने हाथ से दीन-हीनों का पोषण करते हो, वह शृंखलाबद्ध लाभकारी सम्पदा कहाँ से प्राप्त की है ॥९॥ ऐसा सुनकर बहुरसेन कहता है—जिनधर्म-भक्त, शृंखलाबद्ध पुण्य करनेवाले हे भाई सुनो ! जब हम से लठकर राजा ने (हमें) मारने को दुष्ट चाण्डाल भेजे थे तब राजा के राजकीय परिजनों में तीन ने मुझे भीतर प्रवेश करने दिया ॥१०॥ मैंने सात दोनार (मुद्रा) छिपाकर अपने भण्डार में रख लिये ॥११॥ हे भाई ! उन्हें ले आया हूँ । शुभ कार्यों में (उस) शुभ सम्पदा को सुख पूर्वक भोगो ॥१२॥ इसी समय सातवें दिन युद्ध में दुर्निवार (अजेय) कुमार कंचनपुर गये ॥१३॥ वे राजा (उस) मन्दनवन में उतरे जहाँ कूप, तडाग और स्वच्छ-वायु थी ॥१४॥ वृक्ष सुन्दर पक्षियों, फूल-फल, सुगन्धि के लिये आये सुन्दर अमरों से सहित थे ॥१५॥ हण्डित चित्त से नरन्नारी जहाँ क्रीड़ा करते हैं कमलमुखी नारियाँ अपने पति का अनुरंजन करती हैं ॥१६॥ वहाँ मनुष्यों के लिए कोयल सुन्दर शब्द बोलती है, बन्दर वृक्षों की सुन्दर शाखाओं पर झूलते हैं ॥१७॥

घटा—उस उपवन में मन में प्रसन्न होकर शारीरिक सौन्दर्य से काम-देव को पराजित करनेवाला, प्रखर बुद्धि कुमार बहुरसेन भोजन का सामान लाने को कंचनपुर गया ॥३-१॥

[३-२]

इत्यंतरि कंचणपुरहं णिउ । विस्सूइय रोयहं अति मुळ ॥१॥
 तं रज्जु अपुत्तहं विहलु गङ्ग । तह णत्थि कोइ उद्दरइ पक ॥२॥
 तह गोय-मजिस्त लग्माति राय । परसप्पर मूळ दुरास भाय ॥३॥
 तह मंतिहि वारिय सयल सुत्थ । णच झंखहु अलियउ सह णिरत्थ ॥४॥
 जहु देव णराश्चिव-पट्टु हत्थि । तं करइ रज्जु इहं पुरहं सुत्थ ॥५॥
 सं णिसुणि वि सधवहं वयणु मण्णु । सिगारिउ वंतिय तहं खण्णु ॥६॥
 दिउ पुण्ण-कल्सु तहु सुंडि तत्तु । भंमह भणिजडियउ सुजजित्तु ॥७॥
 करि लघउ सुंडि उच्चत्तु करि । फिरियउ कंचणपुरु सयल हरि ॥८॥
 णउ छालइ कुंभु वि कासु सिरि । णउ होणहं घरइ[हि] विविसइ सिरि ॥९॥
 मुइ सयल राय-पुरयण वि राय । णउ भणिणउ कहु मणु तत्थ राय ॥१०॥
 णिगड पुर-वाहिर गयउ रण्णि । जिहु अमरसेणि विउ सुकिय पुण्णि ॥११॥
 णिहाभर सुत्तउ रायपुत्तु । जिणधम्मा सत्तउ सुद्ध चित्तु ॥१२॥
 पाविज्जह विविह सुहाइ जत्थ । उप्पत्ति जरामरणइ तत्थ ॥१३॥
 तत्थाइ तहं चिय-जीड जाइ । किय-कम्म-गलत्थिउ णउ रहाइ ॥१४॥
 जे थाइ पसुत्तउ अमरसेणि । तं दिदुङ गयंदहं गुणणिसेणि ॥१५॥
 उत्थाइ तत्थ णिवपुत्त जाणि । णिव-पट्टु-धुरंधर तेय-तरणि ॥१६॥
 करि छालइ तं सिरि उवरि कुंभु । जय कारिउ-पुरयण चत्त डंभु ॥१७॥

घटा

पुरयण मंति महलहिं, वहुणिव अण्णहिं
 वणमिउं सबदहं अतुलवलु ।
 अमरसेणि णरेसह, पउमिणि मणहरु,
 दंति चहावउ णं अमह ॥३-२॥

॥उकतं च ॥ अमोघं जलदे वृष्टि अमोघं प्रार्थित सतं ।
 अमोघं सदगुदवाक्यं अमोघं राजवर्द्धनं ॥ ४ ॥

[३-२]

[अमरसेन को कंचनपुर का राज्य-प्राप्ति-वर्णन]

इसी बीच कंचनपुर का राजा हैंजे की बीमारी से शोष मर गया ॥१॥ पुत्रहीन होने से उसका राज्य निष्कल गया, उस राज्य को कोई उद्धारक प्राप्त नहीं हुआ ॥२॥ उस राजा के गोत्र में (जो) भाई लगते हैं (वे) परस्पर में दुराशयी और मूर्ख हैं ॥३॥ मंत्री भली भाँति सभी को मत झगड़ो कहकर और रोककर (समझते हैं कि) संसार मिथ्या है, निरर्थक है ॥४॥ हाथी जिसे राजपट्ट देवे वही इस नगर का भली भाँति राज्य करे ॥५॥ ऐसा सुनकर सभी ने मंत्रियों की बात मान ली । सुन्दर हाथी सजाया गया ॥६॥ उसकी सूँड पर मणि जटित, सूर्य के समान दीप्तिमान् पुण्य-कलश देकर उसे घुमाया गया ॥७॥ हाथी ने सूँड ऊँची करके (पुण्य-कलश) लिया और कंचनपुर के सभी घर घूमा ॥८॥ वह किसी के सिर पर कलश नहीं ढोरता है । ठोक ही है—लक्ष्मी हीन पुश्पों के घर प्रवेश नहीं करती है ॥९॥ उस हाथी ने मृत राजा के सभी पुरजनों में किसी भी मनुष्य को राजा नहीं माना ॥१०॥ नगर से बाहर निकलकर वह बन में (वहाँ) गया जहाँ शुभ कार्य करनेवाला, पुण्यात्मा, अमरसेन स्थित था ॥११॥ जैनधर्म में आसक्त, शुद्धचित् राजपुत्र अमरसेन भर नींद सोया था ॥१२॥ वह विचारता है कि जीव—जहाँ विविध सुख प्राप्त करे, जहाँ जन्म-जरा और मरण नहीं, वहाँ जीवात्मा जब जाता है, अर्जित कर्म शेष नहीं रहते, गल जाते हैं ॥१३-१४॥ उस स्थान का रहनेवाला, शुखलाबद्ध गुणों का आगार, सोता हुआ अमरसेन उस हाथी को दिखाई दिया ॥१५॥ सूर्य के समान लेजस्वी राजपुत्र (अमरसेन) को राज्य पट्ट धारण करने में घुरंधर जानकर हाथी उसे उठाकर उसके सिर पर कलश ढोखता है । नगरवासी जनों ने मान त्याग करके जय-जयकार किया ॥१६-१७॥

घटा—पुरजन, मंत्री, अन्य अमेक राजा सभी अनुल बलवालों ने प्रणाम किया और स्त्रियों के मन को हरनेवाले राजा अमरसेन को हाथी के ऊपर चढ़ाया / बैठाया । वे ऐसे लगते थे मानों ऐरावत पर बैठा इन्द्र हो ॥३-२॥

कहा भी है—मेघों का बरसना, सज्जनों से वाचना, सदगुरु के वचन और राज्य की बृद्धि इच्छित फलदायी होती है ॥४॥

[३-३]

तह जय-जय सद्गु विविह युस । विरदावलि भट्ठ भणति भत्त ॥१॥
 बहु वायदं वज्जर्हि विविह णाथ । सिय मंगलु गावहि अमिथधाय ॥२॥
 बहु उच्छ्रवेण णिड णिवहु थाणि । णिद-पट्टह अप्पिड अमिथधाणि ॥३॥
 सुहि करह रज्जु णिय वंधु रहित । णउ मिलित वेङ्ग असणत्य गत ॥४॥
 तं चित पवट्टहं रायमणि । दुँडावित णिय पुरु रण्णु खणि ॥५॥
 णउ विहुड वंधउ पाण-हट्टु । पहु रहइ संचितउ रज्ज-विट्टु ॥६॥
 हृत्यतरि कंचणपुरह मज्जि । वहरसेण पच्छणउ रहइ तज्जि ॥७॥
 णउ याणह पुरयणु रायवीरु । विलसइ सुहि संपहु णिहि-गहीर ॥८॥
 गुरु भायर जाणि वि रज्ज विट्टु । वहसेणि चितिड हिय-मणिट्टु ॥९॥
 हउं णिव भंडिरि णउ जाउ भत्ति । तं आगह भणउ एह जुत्ति ॥१०॥
 हउं तुम्ह केर लग्ज भहेस । महु देहि राय पुर-ग्यर-कोस ॥११॥
 हउं तुज्जु सहोयरु लहुयराय । दथ करहि महुपरि सुढभाय ॥१२॥
 वरि वणि गय-सीह-णाय सेविज्जहि । दुम-पत्तह कंबह-भखिज्जहि ॥१३॥
 तिण-सज्जा णउ वीणु वहज्जह । वरि तणु रक्षच्छत्तु पहिरिज्जह ॥१४॥
 समुरिसाहुं णउ एहउ जुज्जह । णउ थणहीणु बंधु महि जुज्जह ॥१५॥
 जाइ सज्जणु अत्थ-विहीणु भुवि । सेवेह रणु णउ भणहुं भुवि ॥१६॥
 वीणसहर भणहुं ण लोय छावि ॥१७॥
 आक्षह महानह माण-गए । णउ विक्कह साणु गयंद-शुए ॥१८॥

घटा

अहिमाणे थक्कउ, भणु करि बंकउ,
 वहरसेणि वर लच्छहि ।
 गिह मागह-वेसहि, विद्ध सुडुहि हि
 कामकंबला-पुत्ति तहि ॥३-३॥

[३-३]

[बहरसेन का कंचनपुर में प्रश्नल वेष में रहना तथा शीन-वचन
सम्बन्धी विचार-वर्णन]

भक्त जन विविध प्रकार से जय-जय शब्द और स्तुति करते हैं। भाट विरुद्धावलियाँ वहते हैं ॥ १ ॥ बहुत प्रकार के बाजे बजाये जाते हैं, विभिन्न स्वर होते हैं, स्त्रियाँ अमृत के समान मीठी वाणी से मंगल गीत गाती हैं ॥ २ ॥ बहुत उत्सव पूर्वक राजा अपरसेन को कंचनपुर-नरेश के सिहासन पर अमृतोपम वाणी से बैठाया ॥ ३ ॥ अपने भाई से रहित वह सुखपूर्वक राज्य करता है। भोजन के लिए गया भाई उसे शीघ्र नहीं मिला ॥ ४ ॥ राजा के मन में उत्तरोत्तर चिन्ता बढ़ती है। उसने अपने नगर और वन में दूँढ़वाया ॥ ५ ॥ राजा को प्राण-प्रिय भाई दिखाई नहीं दिया। वह सचित राज्य सिहासन पर बैठा रहता है ॥ ६ ॥ इसी बीच उसी कंचनपुर में बहरसेन छिपकर रहता है ॥ ७ ॥ वह सुखपूर्वक सम्पदा और गम्भीर निधि को भोगता है। पुरजन और राजा जान नहीं पाते हैं ॥ ८ ॥ बहरसेन ने राज्य सिहासन पर अपने हितेषी बड़े भाई को बैठा जानकर हृदय में विचार किया ॥ ९ ॥ मैं शीघ्र राजमहल नहीं जाऊँ, उनके आगे यह कहना भी युक्त नहीं है कि हे राजन् मैं तुम्हारा (भाई) लगता हूँ अतः मुझे गाँव, नगर और राजकोष दो ॥ १०-११ ॥ हे राजन् ! मैं तुम्हारा सहोदर छोटा भाई हूँ। हे चरित्रवान् भाई ! मेरे ऊपर दया करो ॥ १२ ॥ वन में हाथी, सिंह और सर्पों की सेवा करना अच्छा है, वृक्षों के पत्ते और कन्दमूल खा लेना अच्छा है, तुण-शश्या अच्छी है, शरीर पर वृक्ष की छाल पहिनना अच्छा है किन्तु दीनता भरे वचन नहीं बोले ॥ १३-१४ ॥ पुरुषार्थी को यह युक्त नहीं। पृथिवी पर भाई का धन-हीन होना ठीक नहीं है ॥ १५ ॥ पृथिवी पर सज्जन यदि अर्थ-विहीन है तो वह जंगल में भले रह लेता है किन्तु पृथिवी पर लोभाकृष्ट होकर दीनता भरी वाणी नहीं बोलता है ॥ १६-१७ ॥ (जो) महामतिमान् मान रहित होकर स्वाभिमान की रक्षा करता है (वह) निश्चय से हाथी पर असकार होता है ।

घट्टा—लक्ष्मी से अभिमान में रहकर मन में कुटिलता धारण करके बहरसेन वहाँ मागध वेश्य के घर उसकी पुत्री कामकंदला के नेत्रों से आविष्ट हो गया ॥ ३-३ ॥

[३-४]

तं अच्छह-लंजिय लुद्गेहि । सुरजोदयच्छहि करेह सोहि ॥१॥
 रथण सय-नंच खण्ण पड्हेहि । फल सहकारह भावेण गुणहि ॥२॥
 सङ्गं हच्छह भुंजह कुपह दध्नु । भंजेह वलिहह दोडु तिल्लु ॥३॥
 पुणु पुणु तहं राय दुलावियाड । णउ पायड सोयख मथण राउ ॥४॥
 बहुसेण वि पुर महि जुउ रमहि । सुह सुर कीलइ वेसा सनेह ॥५॥
 गय वहु विणाइं लंजियहि विद्धु । णिध पुत्तिय पुच्छिय दब्ब लद्धु ॥६॥
 सुय बुझहि विर भत्तारु भेड । विणु विवहारे दब्बु वि अवेड ॥७॥
 विलसह रह माणहि णिच्चब पुत्ति । इहु मारि वि लिज्जह विणय जुलि ॥८॥
 तं सुणि वि भणहि पुस्ती सुवाय । णउ वित्त-नंतति तुज्जु वि सुमाय ॥९॥
 अवराहे विणु घहणड ण जुत्तु । हरि-धणु आणह इह अप्प मित्तु ॥१०॥
 सुणि पुत्तिय-वयण लोहेण भुत्त । ण वि गाहु सुयह पावेण लिल ॥११॥
 णिध-घूघस रिस दोलेह वयण । णउ एह सरिसु हुउ संगु केण ॥१२॥
 तं रथणु वि हस्थं-तरि वि लाह । हिय दाहु देवि अहरेण जाह ॥१३॥
 हत्तिय चडह ण वि पुणु पुणु जूरह । पाणि-मलह सो हियह विसूरह ॥१४॥

घन्ता

पुणु भासह कुट्टणि, विडयण-लुद्गणि,
 पुत्ति सुणहि एयगा मण ।
 विट्ठुंतु विलालड, जण-मण-हारड,
 विवपुरि णामेण णायरि घण्णा ॥३-४॥

[३-५]

धण-कण-संपुणी सुह-णिहाणि । देवह सुहयारो विवह खाणि ॥१॥
 तहं देवदत्तु गरवह पवंडु । अरियण-भाह-कलण-मियंडु-चंडु ॥२॥
 तं राणी देवसिरि मियकिल । जिण-नुरु-पय-भत्तिय णाण वकिल ॥३॥

[३-४]

[वहसेन का बनापूरण एवं धात सम्बन्धी वेश्या का पुत्री से विचार-विमर्श]

अप्सरा के समान सुन्दर वेश्या का लोभी वह (वहसेन) उस वेश्या के घर सूर्योदय होने पर धन करता है ॥ १ ॥ आम के फल के गुण-स्मरण से पाँच सौ सुन्दर रक्त गिरते हैं ॥ २ ॥ कुमार स्वेच्छानुसार द्रव्य भोगता है । वह दरिद्रियों की तोक दरिद्रता नष्ट करता है ॥ ३ ॥ राजा ने बार-बार दूँडवाया किन्तु उन्हें मदनराज सहोदर नहीं मिला ॥ ४ ॥ वहसेन नगर में वेश्या के साथ सुखपूर्वक क्रोडा करते हुए सहवास करता है ॥ ५ ॥ अबहुत दिन निकल जाने के पश्चात् धन की लोभी बृद्धा वेश्या ने अपनी पुत्री से पूछा, कहा ॥ ६ ॥ पुत्रि ! रो-रोकर बिना व्यापार के अमित द्रव्य होने का भत्तार से रहस्य पूछो ॥ ७ ॥ हे पुत्री ! वह रति के समान विलास करता है । युक्ति और नीति पूर्वक इसे मारकर वह इससे ले ले ॥ ८ ॥ ऐसा सुनकर पुत्री सुन्दर वचन कहती है—हे माता ! तुम्हारी धन से तुप्ति नहीं होती ॥ ९ ॥ बिना अपराध का वध करना युक्त नहीं । यह अपना मिश्र है, घर में धन लाता है ॥ १० ॥ पुत्री के वचन सुनकर लोभ में आसक्त और पाप से लिप्त वह अपनी पुत्री को क्रोधित होकर कहती है कि मत झगड़ो, मत मारो । इससे क्रोध न करूँ तो किसके साथ करूँ ॥ ११-१२ ॥ उसे (वहसेन को) और रत्नों को भी लाकर हृदय को भ्रस्म करनेवाली वह शीघ्र जाकर हाथी के नीचे दे देती है ॥ १३ ॥ वह बार-बार हाथी पर कुपित होती है किन्तु वह (वहसेन के ऊपर) नहीं चढ़ता है । वह वेश्या हाथ मल्ती है और हृदय विसूर-विसूर कर रोती है ॥ १४ ॥

धत्ता—इसके पश्चात् वह—व्यभिचारियों की लुटेरिन, कुट्टनी कहती है—हे पुत्री, एकाघ्र धन से सुनो ! जन-मनहारी यह देवपुरी नामक नगरों में [हुआ] निद्य ग्रह-देवता दिखाई देता है ॥ ३-४ ॥

[३-५]

[वेश्या द्वारा पुत्री को कही गयी देवपुरी की राजकथा-वर्णन]

धन और धान्य से परिपूर्ण, सुख की निधान, देवों की सुखकारी, विद्वानों की खदान उस नगरी में प्रश्रुजन रूपी हाथी को विदारने के लिए प्रचण्ड मृगेन्द्र स्वरूप देवदत्त नृपति था ॥ १०२ ॥ ज्ञानवान्, जिन गुरु के

तहं अङ्गद्व रक्खसु पावरासि । दुद्दरिसण-भीसण सखगासि ॥४॥
 तं णरवद्व अग्नाह भणह दुट्ठु । भो पहु कि रम्यु भणेहि सुट्ठु ॥५॥
 भोयणु सह जीवहं पुहह इट्ठु । ताहें विणु लोयहं सध्यु कट्ठु ॥६॥
 तं णिसुणि वि थारित रक्खसेण । तं रजन णवड्व विट्ठउ सुहेण ॥७॥
 खण मास समायउ तथ्य पाउ । दुद्दरिसण भीसणु किञ्चु काउ ॥८॥
 गिरि-गुह तं आणणु उम्मेकेस । गुजाहुल जेयहं जमहं वेस ॥९॥
 तं दुजिमउ राणड अक्षिल वेह । कि रम्भं बीसइ इत्य लोइ ॥१०॥
 पहु जंपह रह-सुहु तिय सुहेण । तं मारित रक्खसु तवखणेण ॥११॥
 एवहि वहु णरवद्व रक्खसेण । संघारिय पावे णिहएण ॥१२॥
 णउ कोइ रज्जु विट्ठउ णवल्लु । रक्खस भज मण्णहि हियइसल्लु ॥१३॥
 उक्तं च ॥

पंथि समं णत्य जरा, वरिद् समो परिभओ णत्यि ।

मरण-भयं ए अदाणं, उष्टुहा समा वेयणा णत्यि ॥१४॥
 तहि अवसरि मंतिहि रयउ मंतु । वेवावित पठ्ठउ णयरि ततु ॥१५॥
 जो णरवद्व-पट्ठह सुहडु आय । तं वह सह णिव-पउ वेहि वाय ॥१६॥
 णिव सेवहि तं पय सह महल्ल । भुजह सह भेयणि पुणु णिसल्ल ॥१७॥
 तं णिसुणि विह तह एउ वुसु । घृत्ताणधुतु णामे सजुतु ॥१८॥
 णरवद्व सिहासणि आइ विट्ठु । वंदित णिव असि महल्ल सुट्ठु ॥१९॥

घटा

सुहि रज्जु कर्ततहं, जिण-यय-भत्तहं,

जिय पह-पालइ राय णिए ।

खण मास समायउ, रक्खसु वायउ [वायउ]

कि मिट्ठउ पहु भणहि बुए ॥३-५॥

[३-६]

तं सुणे वि णरवद्व संतुट्ठउ । रक्खस अग्नाह भणहि हियट्ठउ ॥१॥
 जं जसु सुक्षु होइ गरुयालउ । तं तट्ठु मिट्ठु सुहु घव सालउ ॥२॥

चरणों की भक्ति, भूग-नवनी देवश्री उसकी रानी (थी) ॥ ३ ॥ वहाँ देखने में अहंकर, सम्पूर्ण शरीर से भयंकर, पापी एक राक्षस रहता है ॥ ४ ॥ वह टुब्ट नृपति के आगे कहता है—हे राजन् ! भली प्रकार कहो ! सुन्दर क्या है ? ॥ ५ ॥ (राजा उत्तर देते हुए कहता है)—जीवों को जो भोजन के साथ पूर्यिदी पर ज़िय है जिसके बिना लोक का सब कड़वा प्रतीत होता है ॥ ६ ॥ ऐसा सुनकर राक्षस के द्वारा वह मारा गया । उस राजसिंहासन पर नया राजा सुखपूर्वक बैठा ॥ ७ ॥ छह माह पश्चात् पापी, देखने में ल्लराब, भयंकर, काली देहवाला, पर्वत की गुहा के समान मुँह फ़ाड़े हुए, उठे हुए बालों वाला, मूँजाफ़ल के समान लाल नेत्रवाला, यम के देख में वह पुनः आया ॥ ८-९ ॥ उसने राजा से कहा—शीघ्र बताओ ! इस लोक में सुन्दर क्या दिखाई देता है ? ॥ १० ॥ स्त्री-सुख से राजा कहता है—रति-सुख । इसे राक्षस ने तत्काल मार डाला ॥ ११ ॥ इस प्रकार पापी, निर्दयो राक्षस के द्वारा अद्भुत राजा मारे गये ॥ १२ ॥ राक्षस का भय मानकर हृदय में शल्य होने से कोई नया राजसिंहासन पर नहीं बैठता है ॥ १३ ॥ कहा भी है—पथिक के समान बुढ़ापा, दरिद्रता के समान पराभव, मरण-भय के समान अज्ञान और भूख की वेदना के समान अन्य कोई वेदना नहीं है ॥ १४ ॥ इसी बीच मंत्रियों ने शीघ्रता से मंत्रणा की और नगर में ढिङ्डोरा पिटवा दिया कि जो सुभट आकर राज के सिंहासन पर बैठेगा उसे राज-पद दिये जाने का वचन दिया जाता है ॥ १५ ॥ महल के साथ राजा उसके चरणों की सेवा करेंगे । वह निःशल्य होकर पूर्यिदी का भोग करे ॥ १६ ॥ घोषणा सुनकर वुत्ताणधुत नामक एक स्थिर पुरुष आकर राजा के सिंहासन पर बैठ गया । बड़े-बड़े मंत्रियों ने भली प्रकार राजा की वन्दना की ॥ १७-१८ ॥

घटा—जिनेन्द्र के चरणों के भक्त राजा नियमानुसार अपनी प्रजा का सुखपूर्वक राज्य करते हुए पालन करता है । छह मास पश्चात् राक्षस ने आकर कहा—राजन् कहो ! निश्चय से मीठा क्या है ? ॥ ३-५ ॥

[३-६]

[कुन्बलता का बहरसेन से उसके घनोत्पावन का रहस्य जात करके माता से प्रकट करना तथा द्रष्टव्य-विभाजन कथन-वर्णन]

राक्षस का प्रश्न सुनकर राजा संतुष्ट हुआ । वह राक्षस के आगे हृदय में स्थित (विचार) प्रकट करता है / कहता है ॥ १ ॥ जो जिसका अधिक सुखकारी होता है, उसको वह मीठा है (अतः) निश्चय से भली

तं वयणे रक्षसु संतुद्गु । णिरु णिय आवासहि विधुत सतुद्गु ॥३॥
 देवंगाहं वश्वाहं पहुराविष । सोलह आहारणाहं वंधाविष ॥४॥
 सोलह वाहिण सोलह वामाहं । अणुबम रुच लिया सुहु-धामाहं ॥५॥
 जं जं पित महु सहु अहूष पीह । तं जसु भावह णिय मणि-विभूह ॥६॥
 जं मिट्ठु तं मणि हियह मिट्ठु । यउ विद्धह लंजिय भणित सुट्ठु ॥७॥
 इय मागह मायह वयणु सुणि । अवरहि विणि कुंवलयाहं सुणि ॥८॥
 चुजिष्ठ रहन्सुक्खाहं वहसेणि । भो वल्लह इहु पुणु वयणु सुणि ॥९॥
 विणु ववसायहं णउ अत्थ होह । साहहि णिय लच्छउदाय कोह ॥१०॥
 णउ आणिउं मुक्खहं कवडु-भेड । जि संपज्जमह अहु दुसह सोउ ॥११॥
 तं सरलवित्त सहयार भेड । अक्षियउ सयलु लंजिय सुहेड ॥१२॥
 तं लेबि गुज्जु णिय भाय-पासि । वियसंति समाइय अलियरासि ॥१३॥
 तहं जंपह मागह विद्ध णिरु । महु भेड पयासित रोडहर ॥१४॥
 तहं सुणित भउ विय उत्तु विद्ध । मणह लहं चंटि विय वल्ल लुठु ॥१५॥
 वंटि वि तं भोयण-मज्जिष दिपण । विय पच्छाण्णह णउ सुणह तंण ॥१६॥
 भोयणहं वेर वहसेण राउ । भोयण भुज्जावित रोड दाउ ॥१७॥
 कर-मलि यउ वंणी तत्थ तस्तिथ । णउ साहारह कंदप्प-मुत्ति ॥१८॥

घत्ता

वहसेण कुमार, अरि-खय-कालु, चिछिदि करेह दुहिलउ ।
 मा गहय वेतहि, लुभिय-दव्वहि, उडि उ आडहु वउणु तउ ॥३-६॥

[३-७]

तं थाड मज्जिष सहकार-फलु । दिट्टोसि वि उज्जाहु रोडहलु ॥१॥
 सा णिय घर-वाहिर यालु लेबि । पुणुच्छिदि-मज्जिष लहु षुबह तोवि ॥२॥

प्रकार साला मीठा है ॥ २ ॥ राजा के इस वचन से राक्षस संतुष्ट हुआ । संतुष्ट होकर वह भूर्त राजा को अपने आवास में ले गया ॥ ३ ॥ उसने दिव्य वस्त्र पहिनाये और सोलह शृंगार कराये ॥ ४ ॥ सुख की स्थान, अनुपम रूपबात्, सोलह दायीं और और सोलह बायीं ओर स्त्रियाँ (दीं) ॥ ५ ॥ जो जो (तुम्हारा) प्रीतम है वह मुझे अधिक प्रिय है । उसको अपने मन में जैसी विभूति भाती है, जो मीठा लगता है वह (मुझे) मन में मीठा है । हितकारी है । इस प्रकार बृद्धा वेश्या ने भली प्रकार कहा ॥ ६-७ ॥ इस प्रकार माता मागधी के वचन सुनकर दूसरे दिन कुन्दलता ने विचार करके रति-सुख के समय वहरसेन से मूछ...—हे प्रीति ! (भीरी) बात सुनो ! बिना व्यापार के द्रव्य नहीं होता है (अतः) अपनी लक्ष्मी का कोई उपाय बताओ / कहो ॥ ८-९ ॥ मूर्ख वहरसेन कपट-भेद नहीं लाया । असह्य कष्ट से जिससे (वह लक्ष्मी) प्राप्त की जाती है सरल परिणामी वहरसेन ने वह आम्रफल का सम्पूर्ण भेद सुखपूर्वक उस वेश्या (कुन्दलता) से कहा ॥ ११-१२ ॥ वह कुन्दलता उस भेद को लेकर मिथ्या वचनों की भंडार अपनी माता के पास विहँसते हुए आकर उस बृद्धा मागधी को निश्चयपूर्वक कहती है—उस वहरसेन ने मुझसे हेरानी दूर करने वाला भेद प्रकट कर दिया है ॥ १३-१४ ॥ उसका कथन सुनकर धिक्कार हो उस लोभिनी बृद्धा (मागधी) ने उत्तर दिया—द्रव्य लेकर मन के अनुसार हिस्से बनाकर दो ॥ १५ ॥ उसने बटवारा करके भोजन के बीच दे दिया और अपना हिस्सा छिपकर ले लिया । इसे वहरसेन नहीं जान पाता है ॥ १६ ॥ भोजन के समय राजकुमार वहरसेन ने कष्ट देने-वालों को भोजन कराया ॥ १७ ॥ इसके पश्चात् निर्वल वह दीद्व बन गया किन्तु कामदेव की मूर्ति सहारा नहीं देती है ॥ १८ ॥

घट्टा—शत्रुओं का धय करने में काल स्वरूप द्रोही कुमार वहरसेन व्यवन करता है । द्रव्य की लोभी (वमन लेकर) वेश्या माता उस स्थान गयी (किन्तु) वहीं से पक्षी उड़ गये थे ॥ ३-६ ॥

[३-७]

[वहरसेन का वेश्या के घर से निकाला जाना तथा स्त्री को गुप्त भेद देने पर किया गया पश्चात्ताप बर्णन]

उस स्थान पर दरिद्रता-नाशक आम्र-फलों से ऊजड़ दिखाई दिए ॥ १ ॥ वह मागधी वेश्या व्यवन की थाली लेकर घर के बाहर ले जाकर व्यवन में

णिव गंठि वंधि णिय-घर-समाय । तं णिद्वणु जाणि वि भय-विराय ॥३॥
ण इहि पहिणतिथ ण किंचि बत्तु । कि किञ्जइ षिद्वण रुब जुसु ॥४॥
उक्तं च ॥

अरि विसहरु मा वेसहरु, विसहरु मंत फुरंति ।
जे खेसाहणि ढंकिया, ते जर मरणहं जंति ॥५॥
अंविहि रोबइ मनि हसइ, जणु जाणइ सहु सच्चु ।
वेस-विरुद्धी तं करइ, अ कद्वइ करवत्तु ॥६॥
न गणहु रुबवता, ण कुलीणं तेण रुबसुं पुणं ।
ऐसा-वीसार-सरिसा, अस्य कलं तत्य संकमए ॥७॥

णिय घरहु णियालिउ बहरसेणि । गउ णिज्जर रथणिहि विद्वु लोणि ॥८॥
तं सरबइ जाइ वि पुहु बुवेह । कुरला करेह महि धुबइ बेह ॥९॥
ण उपलहि रथण पुणु पुणु करेह । तह इक्कु रथणु णउ पोसरेह ॥१०॥
पुणु भयज बिलक्खी रायपुत्तु । सिर धुणि वि सर्वितह महु भवितु ॥११॥
हा हा महि कि किउ विसयसत्त । मोहंधे लंजिय रद्धहि रत्त ॥१२॥
जं विष्णउ वेसहि अप्य गुज्जु । तं पडिउ रथण बुहु हियह मज्जु ॥१३॥
कि किञ्जइ मण्णए दब्ब विणु । ण वि सोहइ तं विणु पुहमि जणु ॥१४॥
किउ पोसिज्जहि जायणहं भत । जे अणुविणु मंगहिच्छृहहि तत्त ॥१५॥

धत्ता

तिय गुज्जु ण दिज्जइ, णिय हिय संपइ,
जह पाणइ णिय काठ गए ।
जं णीउ पंखि पहु, अरि सत्तुहि लहु,
पुँडरीउ णायदु जए ॥३-७॥

[३-८]

इय सुणि भासिउ दिउराजएण । भो सुकह कहहि महु गय-भएण ॥१॥
तं णिसुणि वि पंडिउ उल्लबेह । पारकिल राय सुह कह कहेह ॥२॥

जो रत्न ये उन्हें धो लेती है ॥२॥ उन्हें अपनी गाँठ में बौधकर अपने घर आकर उस वहरसेन को निर्भन जानकर उससे विरक्त हो जाती है ॥३॥ निश्चय से इसने उसे पहिनने को कुछ नहीं दिया । (ठीक है) सीन्दर्य से युक्त होकर भी निर्भन क्षम करे ॥४॥ यहाँ भी है—विषद् (सर्प) अच्छा है, वेश्या नहीं । सर्प (के काटे हुए) को मन्त्र से फूँक देते हैं (वह ठीक हो जाता है किन्तु जो वेश्या के द्वारा उसे गये हैं उन मनुष्यों का मरण ही उपाय है ॥५॥ वेश्या की आँखें रोती हैं और मन हँसता है । इस सत्य को हर व्यक्ति जानता है कि वेश्या विसृद्ध लोगों को वैसा ही करती है जैसे करीत (छकड़ी को) काटती है ॥६॥ वेश्या न रूपवान् को महत्त्व देती है न कुलीन को । उसके द्वारा रूपवान् और पुण्ड्रवान् सारहीन के समान (समझे जाते हैं) । वह जहाँ कल (लाभ) होता है वहाँ जाती है ॥७॥

बूद्धा वेश्या ने वहरसेन को घर से निकाल दिया । वह रात्रि में पृथ्वी पर एक निर्जन पुराने स्थान पर गया ॥८॥ वह सरोवर पर जाकर मूँह धोता है और शीघ्र पृथ्वी पर निश्चय से कुल्ला करता है ॥९॥ उससे एक रत्न भी नहीं निकलता है [तब वह] बार-बार (कुल्ला) करता है किन्तु रत्न प्राप्त नहीं होता ॥१०॥ राजपुत्र तब दुःखी हुआ और सिर पीट कर वह (अपने) मधुर भविष्य पर विचारता है ॥११॥ पश्चाताप करते हुए कहता है— हाय ! हाय ! विषयासक्त मैंने क्या किया ? वेश्या में आसक्त रहकर और मोह से अन्धे होकर जो मैंने अपना गुप्त भेद वेश्या को दे दिया । इससे वेश्या को रत्न मिले और मेरे हृदय को दुःख मिला ॥१२-१३॥ द्रव्य के बिना यह मनुष्य क्या करे । उसके बिना मनुष्य पृथिवी पर सुशोभित भी नहीं होता ॥१४॥ जो प्रतिदिन माँगकर क्षृधा की तृप्ति करते हैं भक्त (उन) याचकों का कैसे पोषण करूँगा ॥१५॥

घला—प्राण कंठात हो जाने पर भी पति अपने हृदय का गुप्त भेद स्त्री (पत्नी) नहीं देते । (इसी कारण) राजा परीक्षित वैरी प्राणियों द्वारा शीघ्र ले जाये गये थे और पुण्ड्ररीक ने नागेन्द्र पर विजय की थी ॥३-७॥

[३-८]

[राजा परीक्षित का मरण-निमित्त वर्णन]

ऐसा सुनकर देवराज ने कहा—हे (पण्डित) मुझे निर्भय होकर वह कथा कहो ॥१॥ ऐसा सुनकर पंडित हर्षित होते हुए सुखपूर्वक राजा परी-

इह कुरुजंगलि गथपुरि विसालि । पात्तक्षिल रात तहि जीह-सालि ॥५॥
तुहि रखु करते अवहिणाणि । मुणि पुच्छिड एकद्वया मुदाणि ॥६॥
किह लहान् हेसइ लहान् आर् । तुहालें अनुहों लियाय-बाहु ॥७॥
तं सुणि वि अईसरु कहइ सुचछु । फणि डेक्सइ संपुण्ण अचछु ॥८॥
मा संसउ किपि वि करहि मित । गङ्ग सरणु को वि कुल कमलमित ॥९॥
जिण-वयणु-सरणु जह धरहि चिति । सुहगइ पाविवि फेहडि भविति ॥१०॥

घर्ता

इय वयणु सुणि वि ते णिव वरिण, अहृद्य भयह वि जायउ ।
मिछ्छाइटिन्हु कह-जिण-वयणु, भावह सुह-नाय-बायउ ॥३-८॥

[३-९]

सीसमउ वि मंविह कारियउ । जल-नुग्गु वि पासहे सारियउ ॥१॥
जलवर-रउहणा वाहि रुहु । गच्छह तरथ वि बारह अबूहु ॥२॥
णउ खाणु ण एहाणु ण कुइ विणोउ । अहणिसु बद्व भणि राय सोउ ॥३॥
एउ विविसउ सि तहु थाण यस्स । बाणहं णव कलियहं देह तस्स ॥४॥
कोरटियाहं एकद्वय धुतु । पच्छिम रयणिहि किम भउ सच्चितु ॥५॥
तं सुणि वि भणह वाणह विवाय । महु केर परिच्छिय पियस राय ॥६॥
विणि विणि कलियह वि णवल्ल बेहि । महु पाण-विसउ पूरउ करेहि ॥७॥
इय वीयहं कोरटियहं उत्तु । हो वाणहं तुहु' करि एम जुहु ॥८॥

घर्ता

सुपहिल्लहं दिणि अगहुल्लियहं, णव कलियहं तुहु आणहि ।
सुवियद्वावो बंधे वि णरु, सुपहाहं रायहु उवषणहि ॥३-९॥

क्षित की कथा कहता है ॥२॥ इस जम्बूद्वीप के कुशजांगल देश के गजपुर (हस्तिनापुर) नगर में नीतियों से विभूषित राजा परीक्षित ने सुख-पूर्वक राज्य करते हुए एक अवधिज्ञानी मुनि से नम्रता पूर्वक पूछा—हे नाथ ! मेरा मरण कैसे होगा ? शुभ ध्यानपूर्वक या अशुभ ध्यानपूर्वक, वाहन सहित या वाहन रहित अवस्था में ॥३-५॥ राजा का प्रश्न सुनकर स्वच्छ हृदय मुनिराज कहते हैं—सर्व काटेगा, दस दिन का उपवास करते हुए रहो ॥६॥ हे मित्र ! कुछ भी संशय मत करो; हे कुल-कमल-दिवाकर ! कोई भी शरण नहीं है ॥७॥ यदि शरण है तो जिनवाणी, उसे चित्त में धारण करके शुभगति पाकर संसार को भेटो। संसार-भ्रमण को नाशो ॥८॥

घट्टा—ऐसे वचन सुनकर राजा को अतीब भय उत्पन्न हुआ। हीक ही है—मिथ्यादृष्टि को शुभगति देनेवाली जिनेत्र के वचन कैसे रुचिकर हो सकते हैं ॥३-८॥

[३-९]

[राजा परीक्षित का मरण तथा बणिक-कोतवाल-वार्तालाप-वर्णन]

राजा परीक्षित ने शीशम की लकड़ी से महल और उसके पास बल-याकार जल-दुर्ग (खाई) बनवाया ॥१॥ (उसमें) आयुध-स्वरूप परम्परा से भयंकर जलचर प्राणी रहते हैं। (जो) वहाँ जाता है वह प्रवेश नहीं कर पाता ॥२॥ राजा न स्नान करता है, ज भोजन करता है और न कोई बिनोद-मनोरंजन करता है। उसके मन में रात-दिन शोक बढ़ता है ॥३॥ उसकी (राजा की) नी कली (ढार) वाली देह जहाँ थी उस स्थान (में) एक बन-तापसों ने प्रवेश किया ॥४॥ कोरंट बन से आये एक (तापस) ने चिन्ता पूर्वक कहा / पूछा—रात्रि के पिछले पहर में क्या हुआ ? ॥५॥ उससे ऐसा सुनकर दूसरा बन-तापस भी कहता है कि मेरे लिए भी राजा परीक्षित प्रिय हैं ॥६॥ दिन-दिन में देह की नयी अथवा नवों कलियों में मेरे ग्राणों को प्रवेश कराओ और पूर्ण करो / प्राण युक्त करो ॥७॥ दूसरे कोतवाल ने इस प्रकार कहा—हे बन तापस ! आप ही इस तरह (कोई) युक्ति करो ॥८॥

घट्टा—(बन-तापस कहता है)—अन्य लोगों को लेकर राजा की नी द्वाररूप कलीवाली देह को बाँधकर सूर्योदय होने के पहले प्रभात बेला के समय उपवन में तुम लोग लाओ और खुले आकाश में दावाग्नि में जला दो / दाह-संस्कार कर दो ॥३-९॥

[३-१०]

ओ होउ अर-रयणिहि विग्रोउ । सुहि करहि कीलमाणेहि भोउ ॥१॥
 इय पडिवण्णाउं चालदहु एण । जे रविग्रह कोरंतिवह लेण ॥२॥
 कि बहुणा रायहु सुमण विण । भरि छललरि तउज णोए पडिण्ण ॥३॥
 रयणिहि सुहयह सप्पेण खबनु । मुउ तकालें सो सुविस-विहु ॥४॥
 हा हा पभणतज णरयपत्तु । जिणधम्में विण किह सुगद पत्तु ॥५॥
 इत्थंतरेण घणपति वाय । णिसुओ उरएं पाहकिल-घाय ॥६॥
 पुत्थहव सहह घलेविचल्लु । जा गच्छह घणणतरुच्छइल्लु ॥७॥
 उरएं सह मिल्लउ[तहु]किओसि । पुणु भासिउ कत्थहं जाहि भासि ॥८॥
 ते भासिउ पाहखि जिवण-हेउ । सहु पुत्थें सहु चलिलउ वि षेउ ॥९॥
 ते भासिउ पच्छाय दक्खखवेहि । बडु रुक्खु वि भण्को किवउ ताहि ॥१०॥
 पुणु पवणे पुणर वि सलिलएण । उङ्गुविड बहाविड ते णणेण ॥११॥
 ते पिकिल वि चित्ति चमकिकओसि । गीविते उरएं ढंकिओसि ॥१२॥
 विह लंघलेण सो भरण पत्तु । तहु बडणेएउ[खण]खणि वि खसु ॥१३॥

घस्ता

होमहु लगउ उरयाहं सहु, बहु ण होई सुंबरु ।
 एवहि पुंडरियउ फणि पवरु, विषवर रुवि गयउ घरु ॥३-१०॥

[३-११]

मुथ अट्टावह कुलयाह जाम । पुंडरिउ दि दिववर पास ताम ॥१॥
 वाणारसि णयरिहि पढङ्ग सत्थु । अहवेय एण जागेह अत्थु ॥२॥
 ता दिपवरेण णिथ कण्ण विण । भोयहं भुजह तहु सहु खण्ण ॥३॥
 एकहया तुंग-सधंगएण । णिसि समह वि सुहि सोबंतएण ॥४॥
 पुच्छउ कामिणि णिथ कुलु-पयासि । ते पभणिउं सप्पु वि सज्ज भासि ॥५॥

[३-१०]

[राजा परीक्षित मरण, ताहु तंस्कार एवं नागराज वर्णन]

चन्द्र स्वरूप राजा परीक्षित का वियोग न हो अतः सुल पूर्वक सर्व कीलित करो ॥१॥ इस प्रकार जो उम कोतवाल के द्वारा कहा गया इस बन-तापस के द्वारा स्वीकार किया गया ॥२॥ अधिक क्या कहें राजा श्रेष्ठ मणियों से खचित झालरों का त्याग करके तीचे पड़ गया / सोया ॥३॥ सोते हुए रात्रि में वह सर्व द्वारा खाया गया / डसा गया और विष से आविष्ट होकर तत्काल मर गया ॥४॥ हाय-हाय कहता / चिल्लाता हुआ नरक गया । ठीक ही है—जिनधर्म के बिना किसे सुगति प्राप्त हुई है ॥५॥ इसी बीच सर्व दंश से राजा परीक्षित का मरण सुनकर धनपति (राजा का कोष रक्षक) पुत्र-समूह के साथ उसे लेकर घर भला तथा वहाँ से वह उछलकर धनवन्तरि (वैद्य लाने) जाता है ॥६-७॥ उसने (वैद्य ने) कहा—राजा का सर्व भै मेल कराओ । धनपति ने वैद्य से कहा—कहो कहाँ जावें ? ॥८॥ वैद्य के कथनानुसार वह धनपति राजपुत्रों के साथ राजा के जीवन के हेतु परीक्षित को लेकर जला ॥९॥ पश्चात् ऊपर कहे हुए धनपति के द्वारा एक बट वृक्ष देखा गया और वह परीक्षित राजा (वहाँ) भस्म कर दिया गया ॥१०॥ पश्चात् (भस्म) उसके द्वारा क्षण भर में हवा के द्वारा उड़ा दी गयी और पानी के द्वारा बहा दी गयी ॥११॥ सर्व द्वारा दंशित गले से विचित्र चमक उसके द्वारा देखी गयी ॥१२॥ लंघन से ताङित होकर उसके मरण को प्राप्त होने पर वैनतेय-भृङ्क के द्वारा सर्व-बामी खोद डाली गयी ॥१३॥

धर्म—वह (परीक्षित-पुत्र जन्मेजय) सर्वों का हीम (पञ्ज) करने लगा । कवि कहता है कि वैर भला नहीं होता है । इसी प्रकार नागराज पुण्डरीक दिव्यवर नामक व्यक्ति के घर गया ॥३-१०॥

[३-११]

[पुण्डरीक का स्त्री से गुप्त भेद कथन तथा उससे उत्पन्न स्थिति का वर्णन]

दिव्यवर के कुल में उत्पन्न जब अठारह (पुत्र) मर गये तब पुण्डरीक ही (शेष) पास में रहा ॥१॥ वह बनारस नगर में शास्त्रों का अभ्यास करता है । इसके द्वारा बहुत शीघ्र अर्थे जान लिये जाते हैं ॥२॥ उस दिव्यवर के द्वारा उसे अपनी कम्या दी गयी और सभी को सुन्दर भोजन कराया गया ॥३॥ सुखपूर्वक सोते हुए रात में अकेले मैं इस ऊंचेत्तगड़े (पुण्डरीक) से उसकी स्त्री ने अपना प्रकट करने को कहा और वह भी सर्व है—सत्य

णिय रुब वक्षालहि णाह मज्जु । णउ सहिसवकहु तें भणिडगुज्जु ॥६॥
 तिय असगाहें सो सप्तु जाउ । सो पिकिख वि तें पुक्करिउ णाउ ॥७॥
 महु णाहु उरउ हहु दियहु रुवि । सु विवाहिय पिउणा खिविय कूवि ॥८॥
 हय वत्त सथल पुर-मज्ज जाय । विणए आहूयउ गरडु जाय ॥९॥
 आएसिउ जहि पुंडरिउ णाउ । तहु चंचु विपारि वि असहिकाउ ॥१०॥
 वहु देस भयि वि वाणसि वि आउ । कूवय-उवरें चड वच्छ थाउ ॥११॥
 ता पणिहारिहि हय कहिय वाणि । दियवर-सुय-पिउ-उरओ वि जाणि ॥१२॥
 सा असडे जाणिउ सयलु अरयु । काँग भक्षणत्थु सो गपउ तेत्थु ॥१३॥

धत्ता

सो चंच (चु) पुङहि संगहिउ, अयक्कयेतु वरायउ ।
 णहि गञ्छत्ते ललियक्खरिण, तहु योलियउ विणायउ ॥३-११॥

[३-१२]

तक्षय अउ इहि तक्षय-सिलाहि । चंचु-संघविखवि भक्षहि ताहि ॥१॥
 हय वयणे पेरिउ सो वि गरडु । ले गइउ वि सो लहिं तवल-सिडु ॥२॥
 उवयारिउ जामहि भणिय वाय । जे वणियहि गुज्जु वि पंखिराय ॥३॥
 भासहि तहु जीविउ तयणु जाय । णउ हहु असच्चु कुलमयणभाय ॥४॥
 उवतं च ॥ नोयमान सुपण्णेन नागो पुण्डरीको(३)व्रवीत् ।

यो स्त्रीणा गुह्यमाल्याति तदंतं तस्य जीवितं ॥ १ ॥

तं णिसुणि वि अंपिउ वहणएय । एयहु विसलोयहु भणहि भेय ॥५॥
 तें तच्च रुउ भासिउ समग्गु । अरथहु तहु केरउ मणु वि लग्गु ॥६॥
 पुणु पभणिउ तें ललियक्खरेण । अवखर एयहु दायाक जेण ॥७॥
 ण वि मणिहु गुरु सो साणु जोणि । सयवारउवडजहु दुक्खलोणि ॥८॥
 पुणु मायंगु वि कुलि उपजजहु । सीय-उएह वहु दुक्खहि खिजजहु ॥९॥
 उवतं च ॥ एकाक्षर प्रवातारं यो गुरुं नैव मन्यते ।

स्वानजोनि सतं गत्वा चांडालेष्वपि जायसे ॥ १ ॥

कह देता है ॥६५॥ हे नाग ! मुझे अपना रुद्र विकाहए—(लती के कहने पर वह कहता है) तुम सहन नहीं कर सकती और उसके द्वारा रहस्य कह दिया जाता है ॥६६॥ पत्नी के विशेष आश्रह से वह सर्व हो गया । उस पत्नी के द्वारा वह देखा जाकर नाग-नाग चिल्लाया गया / पुकारा गया ॥६७॥ मेरा स्वामी नाग है । इसने यह रूप बनाया है । पिता के द्वारा विवाह किया जाकर कुये में फेंकी गयी हूँ ॥६८॥ यह वार्ता सम्पूर्ण नगर में गयी । विनयपूर्वक बुलाया गया गरुड़ आकर वहाँ आया जहाँ पुण्डरीक नाग था । वह चौंच खोलकर किसी को खाते हुए बहुत देश घूमकर बनारस आया और कुये के ऊपर बृक्ष पर स्थित हुआ ॥६९-७०॥ वहाँ पनहारिन के द्वारा इस प्रकार कही गयी वाणी से दियवर की पुन्ही का श्रीतम नाग जानकर उससे गरुड़ ने सम्पूर्ण अर्थ / रहस्य समझ लिया और वह नाग का भक्षण करने को बहाँ गया ॥७१-७२॥

घटा—बेचारे को काँपते हुए पाकर (गरुड़ ने) चौंच के आघात से पकड़ लिया । आकाश में जाते हुए ललित अक्षरों से नाग ने उससे बोला / कहा ॥७३-७४॥

[३-१२]

[पुण्डरीक-नाग-मुक्ति-वर्णन]

हे गरुड़ ! अटवी में तक्षक शिला पर फैक कर और चौंच से आहत करके खाओ ॥१॥ इस कथन से प्रेरित होकर वह गरुड़ भी उसे वहाँ तक्षशिला पर ले गया ॥२॥ उपकारी ने पक्षिराज से बन में जाकर जब गुप्त बचन कहे ॥३॥ वह कहता है—हे कुल रूपी आकाश के भाई ! जानेवाला वह उत्पन्न होकर जीवे ॥४॥ कहा भी है—गरुड़ पक्षी के द्वारा ले जाये गये पुण्डरीक नाग ने कहा—जो स्त्रियों को गुप्त भेद कह देता है उसके जीवन का अन्त है ॥५॥ नाग से ऐसा सुनकर गरुड़ के द्वारा कहा गया—हे विष-भोज्य ! इसका रहस्य प्रकट करो / कहो ॥६॥ उसके द्वारा वयार्थ रूप से उदास मन से उसका समस्त अर्थ कह दिया गया ॥७॥ इसके पश्चात् उसके (नाग) द्वारा सुन्दर-मीठी वाणी से कहा गया कि जिसके द्वारा एक अक्षर देनेवाला भी गुरु नहीं माना जाता है वह दुःखपूर्ण पृथिवी पर इवान योनि में सी बार उत्पन्न होता है ॥८-९॥ इसके पश्चात् वह मातंग के कुल में उत्पन्न होता है और शीत तथा ताप के विविध दुःखों से खीजता है / दुखी होता है ॥१०॥ कहा भी है—एक अक्षर सिखाने वाले को जो गुरु नहीं मानता है वह संकड़ों बार इवान योनि में जाकर

एकाक्षरं स्वभावेन गुरु शिष्यं निवेदयेत् ।

पृथिव्यां नास्ति तद्रथ्ये यद्दत्तान्विरणी भवेत् ॥ २ ॥

बहुशेषे णिसुणिय एह बत्त । अहएण वि जायउ हरिसचित् ॥१०॥
एं भासिउ एयह अखर वि देह । सो इच्छु वि मण्यह गुरु हवेह ॥११॥
बत्तोसक्खर सिक्खिय मणिदृ । इहु जायउ मज्जु वि परम इहु ॥१२॥
पद्मदिवि वि विसज्जित जाहि करथ । तुहु मज्जु गुरु वि संजाउ इत्थ ॥१३॥
गुरु-मारणेण महपाउ होउ । पावेण वि णरए वसइ सोह ॥१४॥

घल्ला

दाणेण वि एयस लोय बहु, तहु जीवित उब्दरि यउ ।

गउ बायासें सद्वण गुरु, णउ वृवि घरणिहि तुरियउ ॥ ३-१२ ॥

[३-१३]

हो लोयहु थी भेड ण विज्ञह । थी भेए दुहरासिहि खिज्जह ॥१॥
चारुयतु बहु आवय पतउ । घणु लाइ वि परदेस वि पतउ ॥२॥
जसहरु गल कंदलहि वियारित । पुणु विस-लहुप वेकिणु मारित ॥३॥
गोबड्हियह ओरहु आलिगणु । दिणउ अहरललउ खंडित पुणु ॥४॥
रत्तावेकिए पंगुल णिमितु । पित तं ति वेहि सरिदहि णिहितु ॥५॥
जोहय-कारण राणी सुरेण । पित मारिवि अगिगहि स्वरिय देह ॥६॥
अबराह चरित्तहं को गणई । सो मूढउ जो कलणा कुणई ॥७॥
बीखहय पमुह अवराह-जाय । ते इह को भणइ हो वि राय ॥८॥

घल्ला

इय जाणिवि, मण माणे वि, संसाउ पणहि ण किज्जह ।

हो सेणिय, अरिचिङ्गसेणिय, णचरणीयहि पत्तिज्जह ॥ ३-१३ ॥

चाष्डालों में भी उत्पन्न होता है ॥१॥ एक अक्षर के सिखाने और सीखने से स्वभाव से वे गुरु-शिष्य कहे जाते हैं। पृथिवी पर ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जिसे देकर (गुरु के ऋण से शिष्य) ऋण रहित हो जावे ॥२॥ यह वृत्तान्त सुनकर गरुड़ के मन में हर्ष उत्पन्न हुआ ॥३॥ उसने कहा—(जो) एक अक्षर भी देता है / सिखाता है वह स्त्रियों और मनुष्यों का गुरु हो जाता है ॥४॥ इसने मनोज्ञ बत्तीस अक्षर सिखाये हैं अतः यह मेरा परम इष्ट / हितैषी हो गया है ॥५॥ इस प्रकार तुम मेरे गुरु हो गये हो, जाको ! कहकर (और) पैर पकड़कर/नमन करके छोड़ दिया ॥६॥ गुरु के मारने से महापाप होता है (जो ऐसा करता है) वह इस पाप से नरक में रहता है / उत्पन्न होता है ॥७॥

घटा—शाम के द्वारा (८३) लैकर मैं कैठ हुआ, (आग-संकट से) उबर गया । उसे जीवन मिला/जिया । श्रमण-गरुड़ आकाश में और गुरु नाग भी शीघ्र पृथिवी में चला गया ॥३-१२॥

[३-१३]

[स्त्री-प्रतीति-फल सूचक वृष्टान्त]

हे पुरुष ! स्त्री (पत्नी) को भेद नहीं दें । भेद देने से दुःख की खान स्त्री खिजाती है / दुखी करती है ॥१॥ चारूदत्त को आपत्ति प्राप्त हुई । धन का क्षय हो जाने पर (उसे) परदेश मिला ॥२॥ यशोधर के कपोल और कण्ठ विदीर्ण करने के पश्चात् विष के लड्डू देकर मार डाला गया ॥३॥ गोपवती ने चोर को आलिङ्गन करने दिया, होठ खाने दिये पश्चात् उसे मार डाला ॥४॥ रक्तादेवी ने पंगूल के लिए पति को ताँत की रस्सी से लपेटकर और जलाकर सरोवर में फेंका ॥५॥ योगी के निमित्त से देवांगना ने पति को मारकर उसकी देह अस्ति में फेंकी ॥६॥ अपराधी के चरित्र को कौन गिनता है ? वह मूर्ख है जो कलकल ध्वनि करने वाली नदी को लाँघता है ॥७॥ हे राजन् ! अपराधिनी स्त्रियों में प्रमुख हुई वीरवती (नारियों) को तुम्हें कौन कहता है ॥८॥

घटा—शत्रु रूपी पक्षियों के लिए बाज पक्षी स्वरूप हे श्रेणिक ! इस प्रकार जानकर मन से मानें । मन में संशय नहीं करें । स्त्रियों पर प्रतीति नहीं करें ॥३-१३॥

इय महाराय सिरि अमरसेणचरिते ।
 चउ-वग्ग-सुकह-कहामयरसेण-संभरिते ।
 सिरि पंडिय मणिकक्ष विरह्न्दे ।
 साधु श्री महणासुय चउधरी देवराज णामकिए ।
 सिरि अमरसेण रजलंभ ।
 सिरि वङ्गरसेण माभहि ब्रेस……
 वराणण णाम तिज्जं कुर्मं परिच्छेयं सम्मतं ॥ संघि ॥ ३ ॥
 वाणी यस्य परोपकारपरमाचिताशुतर्यं सदा,
 काया सब्बंविविद्धिपूजनिरता कीर्तिर्गदापिनी ।
 वित्तं यस्य विभाति नित्यं सततं सस्पात्रदानोद्यमे,
 सो नंद्याववनोतले गुणविधिः श्री देवराजाभिधः ॥
 ॥ आसीनविधः ॥ १ ॥



हिन्दी-अनुवाद

श्री पंडित माणिक्य द्वारा साहु श्री महणा के पुनर्चौधरी देवराज के लिए रचा गया यह महाराजश्री अमरसेन का चरित चारों वर्ग की सुन्दर कथा रूपी अमृत रस से पूर्ण है। इसमें अमरसेन को राज्य की प्राप्ति तथा कङ्कालसेन के द्रव्य का मायधी वेश्या द्वारा विभाजन का वर्णन करनेवाला यह तीसरा परिच्छेद / संधि पूर्ण हुआ। कवि का आशोर्वाद है कि—

जिसकी वाणी परोपकार करने में श्रेष्ठ है, जिसे सर्वदा श्रुत की चिन्ता रहती है, जिसका शरीर बूद्धजनों की सेवा में निरत है, जिसकी कीर्ति तीनों लोकों में व्याप्त है, जिसका धन निरन्तर नित्य सत्यात्र के दान रूपी उद्यम से सुखोभित होता है, वह देवराज नाम का गृण निधि पृथिवीतल पर आनन्दित रहे।



चतुर्थ परिच्छेद

[४-१]

श्रुत्वक

जब गद्य विज्ज अंबहं सणिय,
णरवह-सुउ मणि जूरिक ।
मुइणाण-बलेण वि तेण तहं
कहमधि अप्पउ घोरऊ ॥ ७ ॥

अउ चिति वि पिध-नुउ गिध अणिय । इव विज्जहु उवजमु गद्य लगेन ॥१॥
विणु उज्जम विणु णउ कउज-सिद्धि । विणु उज्जमाह णउ होइ रिद्धि ॥२॥
तहं णयर-भज्जि णिध-सुउ भमेहं । किय कम्महं पेरिउ कित्यु णउ रहेह ॥३॥
गउ संहाकाले णयर-वाहि । वेवालह-मुण्णह-उववणाह ॥४॥
बहुसेणि बहुहु-उ मज्जि जाम । अण्णेकु कहं तव होइ ताम ॥५॥
णिय वेस-भाय वसु-रिद्धि चत्तु । णवयार-गुणह जिण-पाय-भत्तु ॥६॥
तं समयं तवकर अद्व-रत्ति । चत्तारि समयहं पाव मुत्ति ॥७॥
विज्जाहुहत्य विज्जासमेड । घहदार-वह वि जोइयउ जड ॥८॥
जोई मुसेवि परथणहं लुद्ध । वलु मयला-भक्षण वाह विरुद्ध ॥९॥
देवगिहि जहुस्थित कुमह पत्त । परसप्पर कंदह-करहि तत्त ॥१०॥
तिणि समयहं तवकर सेण करि । तहियाणिड तवकर एहु तुरि ॥११॥
कुमरे तहं तवकर रथणि पिटु । कि कज्जे लयडहु भणहु इटु ॥१२॥
तो रथणीहरहि-हकारि लिउ । बहसारिउ णिय पालेहि तुरिउ ॥१३॥
घुज्जोहु कुमह कि कउज इस । परसप्पर-कवह करहु भत्त ॥१४॥
तं कारणु साहु भहु णिरत्तु । हउ लयडहु फेलउ तुमतु मंतु ॥१५॥

घत्ता

तं सुणि सुह-वयणहं, मणि घरि रथणहं,
साहहि तवकर सुणहि तुहं ।
हम्मह तह वत्थहं, वहु गुण-भुत्तहं,
कंथा-पावलि लउडि इहु ॥ ४-१ ॥

[४-१]

[वइरसेन की तस्करों से भेट एवं पारस्परिक बार्तालाप]

ध्रुवक

आम्रवृक्ष से सम्बन्ध रखनेवाली जब विद्या चली गयी (तब) राजपुत्र वइरसेन मन में खेद-स्थिति होता है। तब श्रुतज्ञान के बल से उसके द्वारा जिस-किसी प्रकार थोड़ा धैर्य धारण किया गया ॥३॥

राजपुत्र अपने मन से इस प्रकार चित्तन करता है कि इस समय वह तत्काल उद्यम करे ॥१॥ बिना उद्यम के कार्य की सिद्धि नहीं । उद्यम किए बिना अट्ठिदि नहीं होती ॥२॥ राजपुत्र नगर में वूमता है । कहीं भी रहो अंजित कर्म दुःख देते ही हैं ॥३॥ संध्याकेला में वह नगर के बाहर उपवन के एक निर्जन देवालय में गया ॥४॥ उसमें जहाँ वइरसेन बैठा, वहाँ कोई एक दूसरा भी होता है ॥५॥ वह जिनेन्द्र के चरणों का उपासक अपने देश, भाई और आठों ऋषियों का त्याग करके (वहाँ) नवकार मन्त्र जपता है ॥६॥ उसी समय अर्द्धरात्रि में पाप की मूति (वहाँ) चार चौर आते हैं ॥७॥ (उन्हें) घर-द्वार छोड़कर जयी योग में रत लीन विद्याओं सहित योगी विद्याधर की—पराये धन के लोभी, मलिन बस्तु के खानेवाले अति विरुद्ध वे पल भर में योगी को लूट करके देवालय में जहाँ कुमार बैठा था वहाँ आकर परस्पर में झगड़ते हैं ॥८-१०॥ उसी समय संकेत करके यह चौरों को शीघ्र वहाँ ले गया (जहाँ वह था) ॥११॥ वहाँ रात्रि में कुमार के द्वारा चौरों से पूछा गया कि तुम क्यों झगड़ते हो, इष्ट बात कहो ॥१२॥ तब कुमार ने पहरेदार को बुला लिया और शीघ्र अपने पास बैठा लिया ॥१३॥ कुमार पूछता है—हे भाई ! परस्पर में यहाँ किस कारण से झगड़ते हो ॥१४॥ वह कारण एवं रहस्य मुझे बताओ, मैं निश्चय से तुम्हारा ज्ञान डाला मिटाता हूँ ॥१५॥

धत्ता—रात्रि में कुमार के सुखकर बचन सुनकर और मन में धारण करके चौर कहता है—आप सुनें । बहुत गुणों से युक्त कथड़ी, पावड़ी, और लाठी ये हमारी तीन बस्तुएँ हैं ॥४-१॥

[४-२]

ए तिणि-बत्थ-भवाहं जोइ । हथहं चयारि णउ वंदु होइ ॥१॥
 तं कज्जें क्षयडहि इत्थ जोइ । णउ अपडउ केडहि अम्ह कोइ ॥२॥
 जह जाणहि शयडउ-हरि सुकत । अम्होपरि दयकरि भव्य मित ॥३॥
 ते वयणे सो दि कुमार वुत्तु । इणि तिणि-बत्थ-गुणु कहुहु जुत्तु ॥४॥
 जें कज्जें लगहु वार-वार । तो भणीहि सुणइ णिव वण-भयार ॥५॥
 तह जोई एकु भसाणभूमि । विज्ञा साहंतज णिजण-वणमि ॥६॥
 रस-मासह साहिय णिरच जोइ । वहुकालै सिंजिमध दिवज सोइ ॥७॥
 संतुट्टी विज्ञा जोइ एहि । विय कंथा-जटिय-पावलीहि ॥८॥
 गय तिणि वस्थ गुण साहि विज्ञु । जोई सह अम्हहं सुणिउ-चुञ्जु ॥९॥
 रस-मास रहिय हमि रण ईहि । संहारित जोई हमि हि तहि ॥१०॥
 ए बत्थ तिणि हमि ले दि आय । जें जाणहि इव करि अम्ह भाय ॥११॥
 तो वयणु सुणेपिणु वहरसेणि । महु अक्खहु पिहउदि कुच्छुखोणि ॥१२॥
 तो गरुव-चोर अक्खेहु सुणु । इह कंथा झाडह रयण-मणु ॥१३॥
 त रघुनेय दिणि-दिणि पडंत । वहु रोड-विहंडण सुहइ-विस ॥१४॥
 जटिय सिर-सत्तुहु फिरह उवरि । विज्ञुज्जल जलहर-तेय तुरि ॥१५॥
 सिर-कमलहं संड-सेणु बलए । पुणु आह दि सामि हि कर-बडए ॥१६॥
 पावडिय पाय आहहु जं जि । र्ण इच्छा-पुरहु खणि हि तं जि ॥१७॥
 सा लेहि खणहों गयणमाहे । राहुं गयणु फिरह णिय मरकताहं ॥१८॥
 पुणु आवह वेघं सुकिय थणि । आयासगामि पावलिय जाणि ॥१९॥

घटा

तं वित्तंसु सुणेविणु, हियहं घरेपिणु,
 रहिउ अच्छुज्जहु कुमरु तहि ।
 तइ वस्थहं एयह, विहि संजोयहं,
 चडहि हस्थमहु एवहि ॥ ४-२ ॥

॥ उक्तं च ॥ वानेतपसीदीजंवं, विकान-विनाए न च ।
 विस्मयो नहि कर्त्तव्यं, वहु रत्नानिकासुन्धरा ॥ १ ॥

[४-२]

[बहरसेन को ओरों से तीनों की वस्तुओं एवं उनके माहात्म्य की प्राप्ति]

मध्य जनों के योग्य ये वस्तुएँ तीन हैं और हम लोग चार हैं अतः बटवारा नहीं होता है ॥१॥ हे योगी ! इसी कारण से (हम) ज्ञागढ़ते हैं । कोई हमारा ज्ञागड़ा नहीं मिटाता है ॥२॥ हे सुमुख, मध्य मित्र ! यदि जानकार हो तो हमारे ऊपर दया करके ज्ञागड़ा मिटाओ ॥३॥ उसके ढारा कहे गये बचन सुनकर कुमार (बहरसेन) ने कहा—इन तीनों वस्तुओं के एक साथ गुण कहो ॥४॥ जिस प्रयोजन से बार-बार लगे हो है राजन् ! वन में भय से दुखी होकर कहता हूँ सुनो—॥५॥ वहाँ निर्जन वन की श्वेषान भूमि में एक योगी विद्या की साधना करता है ॥६॥ उस योगी ने छह मास पर्यन्त निरन्तर साधना की जिससे बहुत काल में सिद्ध होने वाली विद्या उसे सिद्ध हुई ॥७॥ विद्या ने संतुष्ट होकर इस योगी को कथरी, लाठी और पावली दी ॥८॥ विद्या तीनों वस्तुओं के गुण कहकर चली गयी । योगी के साथ हमने (भी) आश्चर्य (सहित) सुना ॥९॥ इस वन में छह मास पर्यन्त रहकर हम ही ने वहाँ योगी का घात किया ॥१०॥ ये तीनों वस्तुएँ हम ले आये । हे मेरे भाई ! अब जो जानो करो ॥११॥ उनके बचन सुनकर बहरसेन ने कहा—हे शुद्ध हृदय ! मुझे जो प्रिय है (वस्तुओं का गुण) (वह) कहो ॥१२॥ तब प्रधान चौर कहता है सुनो—इस कथरी से रत्नमणि छलते हैं ॥१३॥ सूर्य के समान दीप्तिमान् दरिद्रता के विनाशक सुख देनेवाले (वे रत्न) प्रतिदिन छलते हैं ॥१४॥ लाठी बादलों में बिजली के समान शीघ्रता से घूमती है ॥१५॥ वह सैन्यदल के सिर रुपी कमलों को खंड करके शीघ्र अपने स्वामी की हथेली पर पुनः आ जाती है ॥१६॥ जो पावड़ी पैरों से पहिनता है वह उसकी क्षण भर में इच्छा पूर्ति करती है ॥१७॥ वह क्षण भर में आकाश के मध्य में ले जाकर मर्कट के समान आकाश में घूमती है ॥१८॥ पश्चात वह वेग पूर्वक अपने स्थान पर आ जाती है । पावली को आकाशगामिनी जानो ॥१९॥

धत्ता—उससे समस्त वृत्तान्त सुनकर और हृदय में धारण करके कुमार वहाँ चुप रहा । इस प्रकार उसे तीनों वस्तुएँ विधिपूर्वक संयोग से हाथ लग जाती हैं ॥४-२॥

कहा भी है—दान, तप, वीर्य, विज्ञान और किन्य में विस्मय नहीं करना चाहिए । पृथिवी बहु रत्नों को धारण करनेवाली है ॥१॥

[४-३]

तं णिसुणेप्यिणु कुमर-वुत्तु । इव अपरद फेडमि तुम-तुरंतु ॥१॥
 हउ बंटि वेमि तुमि चहुमि बत्थ । जं सुहु संपज्जइ सब्ब इत्थ ॥२॥
 तहं भण्ण उद्देयंकर हि भव्व । णिय घरहि पयद्गहि सुहहि भव्व ॥३॥
 तो वयणु सुणेप्यिणु रायपुत्तु । णिय कला-विणाणहि मह सजुत्तु ॥४॥
 अप्पहु महु तिण्णि नि वस्थ सत्ति । देसउ मण-इच्छय तुम्ह थत्ति ॥५॥
 तो दिण्ण लेवि किय अप्प त्रूथ । पावलिय चित्त णिय चरण सुस्थ ॥६॥
 जंठिय कर गिण्णह्य तत्थ थुत्तु । कंथा उरि पहरिय रयण-दित्त ॥७॥
 गउ लहु आयासह रहस-जुत्तु । गिरि-सायर-णह-पुर लंघि तत्तु ॥८॥
 वेएं कंचणपुर-मज्जि पत्तु । बीराज-ओह धुत्ताण-धुत्तु ॥९॥
 सुह-कम्महं संपह लङ्ठ तत्तु । जं पुञ्च मुण्ड वाणेण-पत्तु ॥१०॥
 तहं चोर विलक्षणं भयहं ताम । सिर-धुणहि णियंकर-मलहि जाम ॥११॥
 बहुजाह जाह णह चोर-भोसु । हम ठगिय महाठग करि विओसु ॥१२॥
 हा-हा हमि कि किउ तुज्म वईय । मण-इच्छ वत्थ दइच्छणि लईय ॥१३॥
 खण मासह सेय उपेय वणु । तिस-भुषण-नुक्स वहु सहिय पुणु ॥१४॥
 मारित जई लिय विज्ज-तिण्णि । छलुकरि वि अबह लह गयउचिण्णि ॥१५॥
 कि करहि इवहि कहु कहहि वास । णं जाणहि कहि गउ धुत्तु-भत्त ॥१६॥
 घउ चिति वि णिय-णिय घरह पत्त । इरथंतरि कुमरह रहस चित्त ॥१७॥
 तहं कंथा काडह वर धवित । सपसत्त-रयण महि पडिय तत्त ॥१८॥
 ते लेप्यिणु कूरह दूत-कीड । हंडह सह-णयरह गुण-गहीड ॥१९॥
 सुचक्षइ विविह विलासहं माणहं । पुरयण-रंजाह वहुविह वाणहं ॥२०॥

घस्ता

कंवप्पहं रुवहं, अणिगण विभूयहं,
 पडमिण-उर महुयर सरिसु ।
 अवरहि विण वेसहि, विद्गु कुमर तहि,
 मगणयण तहु भणहि जसु ॥४-३॥

[४-३]

[चोरों का पश्चातात्प, बहरसेन को वस्तुओं की प्राप्ति एवं
कंचनपुर-आगमन]

ऐसा सुनकर कुमार बहरसेन ने कहा—तुम्हारा श्रगड़ा अभी तुरन्त मिटाता हूँ ॥१॥ मैं—यहाँ सबको सुखकारी वस्तुएँ तुम चारों को बाँट देता हूँ ॥२॥ (वे चोर) उसे भव्य और उपकारी मानकर सुखपूर्वक पैदल ही अपने घर ले गये ॥३॥ कला और विज्ञानमति से युक्त राजपुत्र ने चोरों का कथन सुनने के पश्चात् कहा—तुम अपने स्थान-घर पर मनोरथ की पूर्ति करने में समर्थ तीनों वस्तुएँ शीघ्र मुझे दो ॥४-५॥ उन्होंने वस्तुएँ दीं। बहरसेन ने वस्तुएँ अपने हाथ में लेकर पावली स्वस्थ चित्त से चरणों में पहनी ॥६॥ लाठी हाथ में लेकर और रत्न देनेवाली कथरी हृदय पर पहिनकर वह धूर्त हृष्ट युक्त होकर शीघ्र आकाश (मार्ग) में गया और पर्वत, समुद्र, नदी तथा नगर लौधकर दीरों में प्रधान वीर और धूतों में प्रधान धूर्त वह शीघ्र कंचनपुर पहुँचा ॥७॥ धूर्त में सुपात्र को दिये गये दान रूपी शुभ कर्म से उसे सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥८॥ प्रधान चोर तब वहाँ दुःखी होता है, सिर क्रूटता है और हाथ मलता रह जाता है ॥९॥ (वह कहता है)—यह मायावी चोरों को मूसकर (उन्हें) आकाश से जा रहा है। हम यदि या हैं तो वह महाया है ॥१०॥ (वे चोर पश्चातात्प करते हुए कहते हैं) हाथ ! हाय ! हे विद्याता ! तूने हम पर यह क्या किया ? मन-इच्छित फल देनेवाली वस्तुएँ देकर क्षण भर में ले लीं ॥११॥ छह मास पर्यन्त भूख-प्यास आदि के अनेक दुःख सह-कर और बन में रहकर योगी का वध करके तीन विद्याएँ प्राप्त की थीं, जिन्हें छल करके दूसरा क्षण भर में ले गया ॥१२-१३॥ अब क्या कहूँ, किससे यह वार्ता कहूँ ? वह धूर्त कहाँ गया ? हे भाई ! नहीं जानता हूँ ॥१४॥ ऐसा विचार करके वे अपने-अपने घर गये। इसके पश्चात् कुमार हृषित चित्त से पवित्र कथरी को झाड़ता है, सात सौ रत्न पृथिवी पर गिरते हैं। उन्हें लेकर गुणों से गम्भीर यह दुष्ट कुमार नगर-वासियों के साथ धूमता है और जुआ खेलता है ॥१५॥ अपनी इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार के भोग भोगता है, अनेक प्रकार के दान देकर नगर-वासियों का मनो-रंजन करता है ॥१६॥

घटा—कामदेव के समान रूपवान्, अगणित वैभवधारी, स्त्रियों के हृदय में अमर के समान कुमार दूसरे दिन वेश्या को दिखाई दिया। याचक उसका यशनान करते हैं ॥४-६॥

[४-४]

गय विद्व-वेस अहसेण-खाणि । सा भणइ णिसुणि भो अमिषबाणि ॥१॥
 महु पुति मागही तुव-चिकोय । पहिरे सेयंवर तुव चिसोय ॥२॥
 णिय-केणी-वंड मुक्क-केस । णउ एह-असइ पिय-रहिय वेस ॥३॥
 णउ जंपइ णथणह जुबइ तत्थ । कूयउ विओज तव तणउ जत्थ ॥४॥
 खटबट्ट्य-पट्ट्य लेवि सुत । तव विरहि लत्तिय मज्जु पुत ॥५॥
 जं चलगु पाण ण जंति ज्ञति । उद्धरहि कुमर बलु वेड पति ॥६॥
 तो णिसुणि गयउ तह वहरसेणि । नहिं कुट्टणि-पुत्तिय पाव-खाणि ॥७॥
 सा कवले जंपइ कुमर सुणि । मह पाविणि चुरवउ कियउ जणि ॥८॥
 जं णिस्सारित तुह चंदमुहु । महु खमहि देव अवराहु तुहु ॥९॥
 जं कियउ कम्मु मह मुम्महीहि । ते मस्थइ पडियउ महु इहीहि ॥१०॥
 तं हह अवत्थ महु पुति आय । रोबंति रयणेदिण तुव पुहाय ॥११॥
 णउ तणु-सिशालह एय बाल । णउ वद्दइ वहणी लेवबाल ॥१२॥
 उकरं च ॥ कौलंभ कज्जलं काम, कर्ण-कुंडल-कार्मुका ।

गत्ता भर्तारि नारोणां, ककारा पंच कुर्मभाः ॥१॥

तं सुणि चि कुमर चितिउ मणेण । पुणु इव पाविणि महुच्छलह केण ॥१३॥
 बहु करह ढंभु भो डवह-लोहि । महु हियह इट्टुच्छङ्गि कयउ एहि ॥१४॥
 सहकार-फलह महु भेड लेह । णिस्सारित णिय गिहु कह गहेह ॥१५॥

घत्ता

तं फलु हव वावमि, विद्ववि गोयमि,
 णिय परिहउ सारेमि लहु ।
 किय वाव-उपायहं, बलच्छल भायहं,
 लेमि चूयफलु लियउ महु ॥४-४॥

[४-४]

[वहरसेन के वियोग में वेश्या-पुत्री की स्थिति, पश्चाताप, वहरसेन का वेश्या के घर पुनरागमन एवं अपने खोये आम्रफल की प्राप्ति का अन्त]

वह बुद्धा वेश्या वहरसेन जहाँ था उस स्थान गयी । वह अमृत तुल्य बचनों से कहती है—हे वहरसेन ! सुनो ॥१॥ मेरी मागधी पुत्री तुम्हारे वियोग के शोक से सफेद वस्त्र पहिनती है ॥२॥ अपनी चोटी एवं केदों को खोल रखा है, न नहाती है, न खाती है । प्रिय वेष-भूषा रहित है ॥३॥ जब से आपका विश्रोग हुआ है तब से यह बालती (भी) नहीं है (केवल) नेत्रों से निहारती है ॥४॥ हे मेरे पुत्र ! तुम्हारे विरह से चारपाई (खाट) की पाटी लेकर सोयी है ॥५॥ हे कुमार ! प्राण निकल कर जाने के पहले शीघ्र पहुँचकर उद्धार करो ॥६॥ ऐसा सुनकर वहरसेन वहाँ गया जहाँ पाप की खदान उस कुट्टिनी वेश्या की पुत्री (थी) ॥७॥ किवाड़ से वह वेश्या की पुत्री कहती है हे कुमार सुनो—मूँझे पापिनी ने (इस) तरह बुरा किया जो कि चन्द्र के समान मुखवाले तुझे निकाला । हे देव ! आप मेरा अपराध क्षमा करो ॥८-९॥ मुझ दुर्मति के द्वारा जो कर्म किये गये वे यहीं मेरे माथे पढ़े ॥१०॥ तुम्हें दुखाकर मेरी पुत्री इस स्थिति में आ गयी है कि वह रात-दिन रोती है ॥११॥ यह बालिका शरीर का शूङ्गार नहीं करती, न लम्बे बालों की चोटी बौधती है ॥१२॥ कहा भी है—कौसंभ-रेशमी वस्त्र, काजल, काम (रति क्रिया), कर्ण-कुण्डल और कार्मुक-कार्य करने के योग्य—ये पाँच ककार पति-विहीन स्त्रियों के दुर्लभ होते हैं ॥१॥

ऐसा सुनकर कुमार ने मन से विचारा कि यह पापिनी मुझे अब पुनः कैसे छलती है/छल सकती है ॥१३॥ ढब-ढबाये नेत्रों से यह बहुत दम्भ करती है । इसी के द्वारा मेरी हृदय प्रिय वस्तु छली गयी है ॥१४॥ इसी ने आम्र-फल का भेद लेकर मुझे हाथ पकड़कर अपने घर से निकाला है ॥१५॥

घटा—अब उसे इसका फल चलता हूँ । बाक् संधम से आविष्ट करके सभी का प्रतिकार लेता हूँ । यत्त और उपाय करके छल बल पूर्वक मेरे लिए हुए आम्रफल को इससे शीघ्र ले लेता हूँ ॥४-४॥

[४-५]

थिर होइ किति थिर-काम धुवे । थिर भञ्जु-जभञ्जु दि जीउ भवे ॥१॥
 थिरदाणु-सुपत्तहं भव्य-दिए । थिर सत्तुह-मिती भाव किए ॥२॥
 पुण् एवहि लंजिय लइउ भेउ । मंडे वि कबडु णिय-कज्ज-हेउ ॥३॥
 इउ चितिउ मारह-हरखचित्तु । सुहि अछ्छहि वेसर्हि वेहि धुतु ॥४॥
 कइहूब दिण बित्तहं लंजियाहि । अविसउ णिय पुत्तिहि समउ ताहि ॥५॥
 लक्ष्मु लुज्जहि पुत्तिय विडु विणाहु । कह तुव पहि संपइ णह-यवाहु ॥६॥
 कछिङ्गइ विड्यणु णिय घरेहि । लिङ्गइ तं संपइ करिच्छलेहि ॥७॥
 जहं देसहं णिय-तित्तिण पुज्जइ । जहं रोड्याहं णउ णिंदु उपज्जइ ॥८॥
 जहं हुयासु पुर-वण णउच्छंडइ । जहं पइव्य णिय सीलु ण खंडइ ॥९॥
 जहं सायर वहु णइहि ण तिप्पइ । जहं जहवह कम्मह गणु कप्पइ ॥१०॥
 जहं हरि जुइ-जिण-तित्तिण तिप्पइ । तह हमि पुसि विड-वण ण तिप्पइ ॥११॥
 ववसायहं विणु णउ होइ लक्ष्मि । यहु अणुदिणु विलसह वाण सुचिठ ॥१२॥
 तं पिसुणि वि कुंदलयाइ चुत्तु । सइ-खंड-जीह सुव होइ तत्तु ॥१३॥
 जं जंपहि एहउ वयणु चुट्ठि । पुणु लग्निय पाविणि एह पुट्ठि ॥१४॥
 पहं लियउ एह सहकार-फलु । तं सुज्जगामि णिहि वेह णिलु ॥१५॥
 इव दिणि-दिणि इह णर अम्ह घरि । अप्पइ वहु संपइ विविह परि ॥१६॥

घर्ता

इसु बुरउ ण किज्जाह, वहु सुहि दिज्जइ,
 इह सरि बोउ ण अत्थि णर ।
 यहु महु मण बललहु, पउमिण दुल्लहु,
 णउच्छंडउ खण इक्कु लहु ॥४-५॥

[४-५]

[वद्वरसेन के प्रति वेश्या का कुर्भाव एवं उसकी पुत्री कामकंबला
का सञ्चाव-वर्णन]

निश्चय से स्थिर-कीर्ति स्थिर-कार्यों से होती है । संसार में जीव भी स्थिर भव्य और अस्थिर भव्य कर्म से ही होता है ॥१॥ भव्य मुपाक्रों को देने से दात स्थिर होता है, शत्रु को भाई बनाने से मैत्री स्थिर होती है ॥२॥ इसी वेश्या ने भेद लिया है। अपने कार्य के लिए कपट रखता हूँ ॥३॥ ऐसा विचार करके हर्ष के मारे सहर्ष चित से वह धूर्त वद्वरसेन सुखपूर्वक वेश्या के घर रहता है ॥४॥ वेश्या के यहाँ कई दिन बीत जाने पर उस वेश्या ने अपनी पुत्री से कहा ॥५॥ हे पुत्री ! अपने जार स्वामी से शोषण पूछो—नदी के प्रवाह के समान सम्पत्ति तुम्हारे पास कहाँ से (आती है) ॥६॥ छल करके उसकी सम्पत्ति ले लें और व्यभिचारी को अपने घर से काढ दें/निकाल दें ॥७॥ जैसे राजा की देश-पिपासा शान्त नहीं होती, दरिद्रियों के निधियाँ उत्पन्न नहीं होतीं ॥८॥ अग्निनगर और बन को नहीं छोड़तो अर्थात् सभी को जला देती है, पतिक्रता जैसे अपने शील का स्थृतन नहीं करती ॥९॥ जैसे समुद्र बहुत नदियों से तृप्त नहीं होता, जैसे यतोश्वर कर्म-समूह को काटता है ॥१०॥ जैसे इन्द्र की जिनेन्द्र के दर्शन की प्यास तृप्त नहीं होती, वैसे ही हे पुत्री ! हमारो व्यभिचारी के धन से तृप्ति नहीं होती है ॥११॥ व्यापार के बिना लक्ष्मी नहीं होती । यह स्वेच्छानुसार प्रतिदिन दान देता है ॥१२॥ ऐसा सुनकर (वेश्या की पुत्री) कुन्दलता ने कहा—हे माता ! तब तो तेरी जीभ के सी दुकड़े हों जो तू हे दुष्ट ! ऐसे बचन कहती है । हे पापिनी ! फिर इसके पीछे लग गयी ॥१३-१४॥ पहले लिए हुए इस आम्रफल और इसकी आम्र-फल रूप सूर्यगमी निधि निश्चय से उसे दे दे ॥१५॥ यह मनुष्य प्रतिदिन हमारे घर विविध प्रकार की बहु सम्पदा अपित करता है ॥१६॥

धर्मा—इसका बुरा न कीजिए, इसे बहुत सुख दें । इसके समान दूसरा मनुष्य नहीं है । दिव्यों के लिए दुर्लभ यह मेरे मन को प्रिय है । इसे खाकर एक काण के लिए (भी) मत छोड़ो ॥ ४-५ ॥

[४-६]

जाहि दुदु महु गमाहूं लगाईं । एवल नज्जु तुब लोहणि-मत्पहं ॥१॥
 तं णिसुणि वि पुत्ति-दुहवयणहं । णउ लगाइ चिठ्ठह सुइयरणहं ॥२॥
 भय विलक्ष सिणहाणण-भेरी । चित्तह णिय मणम्मि विवरेरी ॥३॥
 णउ छलह महु किउ धुउ एवहिं । तं बलि भेउ भेउ इब कुमरहिं ॥४॥
 विद्धु-वेस अक्खेह कुमारहूं । जोणिय लवें जिण इब मारहूं ॥५॥
 णउ करेह बाबार-सहासहूं । विणि-विणि दीसह णिहि तुब पासहूं ॥६॥
 कहि-कहि माणि णिसर सञ्च भहूं । जं होइ सुख्खु महु हियह यहु ॥७॥
 उपतं च ॥ अवला सिद्धपत्नं च, कषणं फलिताद्युम ।

चत्तारि रक्खणीयानि- लक्ष्मीवृदं च पंचमी ॥१॥

सुणि चिद्धु-वेस धुउ भणउं तुज्जु । आयसणामि-पावलिय मज्जु ॥८॥
 तं तेय-पश्य तिणि लोय । ले आवउ संपह लहु भमेय ॥९॥
 जोवउ सुरणर-भुद्वासि-वेव । जीवाइ असंखहं चिक्किह भेय ॥१०॥
 णउ आवागमणु ण मुणह क्षोइ । विलसउ वहु संपह पुणण हेइ ॥११॥
 तं णिसुणि वि माया करह वेस । महु मणह-मणोहर हुब असेस ॥१२॥
 भो णिसुणि कुमर महु वय करेहि । मर्झ बोलि उवाई तुब गएहि ॥१३॥
 जह आवह महु घर कुमर जाति । लहु जाइ मज्जु चित्तेहि अति ॥१४॥
 कंदप्पदेव-आह सयहु तुहुं । लहु करउ जान कुमरेण सहुं ॥१५॥
 हुब पव्वउ पुज्जिउ मज्जु वेइ । तहं जाह ण सकक दुसज्जु सोइ ॥१६॥
 सायरहं मज्जि कवप्प-थाणु । किउ वंदउ सुर महु सुह-णिहाणु ॥१७॥
 तुब पाय-पसायहूं णमउ देउ । वय करि लहु चलहिं जाय हेज ॥१८॥
 तं णिसुणि वि चित्तिउ कुमर तर्हि । इब खिवउ समुद्दहं मज्जि इहि ॥१९॥
 लहु जाइ सल्लु महु हियह महि । णिपडिहउ फेडउ हियह-महि ॥२०॥
 जह सायर-मज्जहि मिच्छदेउ । णउ गमणु जिणागम-सुणिउ भेउ ॥२१॥
 णिय कज्ज अत्थ ले जाउ जहि । मुक्कडविर लुद्धणि मरह तहि ॥२२॥
 पावलिय पहायहे णह सुहेण । गउ चिठ्ठ दासि लहु सरगिहेण ॥२३॥

[४-६]

[वेश्या की बहसेन के साथ कपटपूर्ण कन्दवंश-यात्रा तथा
वेश्या का पावली लेकर नगर-आगमन वर्णन]

हे दुष्ट ! मेरे नेत्रों के आगे से चली जा । हे लोभिनी ! तेरे माथे पर
बज्ज-पात हो ॥१॥ पुत्री के (ऐसे) दुखपूर्ण वचन सुनकर वृद्धा वेश्या
को (वे) सुखकर नहीं लगे ॥२॥ बिलखती उस वेश्या स्त्री का मुख काला
पड़ गया । वह बेचारी अपने मन में विचारती है ॥३॥ पुत्री ने ऐसा किया
कि मेरी नहीं चलती है अतः अब उस कुमार को बलपूर्वक भेद डालकर
भेदती हूँ ॥४॥ सौन्दर्य से स्त्री कामदेव को भी जीत लेती है । वह वृद्ध
कुमार से कहती है ॥५॥ तुम हजारों का व्यापार नहीं करते फिर भी
प्रतिदिन तुम्हारे पास धन दिखाई देता है ॥६॥ स्मरण करके मुझ मानिनी
से सत्य कहो जिससे मेरे हृदय को बहु सुख होवे ॥७॥ कहा भी है—

अबला स्त्री, पका हुआ अनाज, कृषि योग्य खेत, फलित वृक्ष में चार
तथा पाँचवाँ लक्षमी-समूह रखा करने योग्य होते हैं ॥१॥

ऐसा सुनकर कुमार वृद्धा वेश्या से कहता है—निश्चय से मेरे पास
आकाशनामी पावली है ॥८॥ उनके प्रसूत तेज से क्षण भर में तीनों लोकों
का भ्रमण करके सम्पत्ति ले आता हूँ ॥९॥ देव, मनुष्य और पृथिवी पर
रहने वाले विविध प्रकार के असंख्य जीव दिखाई देते हैं ॥१०॥ (मेरे) आवा-
गमन को कोई नहीं जानता है । पुण्य की हेतु बहु सम्पत्ति का उपभोग करता
हूँ ॥११॥ उस कुमार से ऐसा सुनकर वेश्या छल करती है (वह कहती
है—कुमार !) मेरे मन के मनोरथ निःशेष हों ॥१२॥ हे कुमार सुनो—
मुझ पर दधा करो, तुम्हारे जाने पर मैंने मनीती की थी कि यदि कुमार
शीघ्र घर आ जाता है और मेरे चित्त की वेदना यदि शीघ्र दूर हो जाती
है तो तुम्हारे साथ मैं कंदपदिव की यात्रा शीघ्र करूँ ॥१३-१५॥ (मैं)
इसी पर्व पर पूजन करूँ किन्तु शीघ्र जाना शक्य नहीं वह दुर्भम है ॥१६॥
कामदेव का मन्दिर समुद्र के बीच में है । हे सुख निदान ! देव-वन्दना कैसे
करूँ ॥१७॥ तुम्हारे चरणों की कृपा से देव को नमस्कार करूँ, दधा
करके यात्रा हेतु वहाँ ले चलो ॥१८॥ ऐसा सुनकर कुमार ने वहाँ विचार
किया—इसे अभी समुद्र में फेंकता हूँ ॥१९॥ मेरे हृदय की शल्य शीघ्र
चली जाती है । मैं गिराकर हृदय की शल्य मिटाता हूँ ॥२०॥ यदि समुद्र
बीच मिथ्यात्मी देव है, तो गमनागमन नहीं है और जिनागम में कोई
देव भेद नहीं सुना है ॥२१॥ अपने कार्य के लिए यदि ले जाती है तो
लुटेरिन को वहीं छोड़ूँ, वहीं मरे ॥२२॥ पावली के प्रभाव से वृद्धा दासी

पावलिय-मुक्त द्वुरपं गणेण । गउ पिञ्चाणत्थ पत्रु तवज्ज्ञेण ॥२४॥

घन्ता

तहं विक्षेहं वेसहं, उद्दित कुमर तहं,
चक्रि पावलियहं णहु-णहि ।
गईय पुत्ति-आवासहि, सुख्ख-णिवासहि,
रहड णिर्मितिय दुट्ठ दुहि ॥४-६॥

[४-७]

तहि अवसरि कुमरहं मध्यणवेड । णउ पणमित्ते मिञ्चाइ कुगङ्ग-हेड ॥१॥
णिमगड गिह चज्जे कुमर जाम । णउ जुवड वेस-पावलिय ताम ॥२॥
चित्ताइ कुमार हुउच्छालिउ वेइ । धहु धेत्ता-धरित्ता धुगङ्ग कोइ ॥३॥
णउ याणह गुरु लहु मण्यु लोइ । बच्चस्स विआयरु करइ सोइ ॥४॥
वेसा णहु गिणह दब्ब-सहित । णिय पुत्ति-णाहु अबरु वि विहित ॥५॥
जो अस्थन्हीणु लहु सा चवेइ । णिस्सारह करु गहि णिय गिहेइ ॥६॥
लोहंध दब्ब अणण्णा लेइ । पहसारह अण्णाहं सण्ण वेइ ॥७॥
यउ जाणि वि वेस ण होंसि अण्णु । धज्जरह जईसरु रहि पद्धपु ॥८॥
जो अण्णाह ईहुइ पाव-भाऊ । बंधण-साङ्गण-मारणहं पाऊ ॥९॥
णउ जाइ अहणु जं कम्म किझ । तं मध्यद्व पड्ड अचित धुक्क ॥१०॥
यउ चिति वि कुमरे णिय गणेण । सुहि रहड सच्चितउ सुर-गिहेण ॥११॥
हस्थंतरि णहुण्णु एड आड । अवयण्णु सुर-गिह सुद्ध-भाऊ ॥१२॥
तहु वंदित खेयर मध्यणदेड । वसु दब्बहं अंचि वि करि वि थोड ॥१३॥
पुणु दिट्टज खयरे वहरसेणि । कहु होंतु समायड भणितं तेणि ॥१४॥
अच्छजु कंचणपुर गयणगामि । लंजियच्छलि लाइय इत्थु सामि ॥१५॥
कंदप्प-जाय-अत्थेण भए । पावलिय मज्जु णहु-गयणहिए ॥१६॥
हउ वंचित लंजिय लड-णिकिटु । आयास-गमणि पावलिय इहु ॥१७॥

को घर से सिर पर लेकर वह क्षण भर में सुखपूर्वक आकाश में चला गया ॥२३॥ पावली छोड़कर वहाँ देव समूह को देखने वह तत्काल चला गया ॥२४॥

घत्ता—इधर वृद्धा वेश्या पावली पर चढ़कर आकाश में उड़ गयी और पुत्री के आवासस्थान पर गयी तथा सुखपूर्वक वह दुष्टा निश्चिन्त होकर सुखदायी निवास स्थान में रहने लगी । कुमार वहाँ रहा ॥४-५॥

[४-७]

[छालपूर्वक बहरसेन की पावली लेकर वेश्या का कामदेव-मन्दिर से भाग जाना तथा किसी विद्याधर का आकर बहरसेन को सहयोग करने का बध्या देवर द्वैर हंगामा]

उस समय कुमार ने कुरुति के कारणभूत मिथ्यात्वी मदनदेव को प्रणाम नहीं किया ॥१॥ कुमार जब मन्दिर से निकला, उस समय उसे वेश्या और पावली दिखाई नहीं दी ॥२॥ कुमार विचारता है कि—मैं दुश्मारा छला गया हूँ । वेश्या के अध्यम चरित को कोई नहीं जानता है ॥३॥ वह (वेश्या) लोक में छोटा या बड़ा मनुष्य नहीं जानती, (केवल) द्रव्य का विचार करती है ॥४॥ वेश्या-दामाद ही या इतर मनुष्य । वह धनी पुरुष को ही सम्मान देती है ॥५॥ जो धन-हीन होता है वह उसे शोष्ण त्याग देती है, हाथ पकड़कर घर से निकाल देती है ॥६॥ लोभ से अन्धी होकर अन्य-अन्य से द्रव्य लेती है और शरण देकर अन्य-अन्य का प्रसार करती है ॥७॥ वेश्या अपनी नहीं होती—यह जानकर ही यतीश्वर (अपने) पद में रहकर उसे त्याग देते हैं ॥८॥ जो दूसरों को पाप-भाव से देखते हैं वे बन्धन, ताड़ना और मार पाते हैं ॥९॥ जो कर्म किये हैं वे विफल नहीं होते । निश्चय से वे बिना जाने-समझे माथे आ पड़ते हैं ॥१०॥ कुमार ऐसा अपने मन से विचार करके देव-मन्दिर में चिन्ता करता हुआ सुख-पूर्वक रहता है ॥११॥ इसी बीच शुद्ध-परिणामी एक विद्याधर आकाश से उत्तरकर देव-मन्दिर में आया ॥१२॥ वहाँ विद्याधर ने मदन देवता की छाना की । अष्ट द्रव्य से पूजा और स्तुति करने के पश्चात् विद्याधर के द्वारा बहरसेन देखा गया तथा कहाँ से आये हो? पूछे जाने पर बहरसेन के द्वारा कहा गया ॥१३-१४॥ हे आकाशगामी! मैं कंचनपुर रहता हूँ । हे स्वामी! यहाँ छल करके वेश्या लाई है ॥१५॥ मदनदेव की यात्रा के निमित्त आकाश से पावली ने मुझे गमन करने दिया ॥१६॥ निकृष्ट दुष्टा वेश्या के द्वारा मैं छा गया हूँ । आकाश से जाने में इष्ट पावली लेकर वह दुष्टा छल-

लह णही णहच्छु करि वि सुदु । कै करउ लगा णह-गमण भट्टु ॥१८॥
इव दुदुर जाणउ मज्जु गेह । बलि होउ भरणु महु इह मुणेह ॥१९॥

घस्ता

तं णिसुणि वि गेयद, कहु विलाहुः,
धीरउ कुमर ण लेउ करे ।
हउ लिउ तब थाणहु, णियय विमाणहु,
ण करि भद्र णिय वित्त धरे ॥४७॥

उक्तं च ॥ गणिका-तस्कारो-वैष्ण, भट्ट-पुत्र, णरेवरः ।
सलोभाः शिशाशः सप्तः, पर-मुक्तसं न ज्ञायते ॥४८॥

[४-८]

अच्छहि कहव विणवि गुण-सायर । रहि कंदप्प-भद्रण भू-गोयर ॥१॥
अंष्ठहि मवण-मुसि रंजिय-मण । णउ हङ्गहि तुव हहि [मण] सुच्छण ॥२॥
सुर-गिह-पचिछाम-विस वे वि तह । णउ जोयहि जाह वि तत्य णिर ॥३॥
एयइ वितह वसइणि रुत (द) उ । अवरहू रवखसु-दुदु-विचिसु ॥४॥
णउच्छंडहि तुह विट्ठि पलंतइ । भक्षेसहि तिलु-तिलु वि करंतइ ॥५॥
तो मणिउ लेयरवयणु सुदु । णउ जोयमि णरवह जह मणिट्ठु ॥६॥
गउ लेयह कहि णिय कज्ज तसु । सुहि अच्छहि विव-मुञ्ज जिणहु भत्तु ॥७॥
अवरहू विणि कुमरह रहस-वित्त । गउ वण-मज्जों ते तुमइ-चित्त ॥८॥
कोउल्ल पिक्खण गवउ तत्य । एयंतह फुल्ल लए वि सुच्छ ॥९॥
सुंघिउ णिय घाणह कुमर तत्य । जे रासहू करणइ अह समत्य ॥१०॥
भउ रासभु तं तेएण तसु । गोथड मणुयत्तणु कम्प-कित्तु ॥११॥
थण [तण] धुवह कच्छालिय दुहुभाय । सुउ जा णह-मज्जिणि सुच्छभाय ॥१२॥
अणहाँ-जोउ चिरवह रमुहि । अणणहाँ कम्पकरे विविहि ॥१३॥
पणरह विण-वित्तइ खयह आउ । णउ विट्ठउ विव-सुउ सुच्छकाउ ॥१४॥
तह विट्ठउ खलु पड-पड करंतु । खण जाणिउ इह णह भउ तुरंतु ॥१५॥
तं अणहं भूखह-फुल्ल लेह । सुंघाविय-रासभ असुह-खोह ॥१६॥
तं पठभावें जं जि सरोरहं । वहरसेणि साहम्मिय संगह ॥१७॥

करके आकाश से घली गयी । हे विद्याधर ! कथा करौं, आकाशनामन से अष्ट हूँ ॥१७-१८॥ अब मेरा घर जाना कठिन जानो । भले ही मेरा मरण हो थे ॥१९॥

घस्ता—ऐसा सुनकर वहु विद्याधारी विद्याधर ने कहा—कुमार, खेद मत करो, धैर्य धरो । मैं अपने विमान से तुम्हें तुम्हारे स्थान पर ले चलता हूँ । यह अपने चित्त में घारण करो, छरो नहीं ॥४-५॥

कहा भी है—वेश्या, चौर, वैद्य, भाट का पुत्र, राजा, लोभी और शिष्य इन सातों हारा पराया दुःख नहीं जाना जाता ॥६॥

[४-८]

[बहरसेन का रासभ रूप में परिवर्तित होना तथा विद्याधर द्वारा मनुष्य बनाया जाना]

विद्याधर कहता है—हे गुणों के सागर, भूमिगोचर ! आप कुछ दिन कामदेव के मन्दिर में रहें । मदनदेव की मूर्ति को आनन्दित मन से पूजें, मन की इच्छानुसार घूमना नहीं ॥१-२॥ देव-मन्दिर की पश्चिम दिशा में दो वृक्ष हैं, निश्चय से वहाँ नहीं जाना और न उनकी ओर देखना ॥३॥ एक वृक्ष पर भयंकर व्यंतर और दूसरे वृक्ष पर दुष्ट विचित्र राक्षस रहता है ॥४॥ तुझ पर दृष्टि पड़ते ही नहीं छोड़ेगा, तिल के बराबर दुकड़े कर करके खा जावेगा ॥५॥ इसलिये हे नृपति ! तुम्हारे मन को प्रिय हो तो भी विद्याधर की बात मानकर न देखना और न जाना ॥६॥ ऐसा कहकर विद्याधर अपने कार्य क्षमा चला गया । जिनेन्द्र-भक्त राजपुत्र सुखपूर्वक रहता है ॥७॥ दूसरे दिन कुमार हथित चित्त से बन में (वहाँ) गया (जहाँ) वे वृक्ष स्थित थे ॥८॥ कौतुहलवाण देखने वह वहाँ गया । एक वृक्ष के सुन्दर फूल लिए ॥९॥ कुमार अपनी नासिका से गधा बनाने में अति समर्थ वे (फूल) सूँचे ॥१०॥ फूलों के प्रभाव से कुमार गधा बन गया । कर्म-कृत मनुष्य का शरीर लुप्त हो गया ॥११॥ दूध पोनेवाला गर्धभी का वह पुत्र अपनी इच्छानुसार नदी के तीव्रे की गोली भूमि में जाकर [अपना] शरीर धोता है / लोटता है ॥१२॥ वह दूसरे-दूसरे कर्म करते हुए चिरकाल के विविध प्रकार के अन्य-अन्य जीवों में रम जाता है ॥१३॥ पन्द्रह दिन बीतने पर विद्याधर आया । उसे सुन्दर शरीरवाला राजपुत्र (कुमार) दिखाई नहीं दिया ॥१४॥ वहाँ उसे पों-पों करते हुए रेकते हुए (वह गधा) दिखाई दिया । विद्याधर ने तुरन्त इसे मनुष्य से (गधा) हुआ जान लिया ॥१५॥ (विद्याधर ने) गधे के अशुभ को नष्ट करनेवाला दूसरे वृक्ष का फूल लेकर उसे सुँघाया ॥१६॥ उसके प्रभाव से

षणमिति विज्ञाहृद वार-वार । हटुड विज्ञाहृद भणइ-थार ॥१८॥
मह वारिति कि किउ एह कम्बु । यउ यागिति जुलाजुत्त-मम्बु ॥१९॥
तो णिसुणि भणइ भो गयणगामि । यउ एड कम्बु ण करउ सामि ॥२०॥
खम करहु महुपरि इव हि राय । तुव सरि महु सज्जणु णत्य भाय ॥२१॥

घसा

खं-गउ विज्ञाहृद, भणइ कुमक कहु,
कहि सामिय महु इवा करि ।
एवहु ले तर वर, विहि णिस्मिय थर,
कहि पहु महु इणि गुणु विवरि ॥४-८॥

[४-९]

तो सुणि वि पर्यवह गयणगामि । मह भुखह वडयह इव आमि ॥१॥
एयंशालं लह णर सं [स] घह । रासहु होइ तत्तु खणि संपह ॥२॥
बीयह भूखह सुधह फुलहदं । दीसह णर णिय रुव अमुलह ॥३॥
खर-मणुवह करणो एह विज्ञ । अरि-दप्तु-दलणि णिय अत्थ कज्ज ॥४॥
तं णिसुणि वयणु णिवपुसु बुत् । भो भो सामिय हउ रहउ इत ॥५॥
पहुचावहु महु घर ऐह तत्तु । तुव पुण-सहाए णियउ गोत्तु ॥६॥
सुणि बच्छ वंच दिणद्दु इत्थ । हउ त्रावउ णिय गिह फिरि निरुत्त ॥७॥
गढ अविक वि लेयह अप्य गेहि । आवर्हि दिण पंच वि रहह सुहि ॥८॥
तहं कुमरहं चितिउ णिय मणेण । ए वे तरु फुलह लिउ सुहेण ॥९॥
जं जित्तउ लंजिय इणि हि तेय । विम्बोवउ दासिय-विविह भेय ॥१०॥
जोयंति सुरासुर-खयर-लोय । पुण भाय-मिलह महु विहि-सजोय ॥११॥
पावलिय-जुयलु णिय चूफलु । कारिच्छलु-बलु-मित्तीभाउ णिलु ॥१२॥
लिउ रासहि करि चडि उवरि तहि । ले सउ णिय-पुरयण तत्थ जहि ॥१३॥
दउरावमि पुरसहु मज्जि तहि । जं जिप्पउ णिय-दलु भुव बलेहि ॥१४॥
पुडु पयडु णरिदहं होड तहि । मिलि एव महायण लेय जहि ॥१५॥

वद्वरसेन अंपना पूर्व धारीर पाकर संक्षेप में कहता है ॥१७॥ उसने विद्याधर को बार-चार प्रणाम किया । विद्याधर रुष्ट होकर विष के असर से बेचैन वद्वरसेन से कहता है ॥१८॥ मैंने रोका था, यह कथा कर्म कर लिया, हिताहित का मर्म नहीं जाना ॥१९॥ वद्वरसेन कहता है—हे आकाशगामी स्वामी ! सुनिए ऐसा कर्म नहीं कर्ह ॥२०॥ हे राजन् ! अब मुझ पर क्षमा करो, तुम्हारे समान मेरा सज्जन भाई नहीं है ॥२१॥

धर्म—आकाशगामी विद्याधर से कुमार कहता है हे स्वामी ! दया करके विधाता द्वारा पृथिवी पर निमित दोनों इन वृक्षों के गुणों को खोल कर मुझे कहियेगा ॥४-८॥

[४-९]

[वद्वरसेन का दोनों वृक्षों के फलों का प्रभाव जात करकर तथा वेश्या को उसके किये गये छल का वर्ण देने हेतु विचार-मन्त्रन-वर्णन]

वद्वरसेन का प्रश्न सुनकर आकाशगामी प्रजा का पालक (विद्याधर) कहता है—यद्युगे दोनों वृक्ष मैंने उपयोगी हैं ॥१॥ एक (वृक्ष) के फूल को लेकर (जो) सूखता है (वह) तत्काल गधा हो जाता है ॥२॥ (जो मनुष्य) दूसरे वृक्ष के फूल को सूखता है (वह) अति सुन्दर अपने (पूर्व) रूप में दिखाई देता है ॥३॥ यह विद्या गधा और मनुष्य करनेवाली, शत्रु का मान-मर्दन करनेवाली तथा अर्थकार्य करनेवाली है ॥४॥ विद्याधर का कथन सुनकर राजपुत्र ने कहा—हे स्वामी ! मैं यहीं रहता हूँ ॥५॥ सब तो (इसके पश्चात्) मुझे शीघ्र घर पहुँचाओ । अपने पुण्य की सहायता से परिवार में ले चलिए ॥६॥ (विद्याधर कहता है—) हे वत्स ! सुनो ! पांच दिन यहीं रहो, निश्चय से मैं अपने घर से लौटकर आता हूँ ॥७॥ ऐसा कहकर जब विद्याधर अपने घर गया (कुमार) पांच दिन सुखपूर्वक रहता है ॥८॥ वहीं कुमार अपने मन से विचार करता है कि सुख-पूर्वक इन दोनों वृक्षों के फूल लेकर इनके तेज से दासो (वेश्या) के विभिन्न रहस्य को खोल दूँ ॥९-१०॥ सुर-असुर और विद्याधर-जन देख लें । विधि के संयोग से इसके पश्चात् मैं भाई से मिलूँ ॥११॥ छल बल पूर्वक मैत्री भाव करके निश्चय से पावली का जोड़ा और आम्रफल लेकर उसे गधा बना कर और उसके ऊपर चढ़कर जहाँ राजा और नगर के लोग हों वहाँ ले जाकर नगर में दौड़ाऊँ, पृथिवी पर बलपूर्वक राजा की सेना को जीतूँ ॥१२-१४॥ इसके पश्चात् जहाँ राजा हो वहाँ महाजनों को

तज मुक्तउ जइ रावच्छुदावह । वनु दिण कुहण-जणवह लायइ ॥१६॥

घटा

तं कुमरहं पुल्लहं, वे लह भल्लहं,
किय पचल्लण णिय गंठि करि ।
दिण पंखइ वित्तहं, लयह णिरतहं,
सम्मायउ किय अबहि-सरि ॥ ४-३ ॥

[४-१०]

लिउ लेयर कंचणपुर-कुमारह । गउ थाइ वि खग्गु णिय-गिहरवाह ॥१॥
इत्यंतरि कंचणपुरह-भजित । वहसेणि भमह वहसिय-दुसजित ॥२॥
तहं विविह विलासहं करह जाम । विलसह सुहि संपह विविह ताम ॥३॥
अणणहि दिण थेरहि लंजियाहि । सहं हिद्दु-कुमर विड-लुहियाहि ॥४॥
अचुज्ज रहिय खण इकु तहि । इहु किउ दधि लंधि वि आउ इहि ॥५॥
तं वहयर बुझउ कयहु करि । जिउ आवह महु घर पुत्ति-सरि ॥६॥
पुणु किउच्छलु-मडिउ कुमर-सहै । किय जाणु कवाटहं बीरदहु ॥७॥
वधिय सध्वंगह बुद्ध णिह । किय पुत्तिय सरथहं गहि वि कह ॥८॥
विय पास-कुमारह भणहं वत्त । अह-लोहणि वयण-पाण-सत्त ॥९॥
आकार जोइ कुमरोहि बुत्त । कहि कज्ज वहु पट्टिय णिरत्त ॥१०॥
महु अवधहि वहयर जं जिवितु । मण-संसर केडहि इव णिरत्त ॥११॥
तं वयणु सुणेविणु लंजियाहं । भो गिसुणि सुहव महु बहु बुहाहं ॥१२॥
जब तुव कंवप्पह गेह-पत्तु । सुर-वंदण भत्तिहि रहसजुत्तु ॥१३॥
इत्यंतरि खगवह इकु आउ । तव पावलि लह महु चलिउ पाउ ॥१४॥
णह-धायउ सायह-थइ दुसज्जु । हउ मुक्की कंचणपुरह मज्जु ॥१५॥
किय कम्मे कहवण गयउ जोउ । तव पावलि लह गउ णह अभीउ ॥१६॥
महु तुहेसह सधाण सव्व । तं कज्जे वंदे ओर भव्व ॥१७॥
सा वयणु सुणेविणु कुमर जणि । महु पावलि बुक्लण अत्तिय मुणि ॥१८॥

लेकर पैदल उनसे मिलूँ ॥१५॥ वेश्या के सम्बन्धियों द्वारा लाया गया राजा यदि उस वेश्या को छुड़ाता है, तो छोड़ूँ ॥१६॥

घर्ता—कुमार ने भले दोनों वृक्षों के फूल अपनी गाँठ में छिपा लिये । पाँच दिन बीतने पर अवधि का स्मरण करके निष्ठाय विद्याधर वहाँ आया ॥४-५॥

[४-१०]

[वहरसेन का कंचनपुर नगरागमन एवं वेश्या का कुटिल वार्तालाप]

विद्याधर कुमार को ऐफर दंकनदुर दिया और उसने उसे उसके घर के द्वार पर स्थापित कर दिया ॥१॥ इसके पश्चात् वैरियों को दुस्साध्य वहरसेन कंचनपुर नगर में घूमता है ॥२॥ वहाँ (वह) जब तक विविध सुख-सम्पत्ति का भोग-विलास करता है उसी समय किसी दूसरे दिन व्यभिचारियों की लुटेरिन वेश्या को वहाँ कुमार दिखाई दिया ॥३-४॥ वह वहाँ एक क्षण मौन रही, (उसने मन में सोचा)—समुद्र-लांघकर यह यहाँ कैसे आया ? ॥५॥ उसने कपट पूर्वक वहरसेन से पूछा / कहा—मेरी पुत्री के जीवन हेतु घर आइये ॥६॥ इसके पश्चात् उस वेश्या ने कुमार के साथ कपट-रचना की । उस दुष्टा वेश्या ने जान बूझकर किंवाङ्ग बन्द करके पुत्री से हाथ पकड़कर अपने सभी बांग बैंधवाये ॥७-८॥ कुमार के पास बैठकर मंदिरान्पान में आसक्त अति लोभिनो वह निज वृत्त कहती है ॥९॥ उसकी स्थिति को देखकर कुमार ने कहा—पट्टी किस कारण से बाँधी है ॥१०॥ मेरे मन का संशय दूर करो और यदि वेरी जीवित हो तो मुझे कहो ॥११॥ वहरसेन का कथन सुनकर वेश्या कहती है—हे (कुमार) ! मेरे दुखों को सुखपूर्वक सुनिये ॥१२॥ जब आप मदनदेव के मन्दिर में भवितपूर्वक देवता की बन्दना करने सहर्ष प्राप्त हुए / गये, इसी अन्तराल में एक विद्याधर आया और वह पापी तुम्हारी पावली तथा मुझे लेकर आकाश में दौड़ गया और दुलीच्छ समुद्र को पार करके मैं कंचनपुर में छोड़ी गयी ॥१३-१५॥ क्रृत कर्मों से जीव कहाँ नहीं गया । वह निर्भय तुम्हारी पावली ले आकाश से चला गया ॥१६॥ मेरे सभी अस्थि-बन्धन तोड़ डाले । हे भव्य ! इसी कारण कपड़ा (पट्टी रूप में) बाँध रखा है ॥१७॥ वेश्या के बचन सुनकर कुमार ने कहा—मुझे पावली का दुख नहीं है ऐसा जानो ॥१८॥

प्रस्ता

तुहं जीवति पाइय, णयण-सुहाइय,
हरसु उवणउ मज्जु हियइ ।
बपु-सार करिजइ, णउ पच्छित्तिजइ,
गय पावलिय तुव पीडलइ ॥ ४-१० ॥

[४-११]

तुव जियइ मुद्दु महु सयल कज्ज । सिज्जेसहि मण-इच्छियइ सज्ज ॥१॥
तं बयणे लंजिय हरखचित् । अनु कबले घर-लिउ बुद्ध-धत्त ॥२॥
रह-रस सुह-माणइ वहु पयार । हंडइ पुर मज्जहं जुवहं कीर ॥३॥
सोधण्ण-वण्ण-वण्णइं सरोर । मगण-मण-रंजइ चायंगहीर ॥४॥
अण्णहं विणि लंजिय कुमरु बुक्सु । किउ सम्मायउ महु कहि हियत्तु ॥५॥
सा बयणु सुणेपिणु वइसेणि । जो णिम्मिउ अशहि वि चिङ्गइसेणु ॥६॥
पुणि वि दुहिजइ कामधेणु । अमियं जं समयहं द्विणु-वाणु ॥७॥
अमियं जिण-भत्तिय-सुहणिहाणु । अमियं सोयलु जगि सुहवयणु ॥८॥
अमियं गुण-गुट्ठिहि करइ संगु । अमियं ताहुह-परमस्थ-संगु ॥९॥
अमियं घर-संपइ होइ भव्व । अमि तिल्लिए सूबरि सुद्ध-विद्व ॥१०॥
अमियं कुल-मंडणु पुत्तु-वंस । अमियं जसु-गउरउ जण-पसंस ॥११॥
इय होति सयल किय कम्म जुस । साहेहि जईसर णाणपत्त ॥१२॥
पुण भणइ विढ़ पइ भणिउ भव्व । कंदप्प-गेह कह लङ्गु वञ्चनु ॥१३॥
तं कहि इय थइयरु मज्जु सञ्चु । जं संपज्जाह सुहु मज्जु भव्व ॥१४॥
सुणि रमणि ण रह हजं देव गेह । आराहिउ मइं कंदप्पु तेह ॥१५॥
सुसुद्धउ सुरु महु पास आउ । बस मंगि कुमरु जं तुज्जु भाउ ॥१६॥
जइ तुदुउ महु सुलहु वि करेहि । महु देहि बव्वु मह(हु)घर-घवेहि ॥१७॥
उकतं च ॥ पुव्वाहि जे एसि माणुसहि, नीचे वाया होण ।
विहि मतज्जसी णइ चालियइ, सुझे मारण तेण ॥१८॥

बहार... (देश कल्पी है---) वेदों के लिए सुखकर है कुमार ! तुझे जीवित पाकर मेरे हृदय में हर्ष उत्पन्न हुआ है । शारीरिक शृङ्खार करें, तुम्हारे पीड़ा का कारण पावली के जाने का पश्चाताप न करें ॥४-१०॥

[४-११]

[वहरसेन का कंचनपुर आगमन वृत्त एवं कामवेद-मन्दिर से लाय में लायी गयी वस्तुओं का वेश्या से कथन]

तुम्हारे जीवित रहने से मुझ वेश्या के मस्तकस्थ मन इच्छित सभी कार्य शीघ्र पूर्ण होंगे ॥१॥ वेश्या उस दुष्ट धूर्त (कुमार) को वचनों से फेंसाकर/प्रसकर सहर्ष घर ले गयी ॥२॥ वह कुमार बहुत प्रकार के रति-रस रूपी सुख को स्वेच्छानुसार भोगता है । नगर में घूमता है और युवकों से क्रीड़ा करता है ॥३॥ स्वर्ण-बर्ण के समान शरीरबाला, गम्भीर त्याग से याचकों का मन आनन्दित करता है ॥४॥ किसी दूसरे दिन वेश्या ने कुमार से कहा—कैसे आये ? मेरे हृदय को कहो ॥५॥ वेश्या के वचन सुनकर वहरसेन (कहता है—) अहन्त ने बाज पक्षी को जो चिड़िया निर्मित की है (वह उसे प्राप्त होती ही है) ॥६॥ जिसने समय पर अमित दान किया है पुण्य से उसी के द्वारा कामवेनु का दोहन किया जाता है ॥७॥ अमित जिनेन्द्र की भवित, अमित शीतल शुभ वचन सुख की निधि है ॥८॥ गुणियों की गोलियों और परमार्थ करने वाले साधुओं का संग करे ॥९॥ इससे भव्य जनों के घर संतोष-प्रदाय शृङ्ख सुन्दर दिव्य सम्पदा होती है ॥१०॥ जन जन से प्रशंसित, यश और गौरव प्राप्त होता है । वंश में कुलभूषण पुत्र होता है ॥११॥ वह सब शुभ कर्मों के करने से होता है, ज्ञानी यतीश्वर ऐसा कहते हैं ॥१२॥ इसके पश्चात् वेश्या इससे कहती है—हे भव्य ! कहो—मदनदेव के मन्दिर में कौन द्रव्य प्राप्त हुआ ॥१३॥ हे भव्य वहरसेन ! अब मुझे वह सब बताओ जो प्राप्त किया गया हो, जिससे मुझे सुख प्राप्त हो ॥१४॥ हे रमणी ! सुनो ! (वहरसेन ने कहा) मैं न देवालय में रहा और न मैंने मदन देवता की आराधना की ॥१५॥ भली ग्रकार संतुष्ट हुआ देव मेरे पास आया । उसने कहा—कुमार ! जो तुझे भावे वह वर माँगो ॥१६॥ मैंने कहा—श्रद्धि संतुष्ट हो (तो) मुझे द्रव्य देकर सुलभ कराओ और मुझे घर स्थापित करो/पहुँचाओ ॥१७॥ कहा भी है—निम्न वचन-भाणी होकर जिसने मनुष्यता का पहले विनाश कर लिया है, मिथ्याध्यानी वह विधिपूर्वक शृङ्खमार्ग से नहीं चलता है ॥१॥

यउ भणि वि कुमारहं दुणि वि पिटु। अण्णाइ अजल्ल के लाय सुदु ॥१८॥
तं कहहि वेइ महु हिपइ इहु। तं सुणि वि भणाई तव खणह इहु ॥१९॥
ओसहु अजल्ल भु महु देव विष्णु। तं सथलू वि जुवहहि भणि रवण्ण ॥२०॥
जो करइ जस्स किज्जइ वि ज्ञति। हिसायारिहें किज्जाहें सज्जुति ॥२१॥
एह लुचाइय महु पंख णिह। महु मुँडाविउ तुव सीसु वरु पररे ॥

घटा

यउ चिति कुमार, णिज्जिय भार,
बुट्ठप वेसहि भणाई सुणि ।
जकले महु फुल्लइं, विष्ण खणाईं,
तिय सुंघह णिय घाण खणि ॥४-११॥

[४-११]

तिय होइ विद्व णव-जोखणाहे। यं सुर-अच्छर अवधण णाई ॥१॥
तं समउ य दीसहु कोइ नारि। यं सुखइ-फणि-णर-मयण-मारि ॥२॥
तं वयणु सुणे वि रंजिय मणेण। महु देहि कुमर ओसहु खणेण ॥३॥
तं णिसुणि पर्यपइ णिवह पुत्तु। वीराण-वीर धृताण-धृतु ॥४॥
मह तव कज्जे आणिय मियच्छ। लहु वेएं सुघहि फुल्ल दच्छ ॥५॥
तं सुघह रासहि भइय वेइ। सा वयणे कुवरहं वंहु लेइ ॥६॥
दिणउ रज्जू वंधावि तहि। तं उप्परि भउ असवारु सुहि ॥७॥
जट्ठियहं पीटि नीसरिउ गेहि। सहु णयह भमह पिटुंसु तहि ॥८॥
पिच्छइ लंच्छिय-गणु लोय-पुरु ॥९॥

पञ्च-पञ्च करंति रासहि भर्मति। पुरलोयहं सयलइं भइय दिति ॥१०॥

णिथ-माय दिलंबणु सुणि खणेहि। जञ णिगाय कुंदलया सुणेहि ॥११॥

भल्लउ किउ कुमरे महु भायउ। जं किद्व (ज्ज) उ पाविणि तं पाविउ ॥१२॥

जहसउ करइ सु तहसउ पावइ। पर-संताविय दय संतावइ ॥१३॥

हउ जाणि वि कहु कुरउ ण किज्जइ। तं पावे णरयहं संपज्जइ ॥१४॥

ऐसा कहने के पश्चात् (वेश्या द्वारा) कुमार से पूछा गया अन्य अपूर्व कथा लाये हैं ? हे मेरे हृदय के लिए प्रिय ! वह मुझे शीघ्र कहो ! ऐसा सुनकर वह कहता है—तुम्हारे मन को प्रिय अपूर्व औषधि मुझे देव ने दी है वह सभी स्त्रियों में सर्वाधिक सुन्दर (बना देती है) ॥१८-२०॥ (वेश्या कहती है—) यदि यह ऐसा करती है तब जीवता कीजिए । (कुमार विचारता है)—युक्ति पूर्वक हिसाचार करूँ ॥२१॥ पहले इसने निश्चय से मेरे पंखों का लुचन किया है मैं (इसके) जीश को मुड़बाता हूँ ॥२२॥

घटा—कामजयी कुमार ऐसा विचार कर बृद्धा वेश्या से कहता है—मुनो, यथा के द्वारा मुझे सुन्दर फूल दिये गये हैं । अपनी नासिका से स्त्री तत्काल सूचती है ॥४-११॥

[४-१२]

[वहरसेन द्वारा वेश्या का गधी जानकर नगर-चमण कराना तथा वेश्या के परिजनों द्वारा विरोध-प्रदर्शन]

इनसे बृद्ध स्त्री नव-यौवनत्व को प्राप्त हो जाती है । वह स्वर्ग से उत्तरकर नीचे आई देव-अप्सरा के समान प्रतीत होती है ॥१॥ उसके समान इन्द्र, कणीन्द्र, नरेन्द्र, कामदेव और यम की स्त्री भी दिखाई नहीं देती ॥२॥ कुमार के ऐसे बचन सुनकर (वेश्या) आनन्दित मन से कहती है—कुमार ! तत्काल मुझे औषधि दो ॥३॥ वेश्या की प्रार्थना सुनकर बीरों में बीर और धूतों में धूत प्रजापति राजपुत्र (कहता है)—हे मृग-नवनी ! मैं तुम्हारे लिए (ही) लाया हूँ । हे चतुर स्त्री ! लो, शीघ्र कूल सूचो ॥४-५॥ वह (वेश्या) उसे सूचती है और शीघ्र गधी हो जाती है । खराब बचनों को कहता हुआ (कुमार लब) दण्ड लेकर उसे (गधी को) रस्सी से बैधवाता है और सुखपूर्वक उसके ऊपर सवार होता है ॥६-७॥ लाठी से पीट-पीट कर घर से बाहर निकालता है और पीटते हुए सम्पूर्ण नगर में छुमाता है ॥८॥ वेश्या के परिजन और नगर के लोग देखते हैं ॥९॥ सभी पुरुखासियों को भयभीत करती हुई पों-पों करती गधी घूमती है ॥१०॥ पल भर में अपनी माता है सुनकर कुन्दलता (वेश्या की पुत्री) देर करती हुई घर से बाहर नहीं निकली ॥११॥ (वह कहती है—) कुमार ने भला किया, मुझे अच्छा लगा, जो पापिनी ने किया वह (उसने) पाया ॥१२॥ (जो) जैसा करता है, वैसा ही वह पाता है, दूसरों को दुःख देनेवाले को दैव कष्ट देता है ॥१३॥ ऐसा जानकर किसी का बुरा न

मारिज्जाइ णारहय असेसहि । पंच प्यार सहइ तुह तं तहि ॥१५॥
 इत्थंतरि लंजिय परिवारहं । पुष्कारिच कोडवार-सपासहं ॥१६॥
 सुण बीनई हमह तुहयारी । किय गदहि हम्महि गर-वारी ॥१७॥
 यहु कोइ विडागु फिरह महि वुतउ । भंडइ पुरय-तिथहि तुरतउ ॥१८॥
 दों कारहु तं जि गिजिहुउ । परएसिउ घर-परियण-भद्रउ ॥१९॥
 तिण वयणे कुल-बाल समुद्रई । वेढिज चहुदिसु कुमर तुरतझ ॥२०॥
 मह-मर माह-मार पभणंतहं । मुंच-मुंच रे । पाव तुरतझ ॥२१॥
 काह विहिउ रे पाविय वेसहि । किय रासहि लंजिय थेरी तुहि ॥२२॥
 छंडहि जें रुखे करि रे णिग्धिण । णउ जम-कुहरि पडहि रे तुज्जण ॥२३॥

घटा

तुहु जुज्जाइ, एहउ किज्जाइ,
 लंजिय रासहि कियह तझ ।
 तुहुं पाविउ, पर-संताविउ,
 कल्पहि सिर इब तुज्जमु सयह ॥४-५२॥

[४-५३]

तं णिसुणि वि कुछउ राय-पुसु । लगाउ कुल-बालहं णं कर्यतु ॥१॥
 णिय जद्विय मुकिक्य विज्ज-सरि । तं फिरह चक्क जि तिष्ह सिरि ॥२॥
 ते मारिय सथलइ चडिय करि । कोलाहलु हङ्गउ सधल पुरि ॥३॥
 के मारिय-णद्रह शरहरते । के सरणागय अरि-य वडते ॥४॥
 भोच्छंडि देव तुव करहि सेव । द्वइ जीवदाणु हम णिरवमेव ॥५॥
 के जाइ पुकारिय रायपास । भो महि परमेश्वर कहरि-तास ॥६॥
 सुणि अम्ह वयणु तेयं विणेस । इकु षुत्तु आउ तुह पुरह ईस ॥७॥
 णं लह कालु गिलण सइ आयउ । मांगहि वेसहि भउ तुह-बायउ ॥८॥
 किय रासहि चडि पुरहं भनावइ । कोडवाल तुह सह संधावइ ॥९॥
 पुरयणु णद्रउ तालु भवालइ । सो हरि से वि भमित्वं उम्मालइ ॥१०॥

करें। इस पाप से नरक प्राप्त होता है ॥१४॥ वहीं सभी नारकी मारते हैं, (जीव) पाँच प्रकार के दृश्य अहता है ॥१५॥ इसी बीच वेश्या के परिवार के लोगों ने कोटवार और सिपाही को बुलाया ॥१६॥ उन्होंने कहा—हमारी विनती सुनिए, हम दुःखी हैं, हमारी परम प्रिय (वृद्धा वेश्या) को (इसने) गधी बनाया है ॥१७॥ यह कोई व्यभिचारी एवं धूर्त पृथिवी पर फिरता है और नगर की स्त्रियों को तत्काल इकट्ठा कर लेता है ॥१८॥ घर के परिजनों को ऋष्ट करनेवाले उस निकुष्ट, परदेशी को शीघ्र मारो ॥१९॥ उनके ऐसा कहने से कुदम्ब के बालक उठे और उन्होंने कुमार को चारों दिशाओं से तत्काल धेर लिया ॥२०-२१॥ (वे पूछने लगे) रे पापी ! किस विधि से वेश्या स्त्री को तुमने गधी बनाया है ? ॥२२॥ रे निवा ! उसका जो रूप बनाया गया है कह छोड़ो, अन्यथा रे दुर्जन ! यम का कुठार पड़ता है ॥२३॥

बत्ता—तुम्हें जो उचित हो वह करो। तूने ही वेश्या को गधी बनाया है। तुम पापी हो, दूसरों को सतानेवाले हो हम स्वयं तुम्हारा शिर काट देते हैं ॥४-१२॥

[४-१३]

[बहरसेन का आक्रमण, राजसेना का पलायन एवं बड़े भाई से मिलन]

(वेश्या के पक्षधरों के आक्रोश पूर्ण बचन) सुनकर राजपुत्र-बहरसेन कुपित हुआ। (वह) वेश्या के बंधा के बालकों के पीछे यम के समान लग गया ॥१॥ बिजली के समान (शीघ्रगामी) (उसने) अपनी लाली छोड़ी। वह उनके सिर पर ऐसे धूमती है जैसे चक्र धूमता है ॥२॥ उसे हाथ में लेकर उसके द्वारा सभी मारे-पीटे गये। सम्पर्ण नगर में कोलाहल हो गया ॥३॥ कोई मारे जाते हैं, कोई भाग जाते हैं और कोई कौपने लगते हैं। कोई द्वात्रु शरण में आकर पैरों में पड़ जाते हैं ॥४॥ कोई कहता है—हे देव ! छोड़ दो, तुम्हारी सेवा करते हैं। हे उपमा रहित ! हमें जीवन दान दो ॥५॥ कोई राजा के पास जाकर चिल्लाये है पृथिवी के स्वामी ! द्वैरी को त्रास देनेवाले ! हमारे वचन सुनो, हे स्वामी ! सूर्य के समान तेजवान् एवं धूर्त तुम्हारे नगर में आया है ॥६-७॥ वह ऐसा प्रतीत होता है मानो निगलकर साने को काल आया हो (वह) मामधी वेश्या को दुःखदायी हुआ है ॥८॥ गधी बनाकर और उस पर सवार होकर वह उसे नगर में धुमाता है। इतना ही नहीं, वह तुम्हारे कोतवाल को (भी) मार रहा है ॥९॥ उसके भय से नगर-निवासी भाग गये हैं। उस उमादी ने सिंह के समान

ते गिसुणेविण् णरवद्व कुद्वउ । णिय बलु सुवकड वहरि विकद्वउ ॥११॥
 के वयणाय वि कहहि असुद्वहै । मारु-मारु पभणोहि विरुद्वहै ॥१२॥
 तं अंपहि रे पाखिय-णिपिण । कोलवाल किउ मारिय दुजजण ॥१३॥
 तइ किउ लंजिय रासहि कीई । इब संपत्ती तुय जम द्वौई ॥१४॥
 सुणि वरसेणि सुहउ दुह वयणहै । मारिय जट्टिणि वत्ते सपलहै ॥१५॥
 के जट्टिय गय णरवद्व-सरणहै । के लज्जि वि गय वण तव-थरणहै ॥१६॥
 पखिउ भजाणउ पुरथणु णहउ । णं हरि-भीहाहि शय-गणु तहउ ॥१७॥
 पुष्कारंत णरवह गिसुणेपिणु । सरणाई णवयार धरेपिणु ॥१८॥
 आपउ णरवद्व सेणु लए विणु । ॥१९॥
 जह घिड वरि-जयसिरि संपसउ । जम रुवह आधंतु तुरंतउ ॥२०॥
 मारु-मारु पभणंतु सु कुद्वउ । रे कहि जाहि जमणद्व लद्वउ ॥२१॥

घस्ता

ते वण्णु सुणेपिणु, गउप्युलएपिणु,
 दिद्वउ वंधव-गरुव सुहि ।
 णरवद्व पिच्छहै तहु, यहु भापउ महु,
 माणु-विहृजि वि मिलिय सुहि ॥४-१३॥

इय महाराय सिरि अमरसेण चरिए । चउचगा सुकहकहाइपयर-
 सेण संभरिए । सिरि पंडिय माणिक्क विरहेए । साथु महणा सुय चउधरी
 देवराज णामं किए । सिरि अमरसेण-वहरसेण-मेलाव-कणणां णाम
 चउत्थंहर्म परिल्लेय समाप्तं ॥ संधि ॥ ४ ॥

युगम् ॥ येषां योग समुद्दमुदगरमहद्व व्वाताव संचूणितो ।
 वंशो भूरिरनाविकाल निचितो भूत्कर्मणां वलेशदः ।
 सेत्पोभव्यजनास्तपोषनवराः सप्तयि संशाभूतो,
 नित्यं पुत्रकलब्रवान्यवनदोः कुर्वतु वो मंगलं ॥ १ ॥
 सदाणेव सदावृद्ध यावत् सिद्धू-शिवश्चियः ।
 नृप पूज्यः सदा नित्यं देवराजाच्चिरंजय ॥ आशीर्वदिः ॥
 उष्टतं च ॥ साधुनां दर्शनं इलाध्यं, इलाध्यं सीलहित्रया सदा ।
 इलाध्यो दर्मजुतो राजा, इलाध्ये चारित्र संयमी ॥ १ ॥

अमण किया है ॥१०॥ ऐसा सुनकर राजा कुपित हुआ । (उसने) बैरी के बिरुद्ध अपनी सेना छोड़ दी ॥११॥ वे (सेनिक) विरोधी को मारो-मारो कहते हुए अशुद्ध-वचन (गालियाँ) भी बोलते हैं ॥१२॥ उसे (बहर-सेन को) कहते हैं—रे निर्दयी, पापी, दुर्जन ! (तुमने) कोतवाल को क्यों मारा ? ॥१३॥ वेश्या को तुमने गधी क्यों बनाया ? (यह) तुम्हारी सम्पत्ति (विद्याएँ) यम-दूत के समान हैं ॥१४॥ बहरसेन ने सुखपूर्वक दुखकारी वचन सुनकर सभी के मौह पर लाठी मारी ॥१५॥ कोई भाग कर राजा की शरण में गये, कोई लज्जित होकर तप करने वन गये ॥१६॥ भगदड़ मच गयी, पुरजन वैसे भाग गये जैसे सिंह के भय से स्थित हस्तिदल भाग जाता है ॥१७॥ शरणागतों की पुकार सुनकर नवकार (नमोकार मंत्र) धारण करके राजा सेना लिए बिना ही तुरन्त यम के रूप में उस ओर दीड़ा जहाँ जयश्री प्राप्त शत्रु (बहरसेन) स्थित था ॥१८-२०॥ अति क्रोधित होते हुए उसने कहा—मारो-मारो ! अरे ! यम के आगे प्राप्त होकर पूर्णधर कहाँ जाते हों ? ॥२१॥

घट्टा—उसके (राजा के) वचन सुनकर (बहरसेन) पुलकित होकर गया । उसे सुखपूर्वक बड़ा भाई दिखाई दिया । राजा उसे देखता है और यह मेरा भाई है (ऐसा जानकार) राजा होने का मान त्याग करके (उससे) सुखपूर्वक मिला ॥४-१३॥

अनुबाद

भली प्रकार कही जा सकते योग्य नारों वर्ग की कथा रूपी अमृतरस से पूर्ण शाहू महणा के पुत्र देवराज चौधरी के लिए पण्डित माणिक्कराज द्वारा रचे गये इस महराज श्री अमरसेन चरित में अमरसेन-बहरसेन-मिलन-वर्णन नाम का यह चौथा परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ संधि ॥ ४ ॥ जिसके ऊपर उठाये गये मुद्गार रूपी योग से महात् अज्ञान अन्धकार क्लेशदायी अनादि का कर्मबन्ध चूरचूर होकर नाश हो जाता है; नित्य स्त्री-युश्च, धन-धान्य देनेवाले, पवित्र, भव्य और तपोधन वे सप्तषि संज्ञाधारी हमारा कल्याण करें ॥१॥

जब तक सिद्ध और शिवश्री है, राजा से सम्मानित देवराज चिरायु हो, सदा आनन्दित रहे और उसकी सदा वृद्धि हो ॥२॥

कहा भी है—साधुओं के दर्शन, शीलबती स्त्रियाँ, धर्मयुक्त राजा और चारित्रिकान् संयमी प्रशंसनीय होता है ॥१॥

पंचम परिच्छेद

सन्धि-५

ध्रुवक

इत्थंतरि पुरयण, रंजिय णिय मण,
सम्माहय जहि राउ णिड ।
णिय वंखव-सहियउ, णिययण-महियउ,
णनियइं पुरयण खद्बि भऊ ॥ ७ ॥

[५-१]

बहु द्विण गय मिलियह णिब-कुमार । आर्णदिय मणि मणि-ख्व-सार ॥१॥
सिरि अमरसेणि पहु अमिय-वाय । अदखद्व णिय भावहं तुव पसाव ॥२॥
कंचणपुर सुह लहु रज्ज-लदु । हुउ णिवहं पुज्जु महियलि पसिदु ॥३॥
महु खइ बणम्मि कहु गयउ धीर । भोयणहं कबजा पुर-मज्ज-धीर ॥४॥
लहु सम्मायउ णउ मज्जु पास । तव विणु हउ विट्ठु गिरासु वास ॥५॥
हुं ढाविय सह-पुर-उवयणाइं । गिरि-गुह-णह-तीरइ-जिण-हराइ ॥६॥
णउ कल्थण पायउ गिरिहि धीर । कहि अच्छिउ लहु कहि वधि-गहीर ॥७॥
तं बयणु सुणोप्पिणु भणइं सुणि । तुम पुरह पच्छण्णउ रहूच मुणि ॥८॥
णिए भेउ ण साहिज कासु सहु । भुंजउ णिय रयणहं वेत सहु ॥९॥
तं णिसुणि बयणु रंजियउ राउ । अह-रहसें अंपि ण तित्ति-माउ ॥१०॥
पुणु बुज्जाइ पहु कहि सह्व बयणु । किय लंजिय-गद्वहि गुणु कबणु ॥११॥
उक्तं च ॥ अति लोभं न कर्त्तव्यं, लोभं नैव परित्यजेत् ।
अति लोभाविभूताय, कुट्टनी भवति रासभी ॥१२॥

वंधिय चउहुद्वय मज्जि एहु । तं वद्वयव साहहि लच्छ-गेहं ॥१३॥
भो णिसुणि राय थेरिहि पवंचु । अह लोहें महु किउ इणि पवंचु ॥१४॥
चूह फलु महु लिउ उवारि कद्विड । हउच्छम्मिउ इहि जण जुटिठ बुद्विठ ।
गर(ह) हाथ णीसारिउ अप्पगेहि । णिय सिहरे चुविय सरय नेह ॥१५॥
सरगमि चयह फल-पसायण । करडान्करत सहु पंच-रयण ॥१६॥
उग्गिलउ णरवहु पढंति बयण । णिड जुहु उज्जोहय णहिवि तवण ॥१७॥

संखि-५

[५-१]

[अमरसेन-बहुरसेन का मिलन, कुशल-क्षेम-वार्ता एवं वेश्या के
गधी बनाये जाने का बहुरसेन द्वारा हेतु बताया जाना]

ध्रुवक

इसी बोच नगर के लोग अपने मन में हृषित हो वहाँ आये जहाँ
राजाओं से पूजित राजा अमरसेन अपने भाई सहित स्थित थे । पुरवासियों
ने उन्हें नमन किया । पश्चात् भाई (अमरसेन) कहता है ॥

बहुत दिनों के पश्चात् राजा मन में आनन्दित होकर चिन्तामणि
तुल्य कुमार से मिलता है ॥१॥ राजा श्री अमरसेन अमृत तुल्य मीठी
वाणी से अपने भाई से कहता है—तुम्हारे प्रसाद से (मैंने) सुखपूर्वक
कंचनपुर का राज्य पाया (और) पृथिवी पर प्रसिद्ध राजाओं का पूज्य
हुआ ॥२-३॥ हे धर्म वीर ! बन में मुझे छोड़कर भोजन के कार्य से नगर
में कहाँ गये थे ? ॥४॥ मेरे यह शोषण छोड़ न दें ही जाने, तुम्हारे
बिना मैं निराश होकर बैठ गया ॥५॥ (मैंने) नगर के साथ उपवन,
पर्वत, गुहा, नदी-तीर और जिन-मन्दिर खुजवाये ॥६॥ कहीं नहीं पाया ।
हे धीर ! कहीं क्या पर्वत पर या किसी गहरे समुद्र में रहे ॥७॥ भाई की
आत सुनकर बहुरसेन कहता है—सुनो, तुम्हारे नगर में छिप करके रहा
हूँ, ऐसा जानो ॥८॥ अपना रहस्य किसी से प्रकट नहीं किया । वेश्या के
साथ अपने रत्नों का उपभोग किया ॥९॥ उसके (बहुरसेन के) बचन
सुनकर राजा हृषित हुआ । अति हृषि से संतोष अंगों में नहीं समाया ॥१०॥
इसके पश्चात् राजा पूछता है—किस गुण (विधि अथवा कारण)
से वेश्या को गधी बनाया है—सत्य बात कहो ॥११॥ कहा भी है—अति
लोभ नहीं करना चाहिये । अति लोभ से आकृष्ट होकर लोभ का त्याग
नहीं करनेवाली वेश्या गधी होती है ॥१२॥ इसे चौराहे के बीच बाँध
करके लक्ष्मी का भण्डार वह बहुरसेन कहता है—हे राजन् ! स्त्री का
प्रपञ्च सुनिये । अति लोभ से इसने मुझे ठगा है ॥१३॥ इसने शरद के मेघों
का स्पर्श करनेवाली चोटी के ऊपर से मेरा आम्र फल निकाल कर ले
लिया, मुझे हाथ पकड़कर घर से निकाला तो भी मैंने इस मिथ्यावादिनी
बृद्धा को क्षमा किया ॥१४-१५॥ आम्र फल के प्रभाव से सूर्योदय होने पर
कुल्ला करके उगलने पर सूर्य के समान दीप्तिमान पाँच रत्न गिरते
हैं ॥१६-१७॥

घटा

तहि अवसरि राय, विणु ववसाय,
कि लज्जइ संयह रहियह ।
मरह सुह रंषइ, वेसहि लुद्दइ,
किउ कुकम्म महु भेड लहि ॥५-१॥

[५-२]

अङ्ग-शति हउ पहु आरण्हहि । विट्ठउ जाह देव सुह भवण्हहि ॥१॥
तहि अवसरि तक्कर संपत्तहि । अणुवम-वस्थ-तिष्ठि-लहि पत्तहि ॥२॥
कंथा-जटिय-णहपावलियहि । णिय-तेयहि सुजज्ञह जे मिलियहि ॥३॥
तिणि कारणि प्रयडहि पुरह-मोस । मह बुज्जे तक्कर महुर-ओस ॥४॥
किणि कज्जे लग्जहु बाहु बज्जु । हुउ खपडहि फैडउ तुग बुझहु ॥५॥
हउ रपणीयलु तुम्ह सहाई । गुज्जु पवासहु सुहि महु भाई ॥६॥
हो आइबह [ते] मज्जु पास । ते अवखहि णिसुणहि महुरभास ॥७॥
कुइ जोई लण-भासेण विज्ज । साहिय तं सिज्जी तेय-मुज्ज ॥८॥
विणिय तह वस्थह जोइयाह । जे सयल कज्ज मण-इच्छियाह ॥९॥
गय णियस थाणह सुच्छ विज्ज । तुट्ठउ जोईसह-मिछ्छ-मुज्ज ॥१०॥
जटिय-रिज-महूण रण-अजेय । पावलिय णहं गणि सुज्ज-तेय ॥११॥
कंथा छाडह सध-सत्त रयण । महिपरि पड्त रवि-तेय एण ॥१२॥
खण-भास हम्म जोई हि पास । सज्जउ मसाणु अह बुक्ष-बासु ॥१३॥
मारियड कवालिय तिस्यु ठाइ । आणिय तह वस्थ मणिच्छियाह ॥१४॥
ए तिणि हस्थ हुमि लुरिय जण । जड बंडिय आवहि सुच्छ-मण ॥१५॥
मह भणिड बेहु महु सुच्छ वस्थ । हउ अप्पच सज्जह बंडि सुस्थ ॥१६॥
महु विणिय पावलि पश्चिरि पाय । हउ गयउ खण्डे पुर-समाय ॥१७॥
णिउ सिस-धुणे वि पस्थि[चिल]यड करि । गय ओर विलम्बह तत्परि ॥१८॥

घटा

तुम्हहं जोय ण वंछउ, हहुच्छूह अच्छउ,
णिय कंथाह पसाय मिहि ।
पुण विट्ठउ लंजिय वेरिहि, चिढ्यण घारिहि,
सुह वयणे हउ लियउ घरि ॥५-२॥

घटा—हे राजन् ! उस समय व्यवसाय और सम्पदा से रहित क्या खाता ? सुख में छेद करनेवाली लोभिनी वेश्या मरे । मेरा भेद लेकर उसने अच्छा काम नहीं किया है ॥५-१॥

[५-२]

[अमरसेन से बहरसेन का वस्तु-प्राप्ति-वृत्त-कथन-वर्णन]

हे प्रभु ! अर्थ रात्रि के समय मैं जंगल में जाकर सुखपूर्वक (दक) देवालय में बैठ गया ॥१॥ उसी समय और तीन अनुपम वस्तुएँ अपने तेज से जो सूर्य से मिलती हैं (वे वस्तुएँ हैं—) कथरी, लाठी और आकाश में गमनशील पावली लेकर वहाँ आये ॥२-३॥ इन वस्तुओं के कारण नगर-चौर झगड़ते हैं । मैंने मधुर वाणी से चौरों से पूछा ॥४॥ किस कारण से झगड़ते हो, मुझे बताओ, मैं तुम्हारे दुःसाध्य झगड़े को मिटाता हूँ ॥५॥ मैं रजनीचर तुम्हारी सहायता करता हूँ, हे भाई ! मुझे सुखपूर्वक रहस्य अकट करो ॥६॥ वे मेरे पास आकर मधुर वाणी से कहते हैं सुनिये ॥७॥ किसी योगी ने छः मास पर्यन्त साधना की । साधना से सिद्ध हुई सूर्य के समान तेजबान् वह विद्या योगी को मन-इच्छित सम्पूर्ण कार्य (करनेवाली) तीन वस्तुएँ देकर अपने स्थान पर चली गयी । वह मिथ्यात्व का पुजारी योगी सन्तुष्ट हुआ ॥८-१०॥ युद्ध में शत्रु का मर्दन करनेवाली लाठी युद्ध में अजेय है, पावली-आकाश में सूर्य के समान तेज गतिमान है ॥११॥ कथरी झड़ाने से सूर्य के समान दीप्तिमान् सात सौ रत्न पृथिवी पर गिरते हैं ॥१२॥ हम छह माह योगी के पास अति दुःख-धारा रमसान में सोये हैं ॥१३॥ उसी स्थान पर काषालिक को भारकर मन-इच्छित कार्य करनेवाली तीनों वस्तुएँ ले आये हैं ॥१४॥ ये वस्तुएँ तीन हैं और हम (चोर) चार हैं । हे स्वच्छ हृदय ! ये बैटवारे में नहीं आती हैं ॥१५॥ मैंने कहा— पवित्र वस्तुएँ मुझे दो । मैं सत्य कहता हूँ भली प्रकार आप लोगों में बाँट देता हूँ ॥१६॥ मुझे वस्तुएँ दी गयीं । मैं पैरों में पावली पहिन करके आबे पूल में चला गया और नगर आ गया ॥१७॥ बोर अपना सिर पीटकर पश्चाताप करके बिलखते हुए वहाँ से चले गये ॥१८॥

घटा—तुम्हारे मिलन से बंचित रहा किन्तु अपनी कथरी के प्रसाद से निधि पाकर भूखा नहीं रहा । इसके पदचात् व्यभिचारी जनों की स्त्री वेश्या के द्वारा देखा गया और मीठी वाणी से मैं घर ले जाया गया ॥५-२॥

[५-३]

पुणु पहु महु वेसहि । मह साहित गह-गह-पावलियहि ॥१॥
 कंदप्पदेउ सायरमहि । जंपह तुव्र अस्ये जाता तहि ॥२॥
 तं वयणे लहु हउं घण-गोहि । घउ चंदित महु पावलिय लेदि ॥३॥
 महुचछंडि समाइय घरहं सा वि । ॥४॥

तह सम्मायउ खगु इट्ठु महु । पुख्यह संबंधित दितु सुहु ॥५॥
 सत्तुह सुहयालउ विज्ज णिहु । णिय वइयरु अकिलउ ताई सहु ॥६॥
 हउं वज्जिय सुर-गिर पिच्छ वाल । घउ गमहि अस्थु सुर-गिहर वाल ॥७॥
 महु विण पणरह वह अवहि गउ । हउ कम्में पेरित तत्य गउ ॥८॥
 तहं भूख्य-सुधित फुल्लु लहु । भउ रासभु वेयं हउ जि पहु ॥९॥
 तहं आयउ खेयरु पुणि । हउ वेहुउ रासभु रुव तिणि ॥१०॥
 अणहं तह-फुल्ल सुघाइ महु । हउं जे रुवे वेएण पहु ॥११॥
 महं फुल्ल-भेउ लिउ खयर-पास । पुणु भणिउं पठावहु मज्जु वास ॥१२॥
 रहु पंच दिणह कहि गयउ मज्जु । हउ अच्छउ सुरगिहि कम्म-वसु ॥१३॥
 सर्हि अवसरि चितिउ मणेण । लिय वे तह-फुल्लहं तवखणेण ॥१४॥
 णिय गंठि वंधि खेयर-पच्छण । इह आणिय महं सु सुर्यध धण ॥१५॥
 पुणु विज्जाहर हउं इत्थु सुक्कु । हउ पुर-सुच्छह णाइ सक्कु ॥१६॥
 सा पिच्छ वि हउ डंभहि[पुरेहि] । पट्टु वंधे लंजिय अंगिहि ॥१७॥
 भणि वइयरु खयरहं वयणु महु । लहु गइय गेह विड-रमणि पहु ॥१८॥
 कं लाउ अणुख्यम वत्य कहु । मह सुख आराहित सुट्ठु महु ॥१९॥
 विद्धह णव जोवणु होइ लहु । जो सुंघइ णिय मणि सुहु करि गहु ॥२०॥
 गउ मुक्कि वि महु इह थाण भहु । दिणिय महु ओसहु बुद्धह हहु ॥२१॥
 तु णिरंजिय श्यण वासि मणि । महु अकिलउ कूयर बुद्धित्र सुणि ॥२२॥

घत्ता

महु वेयं देहि, दया करेहि,
 वर ओसहु देहि खणेउ ।
 महु रह समु काया, करहि सु भाया,
 णर-सुर-णायखणउ ॥ ५-३ ॥

[५-३]

[बहुरसेन का अमरसेन से वेश्या के गधी होने का वृत्त-वर्णन]

इसके पश्चात् है स्वामी ! वेश्या ने मुझे आकाशगामी पावली से समुद्र के बीच मदनदेव की मेरे अर्थ बोली गधी यात्रा के लिए कहा ॥१२॥ उसके कहने से मैं (उसे) मदनदेव के मन्दिर ले गया । मैंने बन्दना नहीं की । मेरी पावली लेकर और मुझे छोड़ करके वह (वेश्या) घर आ गयी ॥३-४॥ कहाँ मेरा हितेषी और सुखकारी पूर्वभव का सम्बन्धी (एक) विद्याधर आया ॥५॥ प्राणियों के सुखकारी उस विद्याधर से अपने वैरी का मैंने पूर्ण कृत कहा ॥६॥ मैं देव मन्दिर पर्वत को देखने तथा जाने को रोका गया ॥७॥ मुझे पन्द्रह दिन की अवधि देकर (विद्याधर) चला गया । मैं कर्म से प्रेरित होकर वहाँ गया ॥८॥ वहाँ छोटे वृक्ष का फूल सूँघा । हे प्रभु ! मैं शीघ्र गधा हो गया ॥९॥ वहाँ दिन पूर्ण होने पर विद्याधर आया । उसके द्वारा मैं गधे के रूप में देखा गया ॥१०॥ वह मुझे दूसरे वृक्ष का फूल सूँघाता है । मेरा जो रूप था वह मैं पा जाता हूँ ॥११॥ मैंने विद्याधर के पास फूलों का रहस्य जात किया । इसके पश्चात् मैंने कहा—मुझे मेरे निवास पर भेजो ॥१२॥ मुझे पाँच दिन (और) रहने को कह कर विद्याधर जला गया । कर्म-वश मैं देवालय में रहा ॥१३॥ उसी समय मैंने मन में विचार किया और दोनों वृक्षों के फूल तत्काल ले लिये ॥१४॥ विद्याधर से छिपाकर गाँठ में बाँध करके मैं सुन्दर और सुगन्धित (वे फूल) यहाँ ले आया ॥१५॥ विद्याधर के द्वारा मैं यहाँ छोड़ दिया गया । इन्द्र के समान स्वेच्छानुसार (मैंने) नगर में अमण किया ॥१६॥ उस मायाविनी (वेश्या) के द्वारा मैं नगर में देखा गया । वेश्या ने अंगों में पटिटयाँ बाँध लीं ॥१७॥ हे प्रभु ! (वह) वैरिन वेश्या विद्याधर को कहकर मुझे अपने घर ले गयी ॥१८॥ (वहाँ कहने लगी)—शुद्ध मति से देवता की आराधना करके मुझे कौन अनुपम वस्तु लाये हो कहो ॥१९॥ अपने मन से सुखपूर्वक हाथ में लेकर जो बूझा सूँघती है वह शीघ्र नव यौवन हो जाती है ॥२०॥ स्वामी मुझे दुखहारी औषधि देकर और इस स्थान पर छोड़कर गये हैं ॥२१॥ मेरे कहे वचन सुनकर वह कूर बूझा दासी मन में अति हृषित हुई ॥२२॥

चत्ता—(वेश्या ने कहा—) दया करो और मुझे शीघ्र श्रेष्ठ तथा सुन्दर औषधि दो । मनुष्य, देव और नारेन्द्र के समान वर्ण-रूप-सौन्दर्य तथा रति की देह के समान मेरा शरीर करो ॥५-३॥

[५-४]

मह चितउ पदियउ राउ महु । जो करतहं करउ ण बैइ लहु ॥१॥
 सो हारह मणुवहं जम्मु बह । अण भण्ठाहं होणु णिकाज्ज्ञ णिच ॥२॥
 किय रासहि फुल्ल सु'घाइ बेस । तं उष्परि बिद्वउ जमह बेस ॥३॥
 पुक्कारिउ परियण् लंजियाइ । कडवाड-सेणु-सहुं हाणिउं महं ॥४॥
 तं णिसुणि समायउ भाय तुहुं । महु जोइ मिलिउ तुहुं पुण्यु महु ॥५॥
 णिय बहयरु साहिउ बेस तुम्ह । जं जाएहि णरबहु करहि अम्ह ॥६॥
 द्व भुव्वहि लंजिय महु कहेण । जं कहिय बत्थ तं लइ सुहेण ॥७॥
 णिथ-सदण् पमणिउ बहरसेणि । सत्तुह [अ] मुयालउ गुणणसेणि ॥८॥
 बोयइ तह-फुल्ल सु'घाइ-कुटु । द्वइ जं रवे पहु लोय-बिदु ॥९॥
 मगियउ कुमारहु बेय बत्थ । सहयाल-फलु वि पावलिय सुत्थ ॥१०॥
 तं दिणणइं भोयं कुमर-हत्थ । आणदिउ राणउ कुमरु तत्थ ॥११॥
 अहु वायइ बज्जिय जय-सिरीहि । यच्चंति बिलासिणि मण-हरीहि ॥१२॥
 तहं जय-सावदे चलिलयउ राउ । णिय-बंधव-सहिघउ दितु चाउ ॥१३॥
 किरपावलि भट्ट भण्ठत तत्थ । बणिरच्छासोह करति बत्थ ॥१४॥
 बहुं चंदोवे तहरवार । मंगलु गाहुजइ राय-दार ॥१५॥
 आसीसहि पउमिणि वार-धार । जय णंवि बिद्वि पहु सहु कुमार ॥१६॥
 धय दोपिय सिहरहं पंच वण । बहुं मणि-तोरण मणि-खण्ण ॥१७॥

धत्ता

बहु वाय णिणायहि, पउमिणि गीयहि,
 दिउ कुमरह जुयराय-पउ ।
 मंगलु गीयतहं, एतरि-णडतहं,
 भउ कंचमधुर-राउ धुङ्ग म ५-४ ८

[५-४]

‘ वेश्या को निज रूप और बहुरसेन को गत-न्यस्तु-लाभ तथा
राज-द्वार में हुआ हृषीलास-वर्णन ।

मैंने (बहुरसेन ने) विचारा—मुझे अबसर मिल गया है । जो अव-
सर पाकर कर्त्तव्य नहीं करता है, वह श्रेष्ठ मनुष्य-जन्म को अर्थ खोता
है । लोग (उसे) निवच्य से हीन और निकम्मा कहते हैं ॥१-२॥ (मैंने)
फूल सूँधाकर (वेश्या को) गधी के रूप में किया (और) यथ के वेश में
उसके ऊपर बैठा ॥३॥ वेश्या के कुटुम्बियों ने मुझे मारने को सेना सहित
कोतवाल को बुलाया ॥४॥ यह सुनकर मेरे पूज्य हे भाई ! मेरे निमित्त से
आप आये (और) मिले ॥५॥ (मैंने) तुम्हें वेश्या के अपने वेर को
कहा / बताया है । हे राजदू ! जो जाते हुमारा करो ॥६॥ (राजा ने
कहा)—मेरे कहने से वेश्या को अभी मुक्त करो (और) जो (उसने
तुम्हारी) वस्तुएँ ली हैं वे सुखपूर्वक ले लो ॥७॥ बहुरसेन ने राजा के
बचन स्वीकार किये । गुणों की शृँखला स्वरूप बहुरसेन ने शशु (वेश्या)
को नहीं मारा ॥८॥ (वह) दूसरे वृक्ष का फूल उस दुष्ट वेश्या को
सूँधाता है । वह जिस रूप में पहले लोगों के द्वारा देखी गयी थी (उस
रूप में परिवर्तित) हो गयी ॥९॥ कुमार ने आम्र-फल और पावली दोनों
वस्तुएँ भाँगीं ॥१०॥ (उसने) वे वस्तुएँ भय-भीत होकर कुमार के हाथ
में दे दीं । राजा और कुमार वहीं हृषित हुए ॥११॥ जय-जयकार हुआ,
बहुत प्रकार के बाजे बजाये गये । मन-आकर्षित करनेवाली विलासिनी
स्त्रियाँ नृत्य करती हैं ॥१२॥ राजा दाम देते हुए जय-जय ध्वनि के बीच
भाई के साथ चला ॥१३॥ वहाँ भाट विलावलियाँ कहते हैं, वर्णिक अपनी
ओर से सुन्दर वस्तुएँ भेंड में देते हैं ॥१४॥ कृमानुसार चंदोबे बाँधे गये,
राज-द्वार पर मंगलगीत गाये गये ॥१५॥ स्त्रियाँ बार-बार आशीष देती हैं
कि कुमार के साथ राजा की जय हो, आनन्दित रहें और बृद्ध हो ॥१६॥
महलों के अग्रभाग पर पाँच वर्ण की ध्वजाएँ स्थापित की गयीं । सुन्दर
भणियों से निर्मित तोरण बाँधे गये ॥१७॥

बत्ता—कुमार बहुरसेन को युवराज पद दिया गया । इस अवसर पर
राजा के कंचनपुर नगर में अनेक वाद्य-ध्वनियाँ की गयीं । स्त्रियों ने भंगल-
गीत गाये और नृत्य किया ॥५-४॥

[५-५]

बहुं णेहे अचछाहि विज्ञि भाय । णिय-पय सुहि पालहि साणुराय ॥१॥
 णउ चोह-जाह तिणि रज्ज-तेय । णं भउवइरहि सुहि वसहि लोय ॥२॥
 पावलिय-जद्गु तह [लह] कुमार । खेयर सह वसि किय दुष्णिवार ॥३॥
 सह वंधि वि घलिय णिवह पाय । णिव-आण मज्ञि णियपुर समाय ॥४॥
 सह राय अ (ह) त्थु किउ कुमर वंडि । जित्ते रणभूमिहि माणुलंडि ॥५॥
 हुव सप्तल-वसुंधर राय-राय । धम्भत्थ-काम संजुत्त भाय ॥६॥
 जिणु-सुष-गुह-पुजजाहि तिज्ञिकाल । तह सुणहि जिमागमु भह-विसाल ॥७॥
 पोसहि चउ संघह वसण-वाण । सुहक्षणे अचछाहि गुण-णिहाण ॥८॥
 णिय पउमिणि रह-सुह रमहि तत्थ । सुह रज्जु-करंतह सुमह-पंथ ॥९॥
 आणाविय पिउ णिय ज्ञणि भाय । महपुरयण अंड-समाणु आय ॥१०॥
 वहु उच्छुदेण लिय णिय गिहेण । देवंग-वत्थ पहिराय तेण ॥११॥
 सुणहाईं पय-लगिय हृत्थ-जोरि । तूरहं सह-वज्जह दयण-भेरि ॥१२॥
 धन्पिउ सिहासणि णियव ताउ । बोलियहि णिरंतर विणइ थाउ ॥१३॥
 वहु विणय-णविवि णिव तुह पसाय । हम रज्जु-लम्हु कंचणपुराय ॥१४॥
 किय सप्तल-राय-वसि णिय वलेण । णिव-कण्ण-विवाहिय वहु विहेण ॥१५॥
 सुम्हहं किउ भल्लड हम सुहेहि । जं णिककासिय इवि णिय-गिहेहि ॥१६॥
 सावईय-गाय वयणाईं सुणेवि । हं मणहं मणोरहं पुजम वे वि ॥१७॥
 किय-रस्म-सुहासुह णिह वमेहि । णउ अणु हाइ किय सुह-नुहेहि ॥१८॥
 णउ चल्लइं मत्थइं लिहिउ देव । णउ करि विसाउ ते वविहिय सेव ॥१९॥
 एवाहि मण-हृच्छिड करहि रज्जु । हमि सेवहि तुव पय राय-सहु ॥२०॥
 सुव-वयण-सुणि वि णिउ भणह जुत्तु । जं पुण-सहायउ होइ मित्तु ॥२१॥

[५-५]

[वहारसेन की विग्दिजय, दोनों भाइयों की माता-पिता के प्रति
कृतज्ञता तथा कर्म-सिद्धान्त-वर्णन ।

दोनों भाई बहुत स्नेह से रहते हैं और अनुराग पूर्वक सुख से अपनी प्रजा का पालन करते हैं ॥१॥ उनके नेज से राज्य में चौर और व्यभिचारी नहीं (रहे), वैरियों का भय नहीं (था), लोग सुख से रहते हैं ॥२॥ कुमार-वहारसेन ने पावली और लाठी लेकर दूर्जय सभी विद्याधरों को वश में करके एक साथ बाँधकर और राजा के पैरों में डाल राजा की आझा मनवाकर अपने नगर आया ॥३-४॥ राजा के साथ कुमार ने हाथ में दण्ड लिया और रणभूमि में मनुष्यज्ञेश जीता ॥५॥ राजा का सम्पूर्ण पृथिवी पर राज्य हो गया । दोनों भाई धर्म, अर्थ और काम में संलग्न हो गये ॥६॥ मतिमान् वे दोनों भाई जिन-देव, जिन-श्रुत और जिन-नाम की त्रिकाल पूजा करते हैं और वहाँ जिनागम सुनते हैं ॥७॥ आहार-दान देकर चतुर्विध संघ का पोषण करते हैं और वे गुणनिधि शुभ ध्यान में रहते हैं ॥८॥ शुभ मति के पथिक वे सुखपूर्वक राज्य करते हुए अपनी स्त्री के रति-सुख में रमण करते हैं ॥९॥ नगर के तेजस्वी बड़े लोगों के द्वारा अपने माता-पिता को बुलवाकर बहुत उत्सुक के साथ उन्हें वे घर ले जाते हैं और उन्हें देव तुल्य वस्त्र पहिनाये जाते हैं ॥११॥ तुरही, सर, मदन और भेरी बाद्य बजाये गये । भली प्रकार स्नान कराके वे हाथ जोड़कर चरणों में प्रणाम करते हैं । तुरही, मृदंग और भेरी बाद्य बजाये जाते हैं ॥१२॥ वे अपने ताङ को सिंहासन पर बैठाते हैं और निरन्तर विनम्र बचन बोलते हैं ॥१३॥ बहु विनय पूर्वक प्रणाम करके राजा (अमरसेन कहता है—) राजम् ! आपके प्रसाद से ही हमें कंचनपुर का राज्य मिला है ॥१४॥ निज बल से समस्त शासक वश में किये हैं, अनेक विधियों से राज-कन्यायें विवाही हैं ॥१५॥ आप लोगों ने भला किया है जो कि हमें अपने घर से निकाला, हम सुखपूर्वक हैं ॥१६॥ (आपने) सीतेली माता के बचन सुनकर हमारे मन के मनोरथों को पूर्ण किया है ॥१७॥ निश्चय से कृत, शुभ और अशुभ कर्म उद्धमन करते हैं / शुभाशुभ फल देते हैं । कृत सुख और दुःख देनेवाले कर्म अन्यथा नहीं होते हैं ॥१८॥ भाग्य ने (जो) माथे पर लिख दिया है, (वह) अचल है । आप खेद न करो । जो बोया था वह पाया है ॥१९॥ इस प्रकार मन की इच्छानुसार राज्य करो । राजाओं सहित हम आपके चरणों की सेवा करते हैं ॥२०॥ पुत्र के

तं सह भुजइ णिहि [णिव] णिहलु । अक्षरांति जियेसरु णाण-गेतु ॥२२॥

अता

तहं दुज्जण-पाउ, पर-संताउ,
सुदणविछद् जोवइ कुमई ।
अण्हो णउ जोवइ, सुयण-वि गोवइ,
बजमई णरयहं बुहुह गई ॥ ५-५ ॥

[५-६]

वहु विणयं सावन्निइ गायहि । खम्माविय णाणा सुह-वायहि ॥१॥
पुणु ते डाविय णिव कोष-वावार । जिणु मरणकाल मुविक्य कुमार ॥२॥
गुण मणि पसंसिय वेस-विण । विय वेव-वरथ सञ्चहु लण ॥३॥
पुर-वाहिर विणहुं घरण सण । णिय बज्जो भासिय जे विकण ॥४॥
हत्थंतरि कुमरइ सुहि रमंत । धम्मस्थ-काम भुजेत संत ॥५॥
जिणविव अकिन्तिम-किन्तिमाइ । वंदहि णह-गह-पावलि-पसाइ ॥६॥
णियसेण-सहिय वण-करहि कील । जल-सरवर-वायहि करहि कील ॥७॥
अणहु दिण सोयरन्ते वि सुहि । णिय घर-गवक्ष विटुइ जुवेहि ॥८॥
आवंत विटु णहि मुणि-जुयलु । चरियहं णियह णिमिस रयणत अलु ॥९॥
आवयणहुं पुर-सायार-दीहि । परिगाहिय भोयणु विणु तहि ॥१०॥
गय अक्षखय-दाणु दइ गइय ते वि । सुर-णर-णइंवई णसहि ते वि ॥११॥
उत्तिण रहिय णिव उववणमिम । तं वंविय पुरयण युहव-रयमिम ॥१२॥
पुणु दिटु कुमारह भउ सरंवि । पुञ्चहं भवाइ हणु समु णिदवि ॥१३॥
विवहारिय घर-सम्मावियाइ । भुजाविय भोयणु अणु भाइ ॥१४॥
धणणकर-पुणणकर कम्पकर । द्वव वंदहि मुणिवर-असुहहर ॥१५॥
हम कहहि पुढव भउ विचिक्षुणि । [कम्प] णास जुतइ पयउ जणि ॥१६॥
तहु गयइ सपरियण जुत भाय । वंदिय मुणि जुयलइ अस्त्रिय पाय ॥१७॥

वचन सुनकर राजा (वहसेन का ताऊ) युक्त वचन कहता है—हे मिथ्र ! जो पुण्य सहाई होता है तो ज्ञान नेत्रवाले जिनेश्वर कहते हैं कि निश्चय से (वह) निधियों के साथ राज्य भोगता है ॥२१-२२॥

धृति—दुर्जन, पापी, दूसरों को सतानेवाला, (जो) दुर्बुद्धि सज्जनों में दोष देखता है, अपने (दोष) नहीं देखता, सज्जनों की गोपनीयता भंग करता है वह दुःखदायी नरकगति का बन्ध करता है ॥५-५॥

[५-६]

[अमरसेन-वहसेन की कोतवाल के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन, अकृत्रिम चेत्यालय-वन्दना एवं पूर्वभव-स्मरण]

कुमारों ने अनेक प्रकार के शुभ वचनों से बहु विनय पूर्वक सीतेली माता से क्षमा कराई ॥१॥ इसके पश्चात् राजा ने कोतवाल को बुलाया जिसने मरणकाल में कुमारों को छोड़ दिया था ॥२॥ (उसके) गुणों को स्वीकार करके प्रशंसा करते हुए उन्हें सभी नये दिव्य वस्त्र देकर उपदेश दिया ॥३॥ नगर के बाहर जहाँ उस वर्ण के लोम रहते थे वहाँ उन्हें शरण देते हुए रहने को भूमि दी ॥४॥ इसके पश्चात् कुमार धर्म, अर्थ और काम को भोगते हुए सुखपूर्वक रमण करता है ॥५॥ आकाशगामी पावली के प्रसाद से दोनों भाई कृत्रिम और अकृत्रिम जिन-प्रतिमाओं की वन्दना करते हैं ॥६॥ अपनी सेना सहित बन-कीड़ा और सरोवर तथा वापियों में जल-कीड़ा करते हैं ॥७॥ किसी दूसरे दिन वे दोनों भाई सुखपूर्वक घर के भारोखे पर बैठकर देखते हैं ॥८॥ उन्हें अपनी चर्चा के निमित्त आकाश से आते हुए रत्नत्रय से विशुद्ध दो मुनि दिखाई दिये ॥९॥ वे नगर के एक श्रावक के घर उतरते हैं। उसने पड़गाह करके वहीं (उन्हें) आहार दिया ॥१०॥ उन्हें अक्षय दान देकर (दोनों महोदर) चले गये और सुरेन्द्र, नरेन्द्र तथा नारेन्द्र जिन्हें नामस्कार करते हैं वे मुनि भी चले गये ॥११॥ उपवन में रथ से उत्तरकर राजा और नगर-वासियों ने मनुषियाँ रचकर उनकी वन्दना की ॥१२॥ इसके पश्चात् कुमार को पूर्वभव का स्मरण हुआ कि इन मुनियों के समान ही निश्चय से मुनि व्यापारी के घर आये हैं। हम भाद्रयों ने (उन्हें) अपना भोजन कराया था ॥१३-१४॥ धण्णकर और पुण्णकर कर्मचारियों ने अशुभ को दूर करनेवाले मुनियों की वन्दना की है ॥१५॥ पूर्वभव में हन्तीनि हमें दिव्य-श्वनि गे कर्मनाश की युक्ति प्रकट की थी ॥१६॥ दोनों भाई परिवार सहित वहाँ गये और दोनों ने मुनियों की चरण-पूजा करके वन्दना की ॥१७॥

घटा

विद्वाह मुणि-पासहि, मदण-विणासहि,
वय-तव-संजनम-वय-वयल
गिर्गंथ विथंवर, रिद्धि गयण वर,
तव-तेवं जित तरणि वर ॥ ५-६ ॥

[५-७]

पुणःपुण पणविवि रावहं मुणिवर । कहि परमेसर घम्मु वि सुहयर ॥१॥
मुणि अक्षह णिसुणहु लोप सार । जिणघम्मु-वयालउ लोप सार ॥२॥
सावार-धम्मु भवयण-इट्टु । जो पालह सावय-वयहु सुट्टु ॥३॥
सुहगह-गमणु वि सिव-सुह-बायउ । आवर-तस भेयहु वहु कायउ ॥४॥
मण-वय-कायहं जो दय-हियमहं । रविलह-धम्मित डिभ समेयहं ॥५॥
सच्चहं घम्महं घम्मु पहागउ । दाणु-चउविवह सुहगुण-ठाणउ ॥६॥
मुणि-तव-सावय-वयहं पहिल्लहं । सुहनाह कारण सह एकल्लहं ॥७॥
सुहम-धूल जे जीवह उत्तहं । णाण गणह समाणहु बुसहं ॥८॥
जा कुह ताहं विणासह पाणहं । सुब्भ-गहु सो णियमें माणहं ॥९॥
जो रक्खह सो सव्व सुहंकर । सिद्धि वहुलिहे सो सच्चह वर ॥१०॥
सच्च-वयहं-आयरहं जि जण । सच्चु-पयं पह भावह णियमणि ॥११॥
एवमेव जो अलियउ भासहं । मुश्कु होइ सो बुगह-फासहं ॥१२॥
अलिय-भासि इह परभउ हारहं । होइ पमाणु ण सुहगह वारहं ॥१३॥
गडिहउ-पिंडित परहृष्ण-पिछ्छि वि । लेहण देहण पर-मणु वंचि वि ॥१४॥
अणु विणउ जो परथणु साहह । चोर होइ सो णिय कुसु दाहह ॥१५॥
परवसु-धूलिन्समाघउ माणहं । णियमत्तहु उवरिम संठाणहु ॥१६॥
तक्कराहं वहु संग ण किङ्गह । वाधारु वि आलाउ चहज्जह ॥१७॥

घटा

पर जुवई-संगमु, कय दुगह गमु,
सुगह-वारणु अजसघय ।
रावणु पथडित जणि, पहतिय भरि मणि,
णरय-पवणउ पथर भखु ॥ ५-७ ॥

घता—काम-विनाशक, ऋत-तप और संथम से उज्ज्वल अवस्थावाले, निर्ग्रन्थ, दिगम्बर, ऋद्धियों से आकर्षणगमी, तप-तेज से सूर्य के विजेता मुनियों के पास (राजा) बैठ जाता है ॥५-६॥

[१-७]

[राजा को पंच-पाप-स्थानमय धारण-मुनि कृत अर्मोधिदेश]

राजा ने बार-बार नमस्कार करके (कहा)—हे मुनिबर ! सुखकारी धर्म कहो / समझाओ ॥१॥ मुनि कहते हैं—सुनो ! लोक में सार स्वरूप दयालु जैनधर्म है ॥२॥ भव्य जनों को गृहस्य-धर्म इष्ट है, जो श्रावक के ऋत भली प्रकार पालता है (कह) शिव-सुख को देनेवाली शुभगति में गमन करनेवाला होता है । स्थावर और अस के भेद से (जीव) बहु कायिक हैं ॥३-४॥ इन पर मन, वचन और काय पूर्वक बच्चों के समान हृदय से दया रखना धर्म है ॥५॥ प्रधात सत्य धर्म है । चारों प्रकार का दान शुभ-गुणों का स्थान है ॥६॥ मुनियों को तप और श्रावकों को ऋत-शुभगति के सैकड़ों कारणों में एक अकेला पहला कारण है ॥७॥ जो सूक्ष्म और स्थूल जीव बताये गये हैं, उनकी विभिन्न जातियाँ कही गई हैं ॥८॥ जो उनके प्राणों का विनाश करता है वह नियम से नरकगति पाता है ॥९॥ जो रक्षा करता है वह सब प्रकार से सुखकारीहृति के अनुसार श्रेष्ठ अनेक सिद्धियाँ पाता है ॥१०॥ जो जन सत्य वचन अपने मन से आचरते हैं वे शाश्वत पद पाते हैं ॥११॥ इसी प्रकार जो झूठ बोलता है वह मूरक होता है और दुर्गति में फँसता है ॥१२॥ झूठ बोलकर वह आगमी भव बिगाड़ता है, वह प्रतीति का पात्र नहीं होता और न शुभगति पाता है ॥१३॥ पराये धन को देखकर (मनुष्य) गड्ढे में गिरा है (अतः) लेन देन में पर को मत ल्यो ॥१४॥ जो बिना दिया पराया धन प्राप्त करता है, वह जोर होकर अपनी कुशलता को जलाता है ॥१५॥ (जो) पराये धन को धूलि के समान मानता है वह नियम से ऊपर (ऊर्जलीक में) स्थित होता है ॥१६॥ चोरों की संगति नहीं करे, बाधाकारी झूठ को भी त्यागे ॥१७॥

घता—परस्त्री-रमण करनेवाला दुर्गतिगमी और सुगति का निवारक तथा अपार्या का घर होता है । प्रश्न गोद्धा रावण दरक्षी की मन में धारण करके नरक को प्राप्त हुआ यह लोगों में प्रकट है ॥५-७॥

[५-८]

परतिय दुग्गड़-गमणहे सुहयरि । परतिय अबजह जलहु जि सुरसरि ॥१॥
 परतिय-संगमि जो रस-माणउं । तिण-समाणु मणिजह राणउ ॥२॥
 आयरु करि वि अण्णा तिय-बजजहु । सुहगड़-गमणु वि णियमह सज्जहु ॥३॥
 अद्भ्यात् वि मणि लोहु ण किजजह । लोहे धम्मायरु णउ दिजजह ॥४॥
 लोहासत्तउ कासु ण मणह । गम्मायम्मु कि वि णउ गणह ॥५॥
 अण्णु अणत्थ वंदु पर-कारणु । जाणि वि णरय-दुक्ख सय-धारणु ॥६॥
 णियमु गहिजजह तणहाच्छंडि वि । मणु पसरंतव धरह विहृडि वि ॥७॥
 दिसि-विदिसहि गम संखा-करणउ । पावस-कालि गमणु परि हरहणउ ॥८॥
 खर-स्वर पुर्लिड अहि णिवसहि । जिणवर-धम्मु णस्थि तहि दंसहि ॥९॥
 तहि णउ बसहु णस्थि साष्टमिउ । भाऊ वि णउ करेह सुह कम्मिउ ॥१०॥

घटा

जो पाव परायणु, पाविय ललयणु,
 लिरयंच वि जे दुट्ठ-मण ।
 ते धरह ण पालह, कहु ण णिहालह,
 मज्जस्थे अच्छहि सयणु ॥५-८॥

[५-९]

रामायउ किजजह एयचित्ति । सब्बहं जीवहं धारे वि चित्ति ॥१॥
 अट्ठमि-चउदसि पोसहु करे वि । पसरंतउ णियमणु संहरेवि ॥२॥
 भोगोवभोय-संखा विहाणु । किजजह सावर्धहि वि सुह-णिहाणु ॥३॥
 अतिहिंहि सो भोयणु मुणिहि वित्ति । ते भोयभूमि-सुह णर लहंति ॥४॥
 रथणिहि भोयणु वहु दुरिय-खाणि । णउ सुजमहि कि वि खाणि-पाणि ॥
 अणगाल-तोउ सायणेण जोउ । वहु-रोयहं पीडिड होइ कीउ ॥६॥
 सायार-धम्मु यहु मुणहि जुति । अणुरायं धरहि जि लहंहि मुति ॥७॥
 सब्बे वि गहि वि तं णविवि साहु । मणिउं मणि भयउ अउस्व लाहु ॥८॥
 पुणु सुणि वि कुमारहं मुणिहि पाय । पणविवि अस्क्षहि विर अभियवाय ॥

[५-८]

[परस्त्री-स्थाग एवं लोभ-परिहार तथा गुणवत् सम्बन्धी वर्णोपदेश]

परस्त्री-रमण से दुर्गति होती है और परस्त्री-रमण त्याग गंगा जल के समान सुखकर होता है ॥१॥ हे राजत् ! जो परस्त्री के सहवास में आनन्द मानते हैं (उन्हें) तिनके के समान मानें ॥२॥ परस्त्री-सहवास त्यागो, सदाचार का पालन करके सज्जन नियम से शुभगति में जाते हैं ॥३॥ मन से लोभ का अतिक्रमण न करें । लोभ से धमचिरण नहीं दें ॥४॥ लोभ में आसक्त पुरुष किसी को नहीं मानते । गमनागमन का कुछ भी विचार नहीं करते ॥५॥ सैकड़ों दुखवाले नरक तथा अन्य अनेक अनर्थकारी झगड़ों का कारण जानकर तृणालोभ का परित्याग करके नियम ग्रहण करे और फैलते हुए मन का संकोच करके धारण करे ॥६-७॥ दिशाओं और विदिशाओं में गमन करने की संख्या/मर्यादा-निवाय करे और वर्षा ऋतु में गमनागमन छोड़ें ॥८॥ कठोर स्वभावी, अनार्य और भोल जहाँ निवास करते हैं, जहाँ जैनधर्म नहीं है, जहाँ साध्यमीं नहीं है और भाव्य भी नहीं है वहाँ निवास न करे और न शुभकर्म करे ॥९-१०॥

घट्टा—जो पाप में रत है, पापो है, दुष्ट है ऐसे लोगों और दुष्ट मनवाले तिर्यञ्चों को न पकड़े, न पालन-पोषण करे, न बोले और न देले । सज्जन (इनमें) मध्यस्थ रहे ॥५-८॥

[५-९]

[शिक्षावत्-उपदेश एवं अमरसेन का पूर्वभव-दृष्टान्त]

सभी जीवों के मेत्रीभाव धारण करके एकचित्त से सामायिक करे ॥१॥ अष्टमी और चतुर्दशी तिथियों में प्रोष्ठोपवास करके फैलते हुए अपने मन का संकोच करे ॥२॥ श्रावक सुख का निधान-भोग और उपभोग की वस्तुओं के परिमाण का नियम करें ॥३॥ जो अतिथियों और मुनियों को आहार कराते हैं वे मनुष्य भोगभूमि के सुख पाते हैं ॥४॥ रात्रि का भोजन बहुत पापों की खदान है । रात्रि में खाने-पीने में कुछ भी दिलाई नहीं देता ॥५॥ अनछना पानी पीने से जीव बहुत रोगों से पीड़ित होता है, कीड़े पड़ जाते हैं ॥६॥ इसे सामारब्धम जानो । जो इसे सस्नेह धारण करता है (वह) मुक्ति पाता है ॥७॥ सभी ने इसे ग्रहण करके साधु की बद्धना की तथा मन में अपूर्व लाभ माना ॥८॥ इसके पश्चात् कुमार मुनि के चरणों में नमस्कार करके स्थिर होकर अमृतोपय बाणी से कहता है

कहि सामिय अम्हाहि पुष्प-भवंतर । श्रिय संवेद्हु हमि[सेटहु] मुणिवर ॥१०॥
तं सुणे वि अवलङ्घ संसयहरु । सुणहु राय अवलउ तुम्ह दुहरु ॥११॥
इह जंबूदीवह भरहसितु । लवणोदधि भंडिउ वर पवित्रु ॥१२॥
जहि णयरइ संति मणोहराइ । घण-कण-कंचण-संपइ-हराइ ॥१३॥
इह लोय-पसिद्धउ पुर-वरिट्ठु । उसधम्पुरु णामें तं वि सुट्ठु ॥१४॥

घत्ता

तहं पुरउ-पहाणउ, विणय सहाणउ,

अरि-महणु आमें पथउ ।

देवलवे भामिणि, णं सुर-कामिणि,

पट्ठ घरणि, शरवइ-विमलु ॥५-९॥

[५-१०]

णिय सुविहु-मंति मंतत्य-जाण् । णिय सेवय-प्रयण महि पहाणु ॥१॥
तहं अभयंकरु णामें विवहारी । णियसइ रिढ्हि-सहइ विवहारी ॥२॥
तं भामिणि कुसलाषतिय सुच्छ । जिणधम्मासत्तिय चत्त-मिच्छ ॥३॥
तं गिहि वे अच्छहि कम्मकरा । धणकस-पुण्णांकरु भाय वरा ॥४॥
गरवउ घर-कम्मु करेह तहि । लहुवउ घण-रक्खइ उववणेहि ॥५॥
अभयंकर-सेट्ठिहि अहव-भत्त । सुहि अच्छहि विणिवर गिहु सचित्त ॥६॥
अहो पुण्णहं अंतह जगि हवेह । सुर-णर-फाणिक-सिवपउ लहेह ॥७॥
पावह फलु अंतरु भाय जोह । मर घर-कम्मेरउ दुहिउ होह ॥८॥
यउ चित्तहि विणिवि भाय तहि । अम्हाहि णिय णव कम्मराहि ॥९॥
संसार-भववुहि पडिउ जोउ । णीसरइ ण विणु जिणधम्म-कीउ ॥१०॥
यउ चित्तवि जिणवरःधम्म-भत्त । अच्छहि सुहज्जामें लीण-चित्त ॥११॥
णउ वहह सासुह कहह तहि । कोरति केर विवहारियाहि ॥१२॥
अम्हाहि दिणि जाइय साहु तहि । विणिवि जिणधम्महं जोह तहि ॥१३॥
किज्जइ उवयारु वि इणि सुहिउ । णित्थरहि असुह किज कम्मुरउ ॥१४॥
तहं झाणु कुणिज वे वंषवेहि । रहिराविय वत्थइ घवल तहि ॥१५॥

सुनो ॥९॥ हे स्वामी ! हमारा पूर्वभव कहकर हमारे हृदय का सन्देह दूर करो ॥१०॥ ऐसा सुनकर संशय दूर करनेवाले (वे मुनि) कहते हैं— हे राजन् ! सुनो ! दुःखहारी तुम्हारा (पूर्वभव) कहता है ॥११॥ इस जम्बूद्वीप में लवण-समुद्र से सुशोभित श्रेष्ठ भरतक्षेत्र है ॥१२॥ वही धन-धार्य और स्वर्ण-सम्पदा के घर मनोहर नगर है ॥१३॥ उनमें लोक में प्रसिद्ध शृष्टभपुर नाम का श्रेष्ठ और सुन्दर भगवान् है ॥१४॥

घटा——उस प्रधान नगर का स्वभाव से विनयवान अरिमर्दन नाम का राजा था । देवांगना के समान सुन्दर उस विशुद्ध नृपति की देवलदे नाम की पटरानी (थी) ॥५-९॥

[५-१०]

[अमरसेन-बहुरसेन का पूर्वभव-वृत्त]

पृथिवी पर प्रधान वह राजा अपने सुविध मन्त्री से मन्त्रणा (सलाह) करके पुरजनों की सेवा करता है ॥१॥ उस नगर में अभ्यंकर नामक ऋचियों से सम्पन्न (एक) व्यापारी रहता है ॥२॥ ब्रवहार में कुशल उसकी स्त्री मिथ्यात्व का त्याग करके जैनधर्म में आसक्त थी ॥३॥ उसके घर धण्णंकर और पुण्णंकर (नाम के) दो कर्मचारी भाई रहते हैं ॥४॥ वडा भाई वही घर का काम करता है और छोटा भाई उपवन में धन की रक्षा करता है ॥५॥ सेठ अभ्यंकर अहंकृत का भक्त था । वह सुखपूर्वक घर में विचार करते हुए रहता है ॥६॥ अहो ! संसार में पुण्य का अन्तर होता है, पुण्य से देव, मनुष्य, फणीन्द्र और मोक्ष पद (भी) प्राप्त होता है ॥७॥ हे भाई ! पाप के फल का अन्तर देखो दोनों भाई मरकर घर के दुखो कर्मचारी हुए ॥८॥ वही सेठ के घर दोनों भाई विचारते हैं—कि हम न्याय-नोति से काम में रहें / काम करें ॥९॥ संसारी जीव भवसागर में पड़ा है, जिनधर्म (धारण) किये बिना (वह) बाहर नहीं निकलता है ॥१०॥ ऐसा विचार करके जैनधर्म के भक्त वे दोनों भाई शुभ ध्यान में चित्त से लीन हो जाते हैं ॥११॥ ऐसा प्राणी संसार-सागर में नहीं झूबनेवाला कहा गया है । वे दोनों भाई व्यापारी के पास कीड़ा करते हैं ॥१२॥ किसी दूसरे दिन सेठ वही जाता है, दोनों भाईयों को जैनधर्म में देखता है ॥१३॥ वह सुखपूर्वक इनका उपकार करता है, (उन्हें) किए अशुभ कर्मों की रति से निकालता है ॥१४॥ दोनों भाईयों को वही स्नान कराके शुभ्रवस्त्र पहिना कर— ॥१५॥

घटा

गत लह जिणवर-गेहहि, वहु सोहा जहि,
 मुणि धक्कहु चउमासहि ।
 कणि अदुइ-पछ्वहि, उबवासित तहि,
 गयहु तिण्ण-जिण-भवणु तहि ॥ ५-१० ॥

[५-११]

जिण गंथ-गुरहं अंचणहं हेय । लिय पुफ़माल बणि सुच्छ जोय ॥१॥
 अद्वे कम्मेरहं वेहु सुच्छ । णउ गिणहहि ते पर-दब्ब बत्थ ॥२॥
 बुज्जमइ विवहारी किण लेहु । महु हिप अच्चरिय डभगस वेहु ॥३॥
 से भणइ जसस हम फुल्ल लेहि । तं पुणु होइ अम्हा ण सुहि ॥४॥
 णउ गिणणाह बणिवर णिच्चएय । इय भासहि गिर ललियदखरेण ॥५॥
 तों सुणि विवहारी हरख-चित्तु । णिय जयवर-पासह वर पवित्तु ॥६॥
 जिणधम्मोवरि जिणि चित्तु लाय । पुण-पुण बणिवर शुर पणवि पाय ॥७॥
 सुणि जश्वर ए दो सुच्छ भाय । णउ पुज्जहि जिणु हम दब्ब-चाय ॥८॥
 तं कारणु बुज्जहि साहु-भव्य । एयाहं वि बुज्जिहु विगय गढव ॥९॥
 तं णिसुणि वि मणहु गुरु अमियवाय । णरचह-सुरबह-फणि जमहि पाय ॥१०॥
 भो कम्मे रहु प्रया-जिणिद । तुम कि ण करहु तिल्लोयबंद ॥११॥
 सावउगम-मण णहुच्छेय-पिधारी । सुर-गर-फणिद सिव-गमणहु सारी ॥१२॥
 तं णिसुणि वि षण्मंकर-पुणांकहु । अणहि बद्धणुल्लज सुच्छि पिह ॥१३॥
 णिय दब्बहं कुसुमहं अम्ह लेहि । अच्चहि जिणु-सामित थुइ करेहि ॥१४॥
 भो भणहु जईसर किचि बन्नु । जह अस्ति तुम्महहि कहहि भव्यु ॥१५॥

घसा

इक्कहं कम्मकर, भणिडं महुर सर,
 महु पहि कउडी पंच जई ।
 तं मोलहि जहि, कि लठमहु तहि,
 कुसुम अमोलहु सुणि सुमई ॥ ५-११ ॥

घसा—उन्हें जिन-मन्दिर के उस स्थान पर ले गया जो मुशोभित था। जहाँ चातुर्सी में मुनि विराजमान रहते हैं। इसके पश्चात् तोनों ने जिन-मन्दिर में आष्टाहिक पर्व में उपवास किया ॥५-१०॥

[५-११]

[धर्मांकर-पुण्णकर का पर पूजा द्रव्य न लेने पर मुनि कृत सम्बोधन]

सेठ (अभयंकर) देव-शास्त्र और गुह की पूजा के हेतु सुन्दर-स्वच्छ पुण्यमाल लेकर आधे पृष्ठ कर्मचारी दोनों भाइयों को देता है किन्तु वे परद्रव्य ग्रहण नहीं करते ॥१-२॥ सेठ पूछता है—क्यों नहीं लेते ? मेरा पीदगलिक हृदय आश्चर्यचकित है। यह बात देह में डाभ के समान चुभ रही है ॥३॥ वे भाई कहते हैं—यदि हम फूल लेते हैं तो उससे सुखपूर्वक उन्मन पुण्य हमें प्राप्त नहीं होता है ॥४॥ हे सेठ ! निश्चय से हम (पर द्रव्य) ग्रहण नहीं करते—ऐसा वे मीठी वाणी से कहते हैं ॥५॥ ऐसा सुनकर सेठ हंसित चित्त से (उन्हें) श्रेष्ठ और यति के पास ले जाकर जिनेन्द्र और जैनधर्म पर चित्त लगाकर तथा गुह के चरणों में पुनः-पुनः प्रणाम करके (कहता है) ॥६-७॥ हे मुनिराज ! सुनिये ! स्वच्छ-हृदय ये दोनों भाई—हम इन्हें पूजा की द्रव्य देते हैं (फिर भी) जिनेन्द्र की पूजा नहीं करते ॥८॥ हे भव्य मुनिराज ! गर्व विहीन दोनों भाइयों से इसका कारण पूछिए ॥९॥ ऐसा सुनकर मुनि अमृतोपम-वाणी से कहते हैं—हे कर्मचारी भाइयो ! नृपति, सुरपति और कणिपति त्रैलोक्य वन्द्य जिनेन्द्र के चरणों की पूजा करते हैं, तुम क्यों नहीं करते ? ॥१०-११॥ वह श्रावक के मन को परम प्रिय है। सुरेन्द्र, नरेन्द्र, फणीन्द्र सभी को मोक्ष-गमन के लिए सार-स्वरूप है ॥१२॥ ऐसा सुनकर धर्मांकर और पुण्णकर ने अन्य सुन्दर कथन कहे ॥१३॥ हम अपनी द्रव्य से फूल लेकर जिनेन्द्र स्वामी की पूजा और स्तुति करते हैं ॥१४॥ मुनिराज कहते हैं—हे भव्य (भाइयो) यदि तुम्हारे पास कुछ द्रव्य है तो कहो ॥१५॥

घसा—एक कर्मचारी ने मीठे स्वर से कहा—हे यति ! मेरे पास पाँच कौड़ियाँ हैं। हे बुद्धिवल्त यति सुनिये—फूल अमूल्य हैं। कौड़ियों के मूल्य को छोड़ो, उससे क्या प्राप्त हो (सकता) है ॥५-१६॥

[५-१२]

तं णिसुणि वि गरुबउ भणहां वाथ । हउं कि करेमि निहि-हीण जाय ॥१॥
 णउ इक्क वराडीय मज्जु वाय । कि अंचउ जिणु-तिल्लोयन्पहु ॥२॥
 यउ भणि वि जई पहि लिउ उवासु । चउविह आहारहं णेमु-घोसु ॥३॥
 विणु-रवणि रहिय जिण सुचछ गेह । णिय कूळ एण खुंविय सुनेह ॥४॥
 सुविहाणइं णहाण करे वि तेहि । जिणु-सुय-गुरु-पुज्ज करेवि तहि ॥५॥
 सु वराडी पंधहं फुल्ल ले वि । चाडाविय जिण-पय थुइ करे वि ॥६॥
 पुण गय विवहारिय-सशथ गेहि । तहि अवसरि सेहुणि खड रसेहि ॥७॥
 विष्णउं भोयणु कम्मकरेहि । अह-विणयं कहि ललियक्करेहि ॥८॥
 संपुण्ण थालु लह विटु सुट्ठु । हिय चिलहि भावर कोइ इट्ठु ॥९॥
 अह आवहि मुणिवर-पत्त इत्थ । तिप्हु णिय भोयणु पुण्णेण अत्थ ॥१०॥
 यउ भावण-भावहि वि वि जाम । मुणि-जुयल समाहं चरिय ताम ॥११॥
 तो पिच्छि विणि मुणि भावरेहि । परिगाहिय मुणिवर णय-सिरेहि ॥१२॥
 मुणि-तिटु-तिटु सुह मो [भो] यणेहि । पाराविय णिय आहार वे(दे)हि ॥१३॥
 गय अक्खयदाणु चारण-णर्हेहि । संतुट्ठु सेहु कम्मकरेहि ॥१४॥
 लहु कियउ पुणु तुम्हि सुगझ-यंयु । चारण-पाराविय भव्य इत्थु ॥१५॥
 इव भुंजहु भोयणु अणु इत्त । णउ करहि भोजु वहु तित्ति-पत्त ॥१६॥
 चउविह आहारह हम णिविति । अणाहि विणि भुंजहि सेहुसत्ति ॥१७॥
 दाणहं पहाइं तुम्ह मरि वि पत्त । सणकुमर-सगि [वे] विय महूत ॥१८॥
 रिसि-सायर भोयं-भुंजियत्त । उप्पणइं जरवहु-गेहि पुत्त ॥१९॥

घस्ता

कहि अम्ह जईस, तिहुवण-ईस,
 सावत्तिय-मायहि विहिउ ।
 कि कजजे अम्हहं, विज लंच्छणु तहं,
 हम्म विलंवियणु भउ ॥ ५-१२ ॥

[५-१२]

[पूर्वभाव में किये अग्रसेन-बहुरसेन के पात्र-दान का माहात्म्य-वर्णन]

ऐसा सुनकर बड़ा भाई कहता है—मैं क्या करूँ ? निधि/द्रव्य-हीन उत्पन्न हुआ हूँ ॥१॥ हे अृषि ! मुझ पापी के एक कौड़ी भी नहीं है । तीन लोक के स्वामी जिनेन्द्र की पूजा कैसे करूँ ? ॥२॥ ऐसा कहकर मुनि के पास (उसने) गहरी साँस ली और चारों प्रकार के आहार के नियम(त्याग) की घोषणा की ॥३॥ मेष्ठों का चुम्बन करनेवाले अपने शिखर/कलंग से युक्त जिनालय में दिन-रात रहकर दूसरे दिन वहाँ स्नान करके उसके द्वारा जिनेन्द्र, जिनश्रुत और जिनगृह की पूजा की गयी ॥४-५॥ पाँचों कौड़ियों से फूल लेकर जिनेन्द्र के चरणों में चढ़ाकर स्तुति की गयी ॥६॥ इसके पश्चात् सेठ के साथ घर गये । उस समय सेठानी ने असि विनय-पूर्वक भोजी बोली से कहकर कर्मचारियों को छहों रसों से (निर्मित) भोजन दिया /परोसा ॥७-८॥ सम्पूर्ण थाली लेकर और भली प्रकार बैठ कर दोनों भाई हृदय में विचारते हैं—पुण्योदय से यदि कोई यहाँ थेष्ठ मुनि-पात्र आता है (तो) उनके लिए हमारा भोजन हो (हम देवें) ॥९-१०॥ जिस समय वे दोनों भाई ऐसी भावना चाहते हैं उसी समय चारण अद्विद्यारी दो मुनि आते हैं ॥११॥ दोनों भाई मुनियों को देखकर विनत सिर से उन्हें पड़गाह करके (कहते हैं—) हे मूनि ! यहाँ शुद्ध भोजन है, ठहरिये-ठहरिये । (इस प्रकार पड़गाह करके) दोनों भाई अपना आहार देते हैं । पारणा करके अक्षय दान देनेवाले चारण मुनि आकाशमार्ग से चले गये । कर्मचारियों से सेठ सन्तुष्ट हुआ ॥१२-१४॥ (वह कहता है)—हे भव्य ! यहाँ चारण मुनियों को पड़गाह करके आप लोगों ने पुण्यार्जन किया है, तुम लोग सुगति-भोक्ष के पथिक हो ॥१५॥ अब भोजन करो यहाँ और (भी) भोजन सामग्री है । (वे भाई) कहते हैं—बहुत तृप्ति प्राप्त हुई है (हम) भोजन नहीं करते ॥१६॥ हम चारों प्रकार के आहार का त्याग करते हैं । हे सेठ ! दूसरे दिन शीघ्र भोजन करेंगे ॥१७॥ दान के प्रभाव से तुम दोनों मरकर सनत्कुमार स्वर्ग में महान् पद पाकर और सात सागर समय भोग भोगकर राजा के घर राजपुत्र के रूप में उत्पन्न हुए हो ॥१८-१९॥

घन्ता—हे यतीश्वर ! त्रिभुवन के स्वामी ! कहिएगा कि हमारी सौतेली माता ने किस कारण से हमें यहाँ दोष लगाया ? और हमारा तिरस्कार हुआ ॥१९-२०॥

[५-१३]

भो सुणहु णरानिव भणडं घुड । हव कम्बुष्पाज सिंधु किड ॥१॥
 तुम माह-तवलिहि सल्लु घरिण । जं पुत्त-रजज-कज्जेण सरि ॥२॥
 तुम्ह विष्णउ लंचछणु कथडु किए । पहु लग्गउ तुम्हह किय-कहिए ॥३॥
 णिव मारणत्य चंडहि सहिउ । चंडह-खयभाव विएसु विउ ॥४॥
 लह सुकिय-कम्म तुम्ह रजनु भउ । णउ अलियउ अणहह वाय घुउ ॥५॥
 पुत्तहं संवंधे कम्म-किड । णउच्छुद्दृ जिउ विहि-पासि पडिउ ॥६॥
 भुंजेइ कम्मु सुहु-असुह विहिउ ॥७॥
 यउ आणि वि किजजइ खमहं भाउ । सह सत्तुह-उप्परि मित्तिभाउ ॥८॥
 जं पंच वमुराडी फुल्ल-लेवि । जिणु-बच्चिच चडाविय पय-गवेवि ॥९॥
 तं पुण-पहावे रयण-णिहि । सय पंच चूयफल रयण सुहि ॥१०॥
 सह सत्तह कांथा मडहि तहि । सूरोगमि भणिय वि वाय महि ॥११॥
 णह गामिणि-पावलि लउठि सुदु । भु-गोयर-खेयर राय ढुडु ॥१२॥
 वसि कियइ अतुल-बलभिच्छकित । अणु दिणु पण-सेवहि एयकित ॥१३॥
 तुण भणह जईसरु सुणहु वत्थु । पाएसहु सुर-णर-न्यउ मणित्थु ॥१४॥
 पुणु विष्णि वि तुम्हइ तउ करेवि । जाएसहु सिवपुरि-आजिवे वि ॥१५॥
 णिय सुणिवि भर्वतर विष्णि भाय । आणंदे हियइ य कत्थ माय ॥१६॥
 अणह-णर-णरिहि सुणिवि धम्मु । सहहिउ हियइ तं विगद्धच्छम्मु ॥१७॥
 केहिमि तहु लयइं अणुब्बयाइ । केहिमि लावय-वय गिणियाइ ॥१८॥
 केहिमि तियाल जिणवरहं पुज्ज । केहिमि केलववउ सुरह-पुज्ज ॥१९॥
 केहिमि वय-सोलह कारणाइ । केहिमि वह-लवण्ण वउ लियाइ ॥२०॥
 केहिमि पचहल्लउ लयउ सुट्ठु । केहिमि चड पविय लहय इटु ॥२१॥

घट्टा

णिव-सुयणहं पमुह णर, पणविवि सुणिवर,
 अम्मु वि अणुवय सहियइ ।
 वय विष्णि वि भायर, गुण-रथणायर,
 गय णिय पुरयहं पयस-हियर ॥ ५-१३ ॥

[५-१३]

[अमरसेन-बहुरसेन द्वारा पूर्वभव में की गयी जिन-पूजा का फल, उनके शिव-एवं पाने की भवित्यवाणी एवं व्रत-ग्रहण वार्ता-बर्णन]

हे भाई ! सुनो ! निश्चय से कहता हूँ—अब शीघ्र कर्मों का उपाय करो ॥१॥ अपने पुत्र को राज्य प्राप्त कराने के निमित्त सीतेली माता को तुम शत्य-स्वरूप थे । (इसलिए) उसने दोषारोपण किया, कपट किया और राजा से तुमने किया है कहा ॥२-३॥ राजा ने (तुम्हें) मारने को चाण्डल से कहा और चाण्डाल ने दया-भाव से विदेश दिया ॥४॥ वहाँ शुभ कर्मों से तुम्हें राज्य मिला । (यह) क्षूँठ नहीं है और न निश्चय से अन्यथा बात है ॥५॥ पूर्वभव में किये कर्म सूटते नहीं हैं । जीव के पास पढ़े रहते हैं ॥६॥ किये शुभ और अशुभ कर्म (फल) भोगो ॥७॥ ऐसा जानकर सहज रूप से शत्रुओं पर मैत्री-भाव और क्षमा-भाव कीजिये ॥८॥ जो पौच कीदियों से फूल लेकर जिनेन्द्र के चरणों में सिर झुकाकर चढ़ाये थे । उस पुण्य के प्रभाव से सुखपूर्वक पौच सौ रत्न सूर्योदय में भूमि पर देनेवाला आनन्दफल, सात सौ रत्न झड़ानेवाली कथरी और आकाशगामिनी पावली तथा भूमि-गोचरी राजाओं, विद्याधरों और दुष्ट राजाओं को जो वेश में करती है, (जिससे) अनुल बलशाली जन आश्चर्यचकित होकर एकाग्रचित्त से प्रतिदिन (तुम्हारे) चरणों की सेवा करते हैं—वह लाठी (प्राप्त हुई है) ॥९-१३॥ इसके पश्चात् मुनि कहते हैं—हे वत्स ! मन में स्थित (इन्द्रिय) सुरेन्द्र, नरेन्द्र का पद प्राप्त करोगे ॥१४॥ इसके पश्चात् तुम तप करके मोक्ष जाओगे ॥१५॥ दोनों भाई अपना पूर्वभव सुनकर इतने आनन्दित हुए कि वह आनन्द हृदय में नहीं समा रहा था ॥१६॥ अन्य नर-नारियों ने धर्मोपदेश सुनकर बिना किसी श्रम / खेद के उस पर हृदय से श्रद्धान किया ॥१७॥ किसी ने अण्युग्रत लिए, किसी ने श्रावक के व्रत ग्रहण किए ॥१८॥ कोई त्रिकाल देव जिनेन्द्र की पूजा (के निष्पम को) कोई सोलहकारण व्रत को, कोई दशलक्षण व्रत लेते हैं तथा कोई देवों द्वारा पूज्य त्रितियों से केलि करते हैं ॥१९-२०॥ किन्हीं ने भली प्रकार पंचमी का व्रत लिया और किन्हीं ने इष्ट (मास के अष्टमी-चतुर्दशी) चारों पवित्रों के व्रत लिये हैं ॥२१॥

धर्म—गुणों के सागर वे दोनों भाई और उन राजपुत्रों के प्रमुख जन मुनि को नप्रस्कार करके धर्म और अणुवतों से सहित प्रसन्न हृदय से अपने नगर गये ॥५-१३॥

[५-१४]

इय वाण-फलहं सुणि सुच्छ भाय । इव दिवजह पत्तह असुह-वाह ॥१॥
 पहु-अमरसेणि-बहुरसेणि राय । जिक्कु-वाणे उपरि सुच्छ-भाय ॥२॥
 पुर-पहुण-शीशह-णयर-गाम । काराविय वाणह-साल ताम ॥३॥
 विण-विण पहियहं तहं सुत्थियाहं । खडरस-भोयण तहं दितियाहं ॥४॥
 वहु सत्तुव-पालहं ठाई-ठाई । पंचयहं दितव पुसुयराहं ॥५॥
 धम्मतय-हेय जिणवर-विहार । जिण-व्यक्त्वण-मुद्धह-एहाणवार ॥६॥
 कूवा-वाई वहुव कराविय । सरवर-कमलणिच्छयण कराविय ॥७॥
 उक्तं च ॥ पुत्रसोक समो सोक, रिच्छ-हत्या भमं ततः (पः) ।

धर्मो-वया समो नास्ति, ए च वान-समा निधिः ॥१॥

पत्तह अउविह वाणे पोसहिं । हीण-दीण-दय-वाणे पोसहिं ॥८॥
 जहिं-जहिं तित्थंकर-उपणिहं । तहं तहं णाणु मोष्यु संपुणहं ॥९॥
 अवर शाई जहं सिद्धउवणहं । तहिं तहिं आईं कराविय खेथहं ॥१०॥
 ठाई-ठाई जिण-पडिम-कराविय । करि पतिदु खेहूर-याविय ॥११॥
 सुर-केतहिं णिय संपइ-वाइय । विकित् महोष्यु किय जिण-सामिय ॥१२॥
 जहिं जहिं काराविय खेयालहं । तहिं तहिं पुजिय जिण-जयसालहं ॥१३॥
 सयल तित्य णमियहं जिण-णाहहिं । कित्तिमकित्तिमाहं पुजिय तहिं ॥१४॥
 तित्थ-पवणु पोसह-उववासहं । अउविह आहारहं सण्णासहं ॥१५॥
 काओसग्गे आणे अच्छहिं । सूरगमि एहाइ वि जिण-अंचहिं ॥१६॥
 सत्त उडिय मुणिवरु-दह भुंजहिं । सज्जण-जण-मण-णयणे रंजहिं ॥१७॥
 धम्मे-काणे रहहि दथालहं । सत्त विसण दूरे णिदचालहं ॥१८॥
 णिय जस-पडहुड दिणु तिलोयहं । किजजह भवियहं पुञ्च किड सञ्चहं ॥१९॥
 जिणवर-पूय वाणु-चउसंघहं । विजजह मण-वय-काय-तिसुद्धहं ॥२०॥
 अणगह जिणगिह-मणिमय वद्धहं । धपिजजहिं जिण-विव तिसुद्धहं ॥२१॥

[५-१४]

[अमरसेन-बहरसेन कृत धार्मिक-कार्य-वर्णन]

इस प्रकार दान का यह मुख्य हृदय दोनों भाई अशुभ-हारी पात्रों को (दान) देते हैं ॥१॥ राजा अमरसेन और बहरसेन स्वच्छ/शुद्ध दोनों भाई जिनेन्द्र के प्रति दान में आगे (रहते हैं) ॥२॥ वे वर्ष भर पुर, पट्टन, ह्रोष, नगर और ग्रामों में दान करते हैं ॥३॥ वहाँ वे प्रतिदिन दुःखी पथिकों को छहों रस-सहित भोजन दिलाते हैं ॥४॥ स्थान-स्थान पर प्राणियों का पालन करते हैं । पथिकों को पोसरे (व्याक) देते हैं / खुलवाते हैं ॥५॥ धर्म के लिए, धर्म जानने/समझने के लिए और जिनेन्द्र की पूजा के लिए जिन-विहार / मन्दिर तथा जिन-स्नपन के लिए बहुत कुछ, बाबलीं तथा कमलों से आच्छादित सरोवर बनवाये ॥६-७॥ कहा भी है—पुत्र-शोक के समान शोक, इच्छा-हनन / निरोध के समान तप, दया के समान धर्म और दान के समान (अन्य) निधि नहीं है ॥८॥ वे पात्रों का चारों प्रकार के दान से और दीन-हीन पुरुषों का दया-दान से धोषण करते हैं ॥९॥ जहाँ-जहाँ तीर्थकरों ने जन्म लिया है, केवलज्ञान और मोक्ष पाया है । अन्य वे स्थान जहाँ सिद्धों ने जन्म लिया है वहाँ-वहाँ इन दोनों भाइयों ने चैत्यालय बनवाये ॥१०-११॥ स्थान-स्थान पर जिन प्रतिमाएँ बनवायीं और प्रतिष्ठा करा करके उन्हें चैत्यालयों में स्थापित किया ॥११॥ अपना द्रव्य व्यय करके जिनेन्द्र स्वामी के मन्दिर में विविध महोत्सव किये ॥१२॥ जहाँ-जहाँ चैत्यालय बनवाये वहाँ-वहाँ जिन-यज्ञशालाओं की पूर्ति की / जिन-यज्ञशालाएँ बनवायीं ॥१३॥ जिन स्वामी के सभी तीर्थों की बन्दना की और कृत्रिम, अकृत्रिम जिन-स्वामी की पूजा की ॥१४॥ पर्व की तिथियों में प्रोषधोपवास करते हुए चतुर्विध आहार से संन्यास लेते हैं ॥१५॥ कायोत्सर्ग से ध्यान में रहते हैं । सूर्योदय होने पर स्नान करके जिनेन्द्र की पूजा करते हैं ॥१६॥ सातवीं घड़ी में मुनि को (आहार) देकर भोजन करते हैं और सज्जनों के मन तथा नेत्रों की आनन्दित करते हैं ॥१७॥ वे दयालू धर्मध्यान में रहते हैं । सप्त-वर्षसनों से नित्य दूर चलते हैं ॥१८॥ अपना यश रूपी नगाड़ा तीनों लोक में बजवाया । वे पूर्वभव में किये के समान भव्य जनों को सब करते हैं / सुविधाएँ देते हैं ॥१९॥ मन, वचन और काय तीनों को शुद्धिपूर्वक जिनेन्द्र की पूजा और ब्रतीसंघ को दान देते हैं ॥२०॥ अन्य जिन-मन्दिरों में तीनों प्रकार की शुद्धिपूर्वक मणि-भय जिन-प्रतिमाएँ स्थापित कराते हैं ॥२१॥

घस्ता

सुहि रज्जु करतहँ, जिण-पय-भत्तहि,
जिय परियणु रंजहि कुमर।
अणहि दिणि णिवसहै, चिंदु सुणहि कहै,
चरित-तिसद्बु सलाक घर ॥ ५-१४ ॥

[५-१५]

ते अवसरि वणबालु समायउ । फुल्ल-फलहै भरि डालरि लायउ ॥१॥
णरबहु-अगाह धरिय तुरतहै । पणविवि णरबहु भणहै हसंतहै ॥२॥
भो भो णरबहु महु वाय सुणि । जडवह सम्मायउ तुम्ह वणि ॥३॥
देवसेणि-भडालउ संघ-हिउ । सुर-णर-णरिव-णायंवह महियउ ॥४॥
तं सुणि वयणु राउ संतुहुउ । वत्थाहरण वि विणि समुद्दिउ ॥५॥
तहै आणंद-भेरि वेवाविय । ते सबै पुरयण-सम्माहव ॥६॥
चल्लहु पहु जित्र परियाग-युहउ । नुकिलह-सातय सोय-सञ्जुत्तउ ॥७॥
वउ णंदणवणि दंतिहि-हिटुउ । ओवरेवि तं उवरि सतुहुउ ॥८॥
तिप्याहिण इह युणिहि णरिवहि । पणमिउं णरबहु जय-जय सद्वहि ॥९॥
पुणु तहै सवण-संघु तहै वंदिउ । पुणु-पुणु देवसेणि-मुणि वंदिउ ॥१०॥
कहि परमेसर जं जिण कहियउ । सावय-धस्मु वि भक्षयण सुहियउ ॥११॥
सुरवर-णर-विजाहर-महियउ । तं णिसुणि वि मुणि णाहै कहियउ ॥१२॥
धम्मु राय जोवहै वय-सहियउ । तं पालिज्जहं पठमु वयालउ ॥१३॥
जं कथाहै अलियउ चोलिज्जह । अलियहै यु-युक्कारु करिज्जह ॥१४॥
परदववहै णउ करु लाइज्जहै । लोयहै चोरु भणि वि मारिज्जहै ॥१५॥
पर-तिय-संगु ण कहुव करिज्जहै । सिरु-मुंडि वि खर-रोहण किल्लहै ॥१६॥
तंडु-किणु करि पुर-फेरिज्जहै । णाकक्खुवि णोसारि वि विज्जहै ॥१७॥

घस्ता

तहै णिव लोयहै भय, णासहै जिड लय,
मरि कुज्जाणे णरयगहै ।
तहै पंच पयारहि, दुर्मणिवारहि,
छेडज्जहै तिलु-तिलु कुगई ॥ ५-१५ ॥

घटा—जिनेन्द्र-चरणों के भक्त कुमार सुखपूर्वक राज्य करते हुए आपने परिजनों को अनुरंजित करते हैं। किसी दूसरे दिन कुमार राजा के साथ बैठ करके श्रेष्ठ शालाका पुरुषों की चरित-कथा सुनते हैं ॥५-१४॥

[५-१५]

[मुनि देवसेन का समवशारण-आगमन, अमरसेन-वद्वरसेन की मुनि-धन्दना एवं धावक-धर्म-अमण]

उसी समय बनपाल डलिया (डोनरी) में नलगूड भर कर लाया ॥१॥ नृप के आगे डलिया रखकर राजा को प्रणाम करके हँसते हुए (वह बनपाल) कहता है ॥२॥ हे ! हे नृप ! मेरी बात सुनो ! आपके बन में देव, मनुष्य, नरेन्द्र और नामेन्द्र से पूजित यतिवर स्वामी देवसेन का हितकारी संघ आया है ॥३-४॥ उन बनपाल के बचन सुनकर राजा ने उठकर उसे बल्नाभूषण देकर संतुष्ट किया ॥५॥ वहाँ आनन्द-भेरी बजवाई । उसकी धनि से नगरवासी आ गये ॥६॥ राजा एकत्रित हुए लोगों और परिजनों के साथ मुनिवर की यात्रा के लिए चला ॥७॥ सहवृहाथी से वह नन्दन-बह गया और हाथी से उत्तर कर संतुष्ट होते हुए राजा ने मुनि की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर जयन्त्रय शब्द उच्चारण करते हुए प्रणाम किया ॥८-९॥ इसके पश्चात् श्रमण-संघ की बन्दना की तथा मुनि देवसेन की बार-बार बन्दना की ॥१०॥ (राजा अमरसेन ने निवेदन किया) है परमेश्वर (मुनिराज) ! जो जिनेन्द्र (भगवान्) ने भव्य जनों के लिए कहा है वह सुखकारी श्रावक-धर्म कहिएगा ॥११॥ राजा के निवेदन सुनकर देव, मनुष्य और विद्याधरों से पूजित मुनिनाथ ने कहा ॥१२॥ हे राजन् ! जीवों की दया से सहित ही धर्म है अतः हे दयालु ! पहले उसे पालना चाहिए ॥१३॥ झूठ कभी नहीं बोलें । झूठ बोलनेवालों का तिरस्कार करें ॥१४॥ पराया-धन पाकर मत लाओ । लोग उसे जोर कह कर मारें ॥१५॥ परस्त्री-सहवास कभी न करें । उसका सिर मुड़वा करके उसे गधे पर बैठाओ ॥१६॥ काला मूँह करके नगर में घूमावें और नाक काटकर नगर से निकाल दें ॥१७॥

घटा—हे राजन् ! ऐसा करने से लोक के भय से जीव प्राण नाश कर देता है और कुछ्यान से मरकर नरकगति पाता है। वहाँ (वह) जिन दुःखों को रोका नहीं जा सकता वे पाँच प्रकार के दुःख (पाता है) (उस) कुण्ठिति में छेदा जाता है और तिल के समान देह खण्ड-खण्ड की जाती है ॥५-१५॥

[५-१६]

परिगह-किञ्जइ दुग्धाह-कारणु । ॥१॥
 परिगह-मोहित किपि ण व्येष्ट । वहु दावार करइ णिहि-संबह ॥२॥
 पहिलइ-भूलउ भूल-अयाणउ । खोदत-मुहुं करि पञ्चताणउ ॥३॥
 तिहं मुह-वू अहि इव संपणी । णउ लहु णउ पत्तहं दिणी ॥४॥
 गय-संपय लोहधहं पावहं । मरि वि जाइ हिय कहु वि णरयहं ॥५॥
 यंच अणुव्याहं जो पालहं । सो सिवपुरि-तिथ-वयणु-णिहालहं ॥६॥
 छड सिकखावय तिलिण गुणव्यथ । पालिजजइ भलवयणु सुहगय ॥७॥
 कहित जिणागमु सयलु यिगिनहुः पुरिस तिहडि हि नकित अणिवहु ॥८॥
 विदरिय आव-काय तहं जहयहं । कहित पमाणु तिलोयहं सयलहं ॥९॥
 सुर-णर-णारय-भेड पयासिउ । जिणवर-ईरित सयलु समविस्तउ ॥१०॥
 भो शयाहिराय यउ किञ्जइ । वय-सवयरणहं भाउ रहजजइ ॥११॥
 जं चउयहु गह पाणित दिजजइ । सासय-गमणु जेण पाविजजइ ॥१२॥
 सासयाहं णउ पुत्त-कलत्तइ । धणु-जोव्यणु-सुयणह णउ मित्तइ ॥१३॥
 बोसहि सयल वत्थ जे मणहर । इंदधणुह तीह चुञ्चुव-धण सर ॥१४॥

घना

छडबीस जिणेसर, जय परमेसर,
 कुलयर यंद फर्णिव णर ।
 चारहु चक्केसर, णव हरि-परिहर,
 वर णारय जम-गसि घर ॥ ५-१६ ॥

[५-१७]

भो अमरसेणि-वरसेणि भाय । णउ पुगालु अपुण होइ राय ॥१॥
 दोसिजजइ छड-रस एह काय । णउ जीवहं सत्यें एह जाय ॥२॥
 किसु परियणु-पुत्त-कलत्त-गेहु । सासइ ण कस्त विणसंति सहु ॥३॥
 महं कहित राय जाणहु हिएण । जि कहित जिणेसर णिच्चएण ॥४॥
 मुणि कहित धम्मु सुणि दिलिण भाय । तव यरणहं उपरि भव सराय ॥५॥

[५-१६]

[अमरसेन-बहुरसेन के लिए मुनि देवसेन कृत घर्मोपदेश]

परिग्रह-दुर्गति के कारणों को (उत्पन्न) करता है ॥१॥ परिग्रह का मोही कैसे भी सचेत नहीं होता । वह विविध प्रकार के व्यापार करता है और धन को जोड़ता है ॥२॥ मूल में प्रथम भूल उसकी अज्ञानता है । छिपकली को मूँह में लेकर जैसे सर्प पछताता है—वह न खा पाता है और न उसे छोड़ पाता है ऐसे ही परिग्रही द्रव्य को न (स्वयं) भोग पाता है और न पात्र को दे पाता है ॥३-४॥ सम्पत्ति का लोभी-पापी (मनुष्य) मरकर हृदय के लिए अति कठिन महा दुखकारी नरकगति में जाता है ॥५॥ जो पाँच अणुद्रतों को पालता है वह शिव-वनिता का मुखाक्लोकन करता है ॥६॥ भव्य जन-शुभ गति (हेतु) चार शिखान्नत और तीन गुणन्नतों का पालन करे ॥७॥ मुनि ने सानन्द सम्पूर्ण जिनागम और त्रेसठ-शालाका-पुरुषों का चारित्र कहा ॥८॥ यति ने (जीवों की) आयु और शारीरिक अवगाहना तथा तीनों लोक का प्रमाण खोलकर समझाया ॥९॥ देव, मनुष्य और नारकियों के भेद तथा जिनेन्द्र कथित सभी प्रकट करके कहा ॥१०॥ हे राजाओं के राजा ! ऐसा करें जिससे व्रत और तपाचरण के भाव रहें ॥११॥ चतुर्गति के प्राणियों को ज्ञान दें, जिससे शाश्वत् गमन प्राप्त करें ॥१२॥ पुत्र, स्त्री, धन, यौवन, सुजन और मित्र शाश्वत् नहीं हैं ॥१३॥ जो सुन्दर वस्तुएँ दिखाई देती हैं के इन्द्र-धनुष, जल के बबूलों और पानी के बादलों के समान (क्षणभंगुर) हैं ॥१४॥

घटा—जगत के ईश्वर जिनेन्द्र चौबीस तीर्थकर, कुलकर-वृन्द, फणीन्द्र, मनुष्य, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, नौ वलभद्र तथा नारकी सभी को पकड़ करके यम ग्रस लेता है ॥५-१६॥

[५-१७]

[अमरसेन-बहुरसेन का आत्म-चिन्तन तथा दीक्षा हेतु निवेदन-प्रस्तुति]

हे राजन् ! हे अमरसेन-बहुरसेन सहोदर ! पुद्गल अपना नहीं होता है ॥१॥ छहों रसों से पोषित यह शरीर जीव के साथ नहीं जाता है ॥२॥ कुटूंबी, पुत्र, स्त्री, भवन-कोई भी शाश्वत् नहीं, सभी नाशवान् हैं / मर्द ही जाते हैं ॥३॥ हे राजन् ! निश्चय से जो जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है वही मैंने कहा है (उसे) हृदय से जानो ॥४॥ मुनि द्वारा उपदिष्ट

गय मुणिवर रक्षित वि णिय धरेहि । तवयरणहं उपरि भाज जेरहि ॥६॥
 सह-पुरयण सेवहि सद्यण-मित्त । ॥७॥
 सावत्तिय हिय करि[भड]णिसल्लु । जहि विहित कुमारहं हियह सल्लु ॥८॥
 विणिं वि णिय-णिय जाण-रुठ । सहु पुरयणेण तेएण पूढ़ ॥९॥
 ते णिगण्य णयरहंचछडि मोहु । णयरज्जणाहं मणे जाइ खोहु ॥१०॥
 स लहंति परोपर चरित ताहं । पेच्छहु-पिच्छहु णिमल मणाहं ॥११॥
 णव जुञ्बणिच्छडि वि सयल चित । अणु-परियणु-पुत्त-कलत्त-मित्त ॥१२॥
 णिय णरभउ सहलु करंति भव्य । णित्रण-चित्तए विगष-गड्ड ॥१३॥
 जे हीण-सत्त-मह-लोभ-सत्त । मिच्छा-मयरिक्षित-वसेहि खुत्त ॥१४॥
 माया-मय-रस-वस वसण-भुत्त । गिह-भार विसम दहि णिच्छ खुत्त ॥१५॥
 पंक्षिदिय-विषयहं गणिय-दीण । णउ चेयहि अध्यउ दुखलरीण ॥१६॥
 ते बीसर्हि विहिणउ[बुहि]असंख । भवि भमिहर्हि जे पुणु जोण-लक्ष्म ॥१७॥
 दुस्लहु णरभउ पाविवि सुधम्मु । जो ण करह तहु इह मणुवजम्मु ॥१८॥
 अणास-कयथा बंदणिज्ज । ए विणिं वि सुहि सुपसंसणिज्ज ॥१९॥
 इय वणि जंतइ पुणु पुरयणेहि । सु पसंसा विरहय णरयह तेरहि ॥२०॥
 ते गय खणेण तावस-वणेण । सारिय माह वि जहि कलरवेण ॥२१॥

घन्ता

तहि मुणिवर सारज, मयण-विलायउ,
 वियणं चंदित णिरहु तहि ।
 पुणु विणधं भावित, सुवण सुहासित,
 मा उवेक्ष सामिय करहि ॥ ५-१७ ॥

[५-१८]

जणण समुहह पार-चत्तारी । अम्हह दिक्षित वेहि मुणिसारी ॥१॥
 तुह पसाम णर-तउस कियत्थइ । करहि चह वि दुविहङ्ग गिह-गंथइ ॥२॥
 मुणिणाहें तं णिसुणि वि सुहयर । विणिय ताहि महब्दय-दुद्धर ॥३॥

धर्म दोनों भाइयों ने सुना और वे तपश्चरण पर अनुरागी हुए ॥५॥ जिनके तपश्चरण पर भाव हुए [ऐसे वे दोनों कुमार] मुनि को सुरक्षित छोड़कर अपने घर गये ॥६॥ परिजनों सहित स्वजन और मित्रों की वे सेवा करते हैं ॥७॥ सीतेली माता के कारण कुमारों के हृदय में उत्पन्न शल्य दूर ह्रद्दि / वे निःशल्य हुए ॥८॥ तेज से परिपूर्ण दोनों भाई अपने अपने बाहनों पर आरुढ़ हुए ॥९॥ और पुरजनों सहित नगर का मोह त्याग करके (नगर से) निकल गये । राज्य का उनके मन में क्षीभ उत्पन्न नहीं होता है ॥१०॥ वहाँ वे श्रेष्ठ चारित्र धारण करते हैं । उन्होंने निर्मल मन से अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन किया ॥११॥ वे भव्य-नव योजन, धन, परिजन, स्त्री और मित्र आदि की समस्त चिन्ता छोड़कर, गर्व विहीन, निविकार चित्त से अपना नरभव सफल करते हैं ॥१२-१३॥ जो लोभासस जीवों को भारते हैं वे हीन (अर्पण) और जो मिथ्यात्व तथा मदिरा के वशीभूत हैं वे क्षुब्ध होते हैं ॥१४॥ (जो) माता और मह रूपी रस के वशीभूत हैं, सप्त व्यसनों के भोगी हैं, वे विषम गाहैस्थिक-भार से जलकर निश्चय से क्षुब्ध होते हैं ॥१५॥ दीन-पंचेन्द्रियों के विषयों को ही महत्व देते हैं अपने चेतन (आत्मा) को महस्त्र नहीं देते (अतः) वे दुखी होते हैं ॥१६॥ जो सांसारिक लाखों योनियों में भ्रमते हैं वे असंख्य गृहस्थ दुखी दिलाई देते हैं ॥१७॥ जो दुर्लभ नरभव पाकर सुधर्म नहीं करता इस संसार में वह मनुष्य अजन्मा ही है ॥१८॥ आशाओं से कुतार्थ (रहित) ये दोनों भाई धन्य हैं, कन्दनीय और प्रशंसनीय हैं ॥१९॥ इस प्रकार वन में जाते हुए नगरवासी मनुष्यों के द्वारा उन कुमारों की प्रशंसा (स्तुतियाँ) की गयीं ॥२०॥ वे माघ मास में पल भर में तपोवन में वहाँ गये जहाँ सारिका-मैना पक्षी कलरव करते हैं ॥२१॥

घटा— उस विजन वन में उन्होंने निष्काम, सार स्वरूप मुनिराज को देखकर उनकी बन्दना की । इसके पश्चात् सुन्दर-सुखद वर्षों से किन्तु पूर्वक कहा—हे स्वामी (हमारी) उपेक्षा मत करो ॥१५-१७॥

[५-१८]

[अमरसेन-बहुरसेन को दीक्षा एवं परिजनों का व्रत-प्रहण-वर्णन]

हे मुनिराज ! लोगों को संसार-सागर से पार उतारनेवाली सार स्वरूप हमें दीक्षा दीजिए ॥१॥ तुम्हारे प्रसाद से गृहस्थ मनुष्य दोनों प्रकार के परिप्रहों का त्याग करके तप करते हैं ॥२॥ मुनिनाथ ने ऐसा

सिर-सेहर कर-कंकण-कुँडल । कडि-मेहल मुविकय भहि उज्जल ॥४॥
 वर-वत्थइ-कुसमह तणु-मंडण । पथ-णउरह विजाहं भहुरउ मणु ॥५॥
 उत्तारि वि लणेण महि मुक्कइ । जं णह-मंडल णहयल चुक्कइ ॥६॥
 तणु-संसार-भोय णिल्लिणहि । पडिगाहिस विक्ष साधणहि ॥७॥
 सयल उपाडि वि तहं सिर-चिहुरइ । भणि वि पंध-गुह हय बुह-चिहुरइ ॥८॥
 उणु फिउ-माइ-सयलु अतेजर । लहय विक्ष मुणि-पासह-सुहयर ॥९॥
 संसारासारलु गुलेणिणु । शिग इहु पारक्ष दिवसा उद्दिष्टु ॥१०॥
 अणेहिमि संगहिउसबंसणु । मुणि-पणविवि तहं बहु मलफंसणु ॥११॥
 केहिमि अप्पउ गरहिउ णिदि वि । गिह-वय-गिर्हियाइ जह-वंदि वि ॥१२॥
 णिय-णिय सत्तिए वज-तउ लेणिणु । गयसणि हेलणि मुणि-पणवेणिणु ॥१३॥
 एवाहि विणिवि भाय भुणीसर । तउ-तवेहि दुविसह लंडियसर ॥१४॥

घटा

जं तणु-उववासहि, बुत्तिमासहि,
 सो सिज्जइ मण-बुह-रहिउ ।
 अण सणु तं सुहयर, सोसिय भव-मलु,
 तउ पहिल्लु मुणिणा कहिउ ॥ ५-१८ ॥

[५-१९]

सावयहं गेह कालेण लहु । तं असणु-लेहि मुणिवर विसुद्धु ॥१॥
 आयम-भासिय रस-गिद्धि चत्त । अवमोयणु मुणु तं धीउ बुत्तु ॥२॥
 रसणेद्विय-पर णिरोहहि हेज । वत्थहु संखा जं करण भेज ॥३॥
 पसरंतज्ज वारह सक्य-चित्तु । तं वित्ति-आउ तउ इहु पवित्तु ॥४॥
 घय-पय-दहि-सक्कर-पमुह दब्ब । तहु णियमु करइ मुणि विगय-गव्व ॥५॥
 छह रस-णज्ज भुजहि मुणि-वरेव । रस-न्नाउ एउ तं बउ अणिद ॥६॥
 अणहु सयणासणु-थाण जोइ । णिवसह णउ सोवहु भञ्जु कोइ ॥७॥
 पर-सप्पर लग्गहि अंग जत्थ । सुहमह-जीवहं खउ होइ तत्थ ॥८॥

सुनकर उन्हें सुखकारी दुर्धर महान्नत दिये ॥३॥ (दोनों भाई) देह की शोभा रखनेवाले उज्ज्वल सिर के मुकुट, हाथों के कंभन, कानों के कुण्डल, कमर की करधनी, सून्दर वस्त्र, पुष्प, मधुर शब्द करनेवाले नूपुर और विद्याओं को पलभर में उतार कर पृथिवी पर वैसे ही त्याग देते हैं जैसे आत्माहात्मी विक्रान्त आकाश नण्डल को क्षण भर में त्याग देते हैं ॥४-६॥ शरीर और सांसारिक-भोगों से वे उदासीन हो जाते हैं और दीक्षा ले लेते हैं । अन्य हैं (वे) पंच परमेष्ठों का नाम स्मरण करके बिना दुःखी हुए सिर के केश उखाइते हैं । केश-लौंच करते हैं ॥७-८॥ इसके पश्चात् (दोनों भाइयों के) माता-पिता और अन्तःपुर के लोगों ने मुनि के पास सुखकारी दीक्षा ली ॥९॥ संसार को असार जानकर अनेक राजाओं और राजियों ने दीक्षा ली ॥१०॥ इतर जनों के द्वारा मुनि को प्रणाम किया जाकर सम्यशदर्शन ग्रहण किया गया । दोषों में फँसे हुए किन्हीं लोगों ने आत्म-निन्दा-गहरी की और मुनि को प्रणाम करके गृहस्थ के व्रत ग्रहण किये ॥११-१२॥ अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार व्रत और तप ग्रहण करके मुनि को नमस्कार करते हुए सभी शीघ्र चले गये ॥१३॥ इस प्रकार मुनीश्वर दोनों भाई निष्काम होकर दोनों प्रवार के तप तपते हैं ॥१४॥

घटा—वे दुःख रहित मन से दो-दो, तीन-तीन मास के उपवास करते हुए सोते हैं । भव-भ्रमण-दोष को सुखाने हेतु सुखकर अन्सन करना मुनि ने प्रथम तप बताया ॥५-१८॥

[५-१९]

[बद्रसेन-बहुरसेन का आहार-तपाच्चरण-वर्णन]

मुनि-अमरसेन-बहुरसेन आहार-बेला में श्रावक के घर विशुद्ध आहार ग्रहण करते हैं ॥१॥ रसों की गृद्धता का त्याग करके भूख से कम खाना (ऊनीदर / अवसीदर्य) आगम-भाषित दूसरा तप कहा है ॥२॥ रसना-इन्द्रिय अन्य इन्द्रियों के निरोध का हेतु है । वस्तु-संख्यात्मक उसके भेद हैं ॥३॥ चित्त-प्रसार का निवारण करना, धन त्यागना पवित्र तप है ॥४॥ धी, दूध, दही, शब्दकर आदि प्रमुख द्रव्यों का वे मुनि गर्व रहित होकर नियम लेते हैं ॥५॥ वे श्रेष्ठ मुनि छहों रसों को नहीं भोगते । अनिद्य रस-परित्याम तप यही है ॥६॥ वे जहाँ कोई दूसरा भव्य नहीं सोता ऐसे एकान्त स्थान में सोनेबैठने का स्थान देखकर रहते हैं ॥७॥ जहाँ अंग परस्पर में लगते / स्पर्श करते हैं वहाँ सूक्ष्म-जीवों का क्षय होता है ॥८॥

इय मुणिविवि सत्तासत्त-सार । कीरंति जह्नसर बुणिवार ॥९॥
तद्दमूलि सिलायलि गिरि वर्णन्ति । णिथ तणु-तिणसज मुणिवर गणन्ति ॥१०॥
रवि-कर-उणहालहु सिसिर-सोउ । तद्द-तलि णिवसहि वरिसंति बीउ ॥११॥
बंडासणि-मडपासणि असंक । बज्जासणि वसहि विगयपंक ॥१२॥
पोभासणि-गोबोहासणम्मि । छह विहु वरि रत्तहु विर-मणम्मि ॥१३॥
मुणि अभरसेणि-वरसेणि तहि । आभितर-तउ पुणु सा करेहि ॥१४॥

श्लोक

विणु पायचिलत्ते, भाया अत्ते,
तउ-चिसुदु णउ होइ इह ।
पुणु वंसण-जाणहु, चरण-यहाणहु,
गुण परमेडिहि विणउ इहु ॥ ५-१९ ॥

[५-२०]

गणहु गलाणहु पाठ्य-मुणिवर । वह-विहु वहयावच्च णिह्य-सर ॥१॥
आयम-सत्ता सामु गिरंतर । करहि तपि-सज्जार-चुरियहु ॥२॥
तणु-चायं रघण-तउ भावहि । अस्म-मुक्क-ज्ञाणहु महि ज्ञावहि ॥३॥
इय बारह-विहु तउ पालंतहु । पुञ्चक्षिय कम-मलु खालंतहु ॥४॥
भद्रहु धस्म-पंथि लायंतहु । महि विहरहि तित्यहु वंवंतहु ॥५॥
बारि णिओय विलि भावंतहु । सुय-विहाणु लोयहु भासंतहु ॥६॥
बोहित्र सयलु लोउ जिण-धस्महि । मिछ्छदंति मजणिहि हरि-जाणहि ॥७॥
संपत्तहु देवगिहि रघणी । घण-कण-ज्ञावहु वेस-परिपुणी ॥८॥
देवसेणि तह पहु णिक-माणउ । देवसिरिय णिय भउज समाणउ ॥९॥
थिय सिहासण णिय सहु जुतउ । बणवालु वि इत्थंतरि पत्तउ ॥१०॥
फल-फुलहु गवलल भरि ढल्लरि । शरवहु अग्गहु वरि णहु णिय सिरि ॥११॥
भो णिक तव णंवणदणि मुणिवर । सम्मावियाहु वे लोयहु सुहयर ॥१२॥
आणंवभेरि देवावियाहु । ते सद्वै पुरयण सम्मावियाहु ॥१३॥

इस प्रकार सत्य और असत्य का सार जानकर वे मुनि दुर्निवार तप में केलि करते हैं ॥६॥ वे मुनि अपनी देह को तृण के समान गिनते/मानते हैं। सूर्य की किरणें तपने पर (ग्रीष्म में) वे पर्वत पर, बृक्ष तले शिलातल पर, शिशिर की शीत में पर्वत पर और वर्षाकाल में वृक्षों के नीचे रहते हैं ॥१०-११॥ दोष-रहित वे बन में रात्रि में बिना किसी शंका के दण्डासन मृतकासन, बज्जासन, पल्यकासन, पद्मासन और गोदोहासन इन छह आसनों से स्थिर मन से रहते हैं ॥१२-१३॥ इस प्रकार मुनि अमरसेन-बहरसेन वहाँ आभ्यन्तर तप करते हैं ॥१४॥

घता—बिना प्रायशिक्ति और मायात्म्याग के यहाँ विशुद्ध तप नहीं होता। वह प्रधानतः दर्शन, ज्ञान, चारित्र और गुण तथा परमेष्ठियों की विनयपूर्वक होता है ॥५-१६॥

[५-२०]

[मुनि अमरसेन-बहरसेन का आभ्यन्तर तप एवं राजा देवसेन का उनकी वन्दनार्थ आगमन-वर्णन]

[वे दोनों मुनि] संघ के थके हुए या बीमारी से ग्रस्त पीडित उपाध्याय और (अन्य) मुनियों की दस प्रकार से वैथावृत्ति करते हैं ॥१॥ शाश्वत आगम-शास्त्रों का पापहारी निरन्तर स्वाध्याय-तप करते हैं ॥२॥ देह-त्याग करके भी रत्नश्रय को भाते हैं (कायोत्सर्ग करते हैं) और पृथिवी पर धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ध्याते हैं ॥३॥ इस प्रकार बाहुप्रकार का तप पालते हुए पूर्वकृत कर्म-मल धोते हैं ॥४॥ पृथिवी पर विहार करते हैं, तीर्थों की वन्दना करते हैं और भव्यजनों को धर्म-पथ पर लाते हैं ॥५॥ चारों अनुयोगों को हृदय में भाते हैं [और] लोगों को शास्त्रोक्त रीति से श्रुत समझाते हैं ॥६॥ उन्होंने सभी लोगों को जैनधर्म से सम्बोधित किया। उनका मिथ्यात्म वैसे ही शान्त हो जाता है जैसे सिंह का बंध होते ही हाथी मीन हो जाते हैं ॥७॥ (वे) वन-धान्य और लोगों से परिपूर्ण देश के सुन्दर देवालय में आते हैं ॥८॥ राजाओं से सम्मानित राजा देवसेन अपनी भायी (सहित) वहाँ आया और दोनों अपने सिंहासन पर बैठे। इसी बीच बनपाल आया ॥९-१०॥ (उसने) नए फूल और फलों से भरी टोकरी राजा के आगे रखकर और अपना सिर झुकाकर (कहा)—हे राजन् ! आपके नन्दन-वन में लोक की सुखकारी दो मुनिराज आये हैं ॥११-१२॥ (राजा) आनन्द-भेरी बजवाता है,

णिय परियण-पुरवण संजुत्तउ । गउ मुणिवर-वंदण णय-भत्तउ ॥१४॥

घत्ता

मुणि वंदिउ राष्ट्रहि, मण-वय-कार्यहि,

कहि मुणि घम्मु हम्म-हियउ ।

तं सुणिवउ मुणि, पभणइं पहु सुणि,

सम्मद्वंसण

बम्ह-हउ ॥५-२०॥

[५-२१]

ध्रुवक

पणवीसहि बोसहि, पमणिय सत्यहि,

वज्जिउ वंसण-वज्जरिउ ।

तहि तं तहि बोहिउ, अरिउ वि सोहिउ,

तं विणु णहिय णाणु-वरिउ ॥ ७ ॥

पुष्ट्रे जिण-ईरिउ जिण-हरहि । गणहरहं कहिउ मुणिवरहं तेहि ॥१॥

मुणिवरह कहिउ बुह-सावयेहि । तेहि वि भाविउ णिय भाव एहि ॥२॥

तं सम्मद्वंसणु पुज्जणिज्जु । पाहाणहं जिहं मणि-णाअवज्जु ॥३॥

गय लब विरुहं तेण जुत्तु । घण-रहिउ वि सो महि पूरि-विसु ॥४॥

णिकिरियहं किरिया-तथ-वयद्वृ । बुह-अगोसकु पुणु होइ मूहु ॥५॥

पिय-वज्जिय जिहु कुल जुवइ सिटु । कुल-तिय-विणु जिह घर विटु णटु ॥६॥

तहं सम्मतुजिय वाण-पूय । उववास-प्यमुहु सयलाविरुव ॥७॥

तं कारणेव सम्मतु-पुष्ट्र । भव्ययणहं अवखनि ताइं सथ्य ॥८॥

जिणपूया-फलु इय कास जाउ । तं पढमु भणनि हय-दुरिय-भाउ ॥९॥

इह जंवूदीउ सुरविसि विदेहि । वर अज्जखंडे णह-लग-गेहि ॥१०॥

कच्छावद्वैसहि पुरि सुसीम । णं विहिणा णिम्मिय सोष्ठासीम ॥११॥

धरदत्तु णाउं पुह-ईसु तित्थु । चक्केसभूमि मंडिउ पसत्थु ॥१२॥

अणहि विणि सो वणवालएण । विणत्तु कुसुम-फल-करभ-एण ॥१३॥

सिवधोलु णामु तित्थयह णाहु । समवसरण-सिरि-सोहिउ-अवाहु ॥१४॥

भेरी की आवाहन से इश्वर आ जाते हैं ॥१३॥ राजा एकत्रित हुए परिजन और पुरजनों के साथ मुनियों की बन्दना तथा पाद-भक्ति के लिए गया ॥१४॥

धत्ता—राजा ने मन, वचन और काय से मुनियों की बन्दना की और मूनि से अपने लिए हितकारी धर्म-समझाने का निवेदन किया। निवेदन सुनकर मूनि कहते हैं—हे राजन् ! सुनिए—सम्यगदर्शन अशुभ-हारी है ॥५-२०॥

[५-२१]

[अमरसेन-बहुरसेन मुनि का देवसेन के देश में आगमन एवं देवसेन को सम्यगदर्शन तथा जिनेन्द्र पूजा-फल-वर्णन]

ध्रुवक—शास्त्र-प्रमाणित दृढ़-सम्यगदर्शन पञ्चीस दोषों से रहित होता है। ऐसे सम्यगदर्शन के होते ही सम्यगज्ञान और सम्यक्चारित्र सुशोभित होते हैं, उसके बिना ज्ञान और चारित्र नहीं होते ॥७॥ वह सर्व प्रथम जिनेन्द्र ने गणधरों को कहा पहचात् उनके द्वारा वह मुनियों को कहा गया ॥१॥ मुनियों ने विद्वान् श्रावकों को कहा और उनके द्वारा अपनी भावना के अनुसार विवेक पूर्वक ग्रहण किया गया ॥२॥ हे राजन् ! पाषाणों में नागवज्रमणि जैसे सम्यगदर्शन को पूजो ॥३॥ इससे जिसका रूप नला गया है वह कुरुप रूप युक्त हो जाता है, निर्धन-धनवान् बन जाता है ॥४॥ निष्क्रिय जन के तप और व्रत-क्रिया बढ़ती है, मूर्ख-पण्डितों में अद्येतर हो जाता है ॥५॥ पति के त्याग देने से जिस युवा कुलीन स्त्री के बिना धर की वृद्धि नष्ट हो जाती है, इससे वह कुलांगना प्राप्त हो जाती है ॥६॥ सम्यकत्व के बिना सभी प्रमुख दान, पूजा और उपवास आदि नहीं शोभते ॥७॥ इसी कारण से जिन भव्य जनों को सम्यक्त्वपूर्वक की गयी पाप-भावहारी जिन-पूजा का फल उत्पन्न हुआ है उसे सर्व प्रथम कहता हूँ ॥८-९॥ इस जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र की पूर्व दिशा में आर्योष्ठ में नभस्पर्शी भवनवाली कच्छावती देश को सुसीमा नगरी है, वह ऐसो प्रतीत होती है मानो सुख की सीमा स्वरूप विधाता ने उसकी रचना की हो ॥१०-११॥ प्रशस्त चक्रवर्ती की भूमि से सुशोभित उस नगर का वरदत्त नाम का राजा था ॥१२॥ किसी एक दिन बनपाल ने हाथ में फल-फूल लाकर विनय की ॥१३॥ हे स्वामी ! शिवधोष नाम के तीर्थेकर की सुशोभित एवं अवाधित समवशरण-लक्ष्मी नगर के बाहूर पर्वत की तलहटी में आकर

पुर-वाहिर गिरि-तरि आह थक्कु । तस्सुसु सुणि वि भासि गुरुक्कु ॥१५॥
गउ परियोग जुज पुहइ-राऊ । ते भत्तिए वंदिड बीयराऊ ॥१६॥
पुण धम्माहम्महो तणिय वत । सुहवाहिण वहु दुहरासि चत ॥१७॥
छह-दव्व-पथस्थहे सस्त-तत्त्व । भासियहे सउच्छह सहु वि सच्छ ॥१८॥
आ अचलह पहुता सुरह-राऊ । देवीउ-विणि सम-सरणि आऊ ॥१९॥
जिणु णदिवि पहटाहव वि पासु । तहं णिव वि णरेसहु जा उहासु ॥२०॥

घना

पुण्छह जिणदेवहु, वियस्तिय लेवहो,

सामिय महु मणि अच्छरित ।

बहुह काहि अण्ठिउ, एह उपच्छिउ,

बच्छर-जुयलउ सुहरित ॥ ५-२१ ॥

[५-२२]

कि पुत-मित-वर वंडु तत्प । जे जाघउ सुखह-णाह सत्प ॥१॥
जिणु चवह राय अहुणा वि जाय । ते कारणेण पच्छह समाय ॥२॥
तं सुणि जे पुण्णे सग्गि हूव । सध्वहं जणाहं आणंदु हूव ॥३॥
इह पुर वरि मालायारियस्स । पुतीउ विण्णो जायउहियस्स ॥४॥
कुसुमावलि-कुसुमलया हि हाणु । अण्णोण्ण-जेहु पालण-विहाण ॥५॥
कुसुमाहं वि लेप्पिणु पवि विणम्मि । पिउ डल्लउ-मूरि वि पुर-वरम्मि ॥६॥
आवंतहो मणि परित्थियस्स । सिहरविय जिणवर-भविरस्स ॥७॥
देहलिहि वि एकेक्कउ वि फुल । अरिझण पणामे सहु णवलु ॥८॥
जय-जय सव पडिविणु भणि वि जाहि । केहडउ काळु जा एम वाहि ॥९॥

घना

ता अण्णहि खासरि, पिय डल्लउ करि,

कुसुमत्ये भूह-सघणे ।

पियरहु आणा वस, कोङ हूल-रस,

ताउगय दाडिमिहि खणि ॥ ५-२२ ॥

[५-२३]

लहं कुसुम-विणंतहं कुसुम-एक्कु । लय-मज्जि दिट्ठु कुल्लउ-गुरुक्कु ॥१॥
अहमवि-अहमवि गिभु वि भणेवि । जिण-देहलि अच्छहि एकक जेवि ॥२॥

विराजमान हैं। उन गुरु से भक्तिपूर्वक सूत्र (आगम) सुनिएगा ॥१५॥ नगर का राजा परिजनों के साथ गया और उसने भक्तिपूर्वक वीतरागी की बन्दना की ॥१६॥ पश्चात् (गुरु ने) दुःख रागि की उन्मोचनी और सुखदायिनी धर्म-अधर्म सम्बन्धी वार्ता की ॥१७॥ वे छह दब्य, (नी) पदार्थ और सात तत्वों तथा सत्य को सोचकर कहते हैं/समझाने हैं ॥१८॥ प्रभुता से सहित स्वर्ग की दो अप्सरा-ईवियाँ स्वामी की शरण में आयीं ॥१९॥ जिनेन्द्र शिवघोष मुनि को नमरकार करके (गुरु) के समीप बैठ गयीं। राजा भी उनके पास जाकर उपहास करता है ॥२०॥

घसा—राजा निलिप्त भाव से मुनि से पूछता है—हे स्वामी! मेरे मन में आश्चर्य बढ़ रहा है। ये दोनों अप्सराएँ कहाँ से सुखपूर्वक उपस्थित हुई हैं? ॥५-२१॥

[५-२२]

[अमरसेन-बहुरलेन कृत अप्सराओं का पूर्वभव-वर्णन]

मुनि कहते हैं—हे राजन्! क्या पुत्र, क्या मित्र और क्या मकान मभी में ज्ञागड़ा है। इसीसे इन्द्र साथ नहीं आया है। ये (अप्सराएँ) अभी-अभी उत्पन्न हुई हैं इसी कारण से पीछे आई हैं ॥१-२॥ वह सुनो, जिस पूण्य से सभी लोगों को आनन्द हुआ और ये स्वर्ग में उत्पन्न हुईं ॥३॥ इसी श्रेष्ठ नगर में दोनों (एक) माली की पुत्रियाँ हुईं ॥४॥ कुसुमावलि और कुसु-मलता। इनमें कुसुमलता छोटी थी। इनका पालन-पोषण पारत्यगिक स्नेह से हुआ ॥५॥ वे प्रतिदिन इस श्रेष्ठ नगर में पिता की फूलों से भरी टोकरी लेकर आते हुए मार्ग में स्थित गगनचुम्बी शिखर बाले जिनमन्दिर की देहरी पर एक-एक नया फूल चढ़ाकर प्रणाम करती हैं और प्रतिदिन जय-जय स्वर कहकर जाती हैं। इस प्रकार इस स्थान पर कितना ही समय निकल जाता है ॥६-९॥

घसा—किसी दूसरे दिन पिता की आज्ञा-बश वे दोनों हाथ में पिता की टोकरी लेकर फूलों के लिए सघन वृक्षों में क्षणभर में किसी रस पूर्ण फलबाले अनार की ओर गयीं ॥५-२२॥

[५-२३]

[कुसुमावलि और कुसुमलता बहिनों की जिनपूजा, सर्पदेश से सरण तथा स्वर्ग-प्राप्ति वर्णन]

वहाँ फूल बीनते हुए एक लता में फूला हुआ बड़ा फूल दिखाई दिया ॥१॥ मैं भी लेती हूँ, मैं भी लेती हूँ कहती है किन्तु जिन-मन्दिर

जा करु-छित्तहं ता विसहरेण । एका बटी पुणु वीय लेण ॥३॥
 मुव जिणपूया-भावंतिथाउ । मरिउण समि सुर-जुबह जाउ ॥४॥
 पच्छाआगमणहं एउ हेउ । एयहं तत्य जि णव तणुआ-भेउ ॥५॥
 णिवडिउ अच्छइ इय सुणि वि धाय । पुञ्चहं पणवेपिणु जिणहं पाय ॥६॥
 सिचि वीयराय-पूया विहीनु । तप्पर जावाक्षण-गव-णिहीनु ॥७॥
 जो कुवि वसु-भेद-विही-समग्रु । विरवहं जिण-पूया संस-भग्रु ॥८॥
 तहु किं णव संभव होइ एस्यु । सिज्जाउ भध्यहं तुरियत परत्यु ॥९॥

घर्ता

अणु जि मगहाहिव, मणि-भाविय किव,
 मिच्छादिट्ठउ कोवि णह ।
 दीयेकर णामें, सुह-परिणामें,
 परिभर्मतु महि सो जिवह ॥ ५-२३ ॥

[५-२४]

सो गज पोयणपुर अण विणि । जिण-भवण-पइद्वउ जाइ खणि ॥१॥
 पोयणपुर-पहुणा महिम-किय । जिणणाहहु केरी दुरिउ-हय ॥२॥
 तं पिच्छि वि तें भणि सोउ किय । महु जन्म-णिरत्यउ सयलु गउ ॥३॥
 गउ विरहय एरित महिम-मया । कहया वि ज विद्वउ अण-कथा ॥४॥
 इय अण-सोयण-नुण पूरियउ । सो वेसि उकाले चोइयउ ॥५॥
 जखाहिउ जायउ विक्ष-तेउ । मुणिविदहं तं उवसगु-हेउ ॥६॥
 रविखय दावग्नि-जलंत जई । तम्हाउ चण्डिपिणु सुदु मई ॥७॥
 वेयद्व-णिवासी खदर-पहु । मुदिवोवय णामें विज्ज वहु ॥८॥
 पुणु जिण-अरुचण [पुणोण विवि । हुउ सणकुमार संभवि विभवि ॥९॥

घर्ता

तहुं आवि वि लंका उरिहि, णिउ भह रक्षु भय उपयलु ।
 महियलु भुंजि वि कालेण पुणु, हउ सिवउरि माणिकक वह ॥५-२४॥

की देहरो पर एक भी नहीं चढ़ा पाती ॥२॥ जिस हाथ से (कल) लेती हैं सर्प हारा डस लिया जाता है । पश्चात् दूसरी (बहिन) का हाथ भी उसी सर्प हारा डस लिया जाता है ॥३॥ जिन-पूजा को भाती हुई मरी और मरकर स्वर्ग में देव की देवियाँ हुई ॥४॥ पीछे आने का यही कारण है, और हे राजन् यही (उनके) शारीरिक-सौन्दर्य का रहस्य है ॥५॥ ऐसे बचन सुनकर पहले राजा मुनि के चरणों में प्रणाम करके पश्चात् बैठ जाता है ॥६॥ शीघ्र वीतराग (देव) की पूजा की । पूजा में आसक्त इसके अकृत नव (नी) निधियाँ उत्पन्न होती हैं ॥७॥ जो कोई संशय-रहित होकर आठ प्रकार की सामग्री से जिनेन्द्र की पूजा रचाता है/करता है, उसे व्या संभव नहीं होता । भव्य जनों को यहीं शीघ्र पदार्थ सिद्ध होते हैं ॥८-९॥

धत्ता—हे मगध नरेश ! किसी मिश्यादृष्टि मनुष्य को मन में ऐसी भावना कैसे (हो सकती है) । प्रीतंकर नाम का मनुष्य शुद्ध परिणामो होकर भी परिभ्रमण कर रहा है ॥५-२३ ॥

[५-२४]

[प्रीतंकर को पूजन-अनुमोदना-कल-प्राप्ति-बर्णन]

वह प्रीतंकर किसी दूसरे दिन पोदनपुर गया और क्षण भर में जाकर जिनालय में बैठ गया ॥१॥ पोदनपुर के राजा के हारा पापहारी जिन-नाथ की पूजा की गयी ॥२॥ उसे देखकर उसने मन में पश्चात्ताप किया (कि) मेरा सम्पूर्ण जन्म निरर्थक गया ॥३॥ मेरे हारा पूजा की ऐसी रखना नहीं की गयी । दूसरों के हारा की गयी भी कभी नहीं देखी गयी ॥४॥ इस प्रकार अनुमोदना-गुण से सहित वह उसी देश में असमय में मरा ॥५॥ (मरकर वह) दिव्य तेज से युक्त यक्ष देवों का स्वामी हुआ । मुनि संघ के उपसर्ग से दावाग्नि से जलते हुए मुनि संघ की रक्षा करके वह विशुद्ध बुद्धि इस पर्याय से चयकर मुदिदोदय नाम का विजयार्थ के निवासी विद्याधरों का स्वामी विद्याधर (हुआ) ॥६-८॥ इसके पश्चात् जिनेन्द्र की पूजा के एष्य से वैभवशाली सनत्कुमार स्वर्ग में उत्पन्न हुआ ॥९॥

धत्ता—पूजा के भाव रखकर वह लंकापुरी में आकर राजा के रूप में प्रकट हुआ । वह कुछ समय पुथिबीतल को भोग कर पश्चात् शिवपुर (गया) । कवि माणिक्क कहते हैं कि मैं भी शिवपुर पाऊँ ॥५-२४॥

इय महाराय सिरि अमरसेण-चरिते । वदवगा सुकृत-कहाम्यरसेण
संभरिए । सिरि पंडिय माणिक्यविरक्षए । साधु महणा-सुध-चउषरी देव-
राज णामंकिए । सिरि अमरसेण-वहरसेण-पावज्ज-गङ्गण सिरि महाराय
देवसेण-बंदण-भक्तिकरण । जिण-पूढा-धम्म-फल-णिसुणण-बणणां णाम
पंचम ह्रस्म परिक्षेत्र उपयत्ते ॥ ३७५ ॥

लावण्योपृत पूरपरितव्यु सौभाग्य-लक्ष्मीवितो,
मुक्ताहार विकासकास वशसा श्वेतोकृतासामुखः ।
श्रीमद्वीर-जिनेश-भाषित कथालापे प्रलीनश्रुतिः,
महणा साधु-सुतः सदाभिनंदतो कलौ देवराज नामा सुधीः ॥
॥ आशीर्वादः ॥



हिन्दी-अनुवाद

इस प्रकार चारों वर्ग की-कहने में सरल कथा रूपी अमृतरस से परिपूर्ण श्री पंडित माणिक्यक-कवि द्वारा साधु महणा के पुत्र देवराज चौधरी के लिए रचे गये महाराज श्री अमरसेन के इस चरित्र में अमरसेन-वद्वरसेन का प्रबज्यग्रहण, महाराज देवसेन की वन्दना, भक्ति और उनसे जिन-पूजा एवं धर्म-फल श्रवण-वर्णन करनेवाला यह पाँचवाँ परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ सन्धि ॥ ५ ॥

सौन्दर्य रूपी अमृत से शरीरवान्, सौभाग्यशाली, लक्ष्मीवान्, मोतियों के हार और फूले हुए काँस के समान शून्य यज्ञ से दिशाओं रूपी मुख को श्वेत (उज्ज्वल) रखनेवाला, बीर-जिनेन्द्र द्वारा भाषित कथा-आलाप सुनने में लीन कर्णवाला साधु महणा का देवराज नाम का विद्वान् पुत्र सदा आनन्दित रहे ॥

इति-आशीर्वादि

षष्ठम् परिच्छेद

सन्धि-६

ध्रुवक

एवाहं सुणि साहु, अरि-गय-आहु,
महणा-णंदण-अणि कहा ।

जिणवर-पूयहं फलु, भड-भेड जिसु,
त देवराज-चउथरि-हियसुकहा ॥ ४ ॥

[६-१]

जिण-अच्चणाहं इव भावणाहं । मण-हच्छिय सुर-पठ-पावणाहं ॥१॥
दब्दुद्व साउ काय वि विराउ । जि मण-न्य वि काउ जि कियउ-भाउ ॥२॥
हुउ सगि देउ सुरणिधर सेउ । मंदूय-केउ अच्छर-समेउ ॥३॥
समसरणि पत्तु भत्तिए णमंतु । सम्मइं कियंतु गुण-गण-युवंतु ॥४॥
मगहाहिवेण पिच्छे विहंदु । पुच्छिउ गणेकु-णाणें-विणेकु ॥५॥
युद्धिय-अमंदु मंदूय केउ । कि जाउ देउ गुण-गण-जिकेउ ॥६॥
मह कहहि भेउ गणि कहइ तासु । [कहइ कवि सुणि] संसयम-णासु ॥७॥
इह तउ पुरीहि अरि-भय-हरीहि । तहि भूरि वित्तु वणि णायदत्तु ॥८॥
तहो गुण-मणोज्ज भयदत्त-भज्ज । कय अटृशाणु वणि चत्त-पाणु ॥९॥
णिय घरस-पासि वावी-पएसि । जलि रविय काउ मंदूय-आउ ॥१०॥

घस्ता

हुउ जाहं सरणउ, मण-दुहयरणउ,
सो ददहुर सेठिणि-णिय वि ।

सम्मुहुउ-धावइ, सिरि-पठ वावइ,
आरडोइ अंचलु धरि वि ॥ ६-१ ॥

[६-२]

जहया-जहया सेट्टिणि वावइ । तहया-तहया सम्मुहु वावइ ॥१॥
तहु-भएण जल-कउज ण गच्छइ । अहणिसु चितंसी मणि अच्छइ ॥२॥

[६-१]

[देवराज चौधरी के निवेदन पर कवि द्वारा कथित मेढक-पूजा कथा वर्णन]

ध्रुवक—शत्रु लपी हाथी के लिए बाधा स्वरूप—साहु महणा के पुत्र चौधरी देवराज ने इस प्रकार जिनेन्द्र की पूजा का फल सुनकर, मेढक की जैसी कथा हुई उस कथा (के कहने का निवेदन किया) ॥४॥

(चौधरी देवराज कहता है हे माणिककराज !) जिनेन्द्र भगवान् की अर्चना और भावना से मन की इच्छा के अनुसार देवपद प्राप्त किया जाता है ॥१॥ शरीर से विरक्त होकर मन, वचन और काय से जिसने (जिनेन्द्र की पूजा का) भाव किया है, वह कोई प्रिय मेढक देव-समूह से सेवित तथा आसराओं सहित स्वर्ग में देव हुआ ॥२-३॥ वह वौर भगवान् के समवशरण में प्राप्त हुआ / गया, उसने भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हुए सम्यक् रूप से गुण-स्तुति की ॥४॥ चन्द्र स्वरूप भगव्य-नरेश श्रेणिक के द्वारा देखे जाने पर ज्ञान-दिवाकर गणधर से पूछा गया ॥५॥ हे गुण-समूह के आगार-गणधर ! अमन्द बुद्धि यह मेढक कौन है ? देव कैसे हो सकता ? ॥६॥ चौधरी देवराज ने कहा है कवि ! गणधर ने श्रेणिक से जैसा यह रहस्य कहा, मुझे कहो और मेरा संशय मिटाओ । कवि कहते हैं मुझे इन्हीं श्रेणिक राजा की नगरी में शत्रु-भय को दूर करनेवाला महान् धनवान् वणिक नागदत्त (था) ॥८॥ उसकी गुणों से मनोज्ञ भय-दत्ता भार्या (थी) । वणिक ने आत्मध्यान से प्राण त्यागे (और) अपने धर के पास वापी-प्रदेश में (बावली में) जल रमण करनेवाला कोई मेढक हुआ ॥९-१०॥

घट्टा—वह मेढक (पूर्वभव को) अपनी सेडानो का मन दुखाने उसकी शरण में जाता है । सामने होकर दौड़ता है, सिर तथा पैर दिखाता है तथा आँचल पकड़कर ऊपर चढ़ता है ॥६-१॥

[६-२]

[सुकृत मुनि से मेढक की क्रियाओं का कारण ज्ञात कर तथा उसे पूर्वभव का अपना पति जानकर सेडानी द्वारा स्नेह-प्रदर्शन-वर्णन]

सेडानी जहाँ-जहाँ आती है (वह मेढक) वहाँ-वहाँ आगे-आगे उचकता है / दौड़ता है ॥१॥ (सेडानी) उसके भय से पानी लेने नहीं जाती है,

एक वि बासरि सुव्यय णामे । णाणसय-जुतो हय-कार्म ॥३॥
रिसु-पुच्छिल दणि-भजनद चंद्रि वि । पुण् पुण् णारिहि जसमणु-पिंडि वि ॥४॥
सामिध मेउ लवणु कि कारणि । मुहु पिच्छि वि कुडि लग्गइ खणि-खणि ॥५॥
मुणिणा उतु सेठि अहिवत्तहो । वा कि पीडिउ तणु जिणभत हो ॥६॥
अटु-मरि वि भेयसणि-पत्तो । उपण्डउ णिययाय तुरतो ॥७॥
गोहु-वसे तब दंसणुमागइ । जाई सरणि मुण्डइ सम्मगइ ॥८॥
ता सेट्टिणिय बावार-विसायं । हा-हा कम्म-किल संजोयं ॥९॥
कि हमठु णाहु भवउ गय-भेयहि । सो दद्वुर घर आणिय मोर्यहि ॥१०॥
भूरि जलासण कहि रक्षित । जिणवर-भासित धम्मुपसिक्षित ॥११॥

घता

इय जिवसंतहु घरि-वावि तहो,
अज्ञ-दिवसि पहु मगहाहिव इहु ।

भल्लहु मेलावय-कारणेण,
दाविय जला-भेरि लहु ॥ ६-२ ॥

[६-३]

जिण-जला-भेरो-रव-वेय । भच्छु-लोउ पुण् चलिड-उयोयं ॥१॥
दद्वुरो वि जिण-पप-अच्छण-मणु । कमल-धरि वि बंतगिग-मुद्यय-मणु ॥२॥
मगिग चलेंते संकल जाणे । सेणिय तरय गइवि-पय-ठाणे ॥३॥
चण्पिल पाणहे मुष्कु-वराव । सुहभावे विवि देऊ जाऊ ॥४॥
इय मंडुकि-धयं कियु सो णिव । तासु वि अज्जपहि अच्छइ कय किव ॥५॥
भेकु वि विगय-विवेउ तिरिक्खो । जायउ सग्गि देउ पच्छक्खो ॥६॥

घता

इह विष्पहु तण्या, मृय णिय पुण्या, कुसुमंजलि वयहु लेणचिर ।
सुरवर-पउ वावि वि, पुण् तउ भावि वि, सिद्धि-गया णामेण सिर ॥६-३॥

रात-दिन मन में चिन्ता करती हुई रहती है ॥२॥ एक दिन बन में सेठ की पत्नी ने बार-बार नारि-जन्म की निष्काम करते हुए निष्काम, तीन जन्म के धासी सुक्रत नामक ऋषि से पूछा ॥३-४॥ हैं स्वामी ! इसमें क्या रहस्य है, क्या कारण है ? (जो कि यह) कुटिल—(मेंढक) धर्ण-क्षण मेरे पीछे लगा रहता है ॥५॥ मूनि के द्वारा उत्तर दिया गया—वह सेठ नामदत्त है । इस जिनभक्त को क्या शारीरिक-नीड़ा दी थी ॥६॥ वह आर्तध्यान से मरकर मेंढक की देह में उत्पन्न हुआ और तुरन्त अपनों के (पास) आया ॥७॥ स्नेह वश तुझे देखने शरण में आता है, ऐसा जानो ॥८॥ वह सेठानी भयदत्त अपने कुल्य पर खेद करती है (और विचारती है) हाय ! हाय ! (यह) उपाजित कर्मों का संकोग है ॥९॥ हमारे स्वामी ही जाकर मेंढक हुए हैं, (इस विचार से वह) मेंढक को सहर्ष घर लाकर उसे जहाँ गहरा पानी था वहाँ रखा तथा जिनेन्द्र के द्वारा कथित धर्म की शिक्षा दी / सिखाया ॥ १०-११॥

घट्टा—इस प्रकार उसके घर बाबली में रहते हुए एक दिन यहीं मगध नरेश (श्रेणिक) आये । (उन्होंने) भव्य जनों को एकक्रित करने के लिए शोध्य यात्रा-भेरी बजवाई ॥६-२॥

[६-३]

[मेंढक को जिन-पूजा-फल-प्राप्ति-वर्णन]

जिन-यात्रा-भेरी की आवाज से भव्य लोग सूर्योदय होते ही चले ॥१॥ मेंढक भी जिनेन्द्र के चरणों की पूजा करने के भाव से हर्षित मन से दाँतों के अग्रभाग से कमल-पुष्प को पकड़कर मार्ग में चलते हुए संकीर्णता ज्ञात कर राजा श्रेणिक के हाथी के पैरों में जाकर पिचल गया और बेचारा वृश्च भावों से प्राण-त्याग करके स्वर्ग में देव हुआ ॥२-४॥ हैं राजन् ! इसलिए उसने ध्वजा में मेंढक अंकित कर रखा है । इसने आज भी अच्छा कुल्य (काम) किया है ॥५॥ प्रत्यक्ष देखो विवेक-रहित तियंच मेंढक भी स्वर्ग में देव हुआ ॥६॥

घट्टा—यहीं कोई श्री नाम की आहुण की युशी ने कुसुमांजलि-व्रत लेने के पश्चात् निज मरण करके शोध्य सुरेन्द्र का पद पाया । इसके पश्चात् तप करके सिद्ध-गति को प्राप्त हुई ॥६-३॥

[६-४]

जह तं वत्र आवरित णरेसर । तहं ससमित्तज भाणि-जिणेसर ॥१॥
 जंदूदीक्षिं हुब विदेहहि । सोक्षा-सरि-वाहिण ताहं सोहर्हि ॥२॥
 मंगल-किसए रथणसंचय-पुरि । वज्जसेण णिव पिय अगोसरि ॥३॥
 णाम जयावह सा एकहि विण । पासायहो सिरि संछिय सामिण ॥४॥
 सहिय-समाणी जा दिसि जोबइ । णवर-मग्गि[ता]णियणह छोबइ ॥५॥
 ता पाढ्यवर-माँझर-हाँता । पांडिङ-करताल-हणता ॥६॥
 अपरंपर-बुद्ध्यण-बवंता । तण-धूसरिय गयण-फालंता ॥७॥
 पुरयण-सिसु-णिगंथ-पेच्छंती । सुय-जम्मणु माजसि इच्छंती ॥८॥
 महुदुक्खें पुणु अंसु-मूयंती । पिच्छि वि पिय राएण तुरेती ॥९॥
 पुज्जिय किं कारणु तास-महियइ । भासिउ बाजम्म वि तहु सुहियइ ॥१०॥
 सुय-जम्मणु पिच्छइ दुह-घाइय । णिक अच्छइ राणिय उम्माइय ॥११॥
 ता घरबइ दुह-उवसमणत्थे । जिणहुरि जीय वेखि-परमत्थे ॥१२॥
 वीयरात्र तहं अंचित-भावे । फेडिय रोय-सोय-संतावे ॥१३॥
 पुणु सुयसायह वंदि वि रिसिवह । परि पुच्छइ णरेसु चिताउर ॥१४॥

धत्ता

पियरणिहि-मुलो, वंसहं जुत्तो, होही वह णड होइ मुणि ।
 अंपहु आकेसर, जय-लच्छी वह, होसइ र्णवणुराय मुणि ॥ ६-४ ॥

[६-५]

बंदेप्पिणु भक्षिए रिसह-पाय । संतोसपरायणस गिहि अथ ॥१॥
 कम्बवय दिणेण णंदणुपजाउ । सुहुवद्धिय-परियण-बहुरि-ताउ ॥२॥
 सिसुभावि पढाविउ पवर-सत्थु । पूरिय राणिहि इच्छा-पसत्थु ॥३॥
 णामेण रथणसेहलु गुणालु । सुहि णिवसंतंहो जा जाइ कालु ॥४॥
 ता वणकोला संपत्तयासु । खगु इक्कु णहुहु ओयरि वि तासु ॥५॥
 मिलिलउ बोहि मि बंसणेण-मोहु । अंचित्त मण-गय-चित्ता-णिरोहु ॥६॥

[६-४]

[राजा वज्रसेन को अमरसेन मुनि द्वारा कथित कुसुमांजलिकाम्, कथा]

हे राजन् ! जहाँ वह व्रत आचरित हुआ उसे जिनेश्वर ने संघोप से (इस प्रकार) कहा है ॥१॥ जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी की दायी और मंगलावती देश की रत्नसंचयपुरी में राजा वज्रसेन की परमप्रिय जयावती नाम की पटरानी एक दिन महल के ऊपरी भाग पर बैठकर सहेली की आगमन दिशा में, नगर-मार्ग में घूल-धूसरित देहवाले, बहु दुर्वचन कहते हुए, भूमि लाँघ-लाँघ कर चलनेवाले मन्दिर के अध्यापक को हाथ से पोट-पीट कर समर्पित छात्रों को ले जाते हुए देखती है ॥२-३॥ पुरजनों के नगन बालकों को देखते हुए (कह) मन में पुत्र-जन्म का इच्छा करती है ॥४॥ इसके पश्चात् महाभूत से आँसू बहाते हुए वह तुरन्त पति के द्वाग देखी गयी और पूछी गयी कि हृदय-व्रास का क्या कारण है ? उसने भी कहा कि आजन्म से मुखी हूँ ॥५-६॥ पुत्र-जन्म दुःखकारी दिखाई देता है । राजा उत्मादित होकर रानी से कहता है ॥६-१॥ वह राजा दुःख उपशमन करने और परमार्थ के लिए रानी को जिन-मन्दिर ले गया ॥६-२॥ वहाँ (उसने) रोग, शोक और सन्ताप मिटानेवाले वीतराग की भाव-पूर्वक पूजा की ॥६-३॥ पश्चात् श्रेष्ठ ऋषि श्रुतसागर को नमस्कार करके राजा चिन्तित हृदय से पूछता है ॥६-४॥

घर्ता—हे मुनिराज ! माता-पिता की निधि, वंश के योग्य पुत्र होगा अथवा नहीं ? मुनि कहते हैं—हे राजन् ! विजयलक्ष्मी का वरण करने-वाला चक्रवर्ती पुत्र होगा ॥६-४॥

[६-५]

राजा और रानी श्रुतसागर ऋषि के चरणों की भक्तिपूर्वक वन्दना करके संतुष्ट होकर घर आये ॥१॥ कुछ दिनों बाद परिजनों के सुखों की बृद्धि करनेवाला और वैरियों का सन्तापकारी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२॥ शिशु-अवस्था में ही उसे श्रेष्ठ शास्त्र पढ़ाये और रानी की प्रशस्त इच्छाओं की पूर्ति की ॥३॥ रत्नशेखर नाम से गुणवान् (पुत्र के साथ) सुख-पूर्वक रहते हुए सुखपूर्वक समय व्यतीत होता है ॥४॥ उस रत्नशेखर को वन-कीड़ा के समय एक विद्याधर आकाश से उत्तर कर प्राप्त हुआ मिला ॥५॥ दोनों एक दूसरे से मिले, (परस्पर) दर्शन से मोह हुआ

संभासणु विहि अण्णोणण सिटु। विणि वि संजाया परम-इटु ॥७॥
 मणिसेहरेण तासु जि पउतु। को तुहुँ कहि आवउ कासु पुलु ॥८॥
 तुह-उप्परि बद्दह भूरि गेहु। खयरेसु आवह ता बज्जगेहु ॥९॥
 खगगिर-दाहिण-सेहि रम्भु। जगवम्भु राउण परमधम्भु ॥१०॥
 विणयादेबो विय हज जि पुतु। घणवाहणु णामें थलणि उत्तु ॥११॥

घस्ता

महु देविणु णिव-सिरि, राणउ गउ गिरि,
 शो विह तउ-पंथमिम विड ।
 महु पुणुस पयावें, कय खउ-भावें,
 लगो लेय-बक्कु जिड ॥ ६-५ ॥

[६-६]

णिय हज्जाइ गवणु-विहरंतउ। णह-जाणहो खलणे हहु पत्तउ ॥१॥
 तुहुँ विटुउ पह-पुच्छउ बहयरु। भासिड णिरहसेसु महु हियरु ॥२॥
 तुहुँ पुणु णिय वित्ते तु पवासहि। जणणि-जणणु-पुरजामुहभासहि ॥३॥
 सो चवेह इय मणिसंचयपुरि। पहु पविसेणु जिणिय संगरि अरि ॥४॥
 णदणु हजे मणिसेहरु जायउ। वणकीला-कारणि इह आयउ ॥५॥
 दोहिमि अह-मित्तत्तणु वटिढउ। परसप्पर-णेहेण रसटिढउ ॥६॥
 मेह-जिणालय-बंदण-इच्छा । महु मणि अहणिसु होइ सुणिच्छा ॥७॥
 घणवाहणु जंपहि णह-जोणहि। चहु वेयं महु पुच्छ विमाणहि ॥८॥
 तं णिसुणि वि अक्षह मणिसेहरु। णिय विमाणु जह होइ सुहायरु ॥९॥
 तेणाक्षहि वि जिणालह-बंदमि। पर किय णह-जाणहि णाणंदमि ॥१०॥

घस्ता

ताते तह मंतो, दिणन महंतो, आराहिड मणिसेहरेण।
 दिज्जागणु-सिद्धउ, भुदणि पसिद्धउ, किज विमाणु तोहणु लणेण ॥६-६॥

दोनों ने मन की चिन्ताओं का निरोध चाहा ॥६॥ परस्पर में बातचीत करके वे दोनों परम मित्र हो गये ॥७॥ मणिशेखर के द्वारा पूछा गया कि तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? और किसके पुत्र हो ? ॥८॥ तुम्हारे ऊपर बहुत स्नेह बढ़ रहा है । यह विद्याधर उस वज्रामार रन्धोखर से कहता है ॥९॥ विजयाद्वं पर्वत की रम्य दक्षिणश्रेणी में परम धर्मात्मा राजा जयवर्मी हैं ॥१०॥ उनकी प्रिया विजयादेवी का मैं पुत्र हूँ । वक्ता से घनबाहन नाम से कहा जाता हूँ ॥११॥

घन्ता—राजा (जयवर्मी) मुझे राज्यलक्ष्मी देकर पर्वत पर गये और द्विदिव तपवाले मार्ग में स्थिर हुए । पश्चात् भार्यशाली मैंने क्षमा भाव से तलवार के द्वारा विद्याधरों को जीता और चक्रवर्ती हुआ ॥६-५॥

[६-६]

[मणिशेखर की स्वर्ण निर्मित-यान से मेरे जिनालय-वन्दना
इच्छा एवं यान-रचना]

अपनी इच्छानुसार आकाश में विहार करता हुआ आकाशगामी यान के स्खलित हो जाने से यहाँ आ पहुँचा हूँ ॥१॥ तुम्हारे दिलाई देने पर प्रजा ने पूछा—वैरो है, (तब) मैंने सम्पूर्ण (वृत्त) कहकर (तुझे अपना) हितैषी बताया ॥२॥ अब आप अपना वृत्तान्त (परिचय) प्रकट करो, माता-पिता और नगर बताओ ॥३॥ वह मणिशेखर कहता है—इस रन्ध-संचय नगरी में राजा वज्रसेन ने युद्ध में शत्रुओं पर विजय की ॥४॥ मैं मणिशेखर पुत्र हुआ, वनक्रीड़ा के लिये यहाँ आया हूँ ॥५॥ दोनों में पारस्परिक बहु स्नेह से अधिक मैत्री भाव बढ़ा ॥६॥ (रन्धशेखर ने कहा मित्र घनबाहन) सुनो ! मेरे मन में शातदिन मेरु पर्वत के जिनालयों की कन्दना करने की इच्छा होती है ॥७॥ घनबाहन कहता है—शीघ्र मेरे आकाशगामी-इच्छानुसार गमनशील विमान पर चढ़ो ॥८॥ घनबाहन से ऐसा सुनकर मणिशेखर कहता है—यदि सुखकारी अपना विमान हो तो उस विमान पर चढ़कर जिनालयों को बन्दूँ । पराये आकाशगामी यान से मुझे आनन्द नहीं आता ॥१०॥

घन्ता—इसलिए मणिशेखर के द्वारा बहुत दिन मन्त्र की आराधना की गयी । सिद्ध हुई विद्या ने पल भर में लोक में प्रसिद्ध सुशोभित विमान की रचना की ॥६-६॥

[६-७]

तमिस चडि वि कंचणगिरि-जिणहर । अहङ्कार्दीवहि ते रह मणहर ॥१॥
दो असेस वंदि वि अंचेपिणु । सिद्धकूड-जिणमंविरि एपिणु ॥२॥
पूजि वि जिणहु जाम उवबिट्ठा । तातहि दिट्ठा कण्ण-मणिट्ठा ॥३॥
मयणमजूसा णाम किसोयरि । जिणु-पूजंती मयण-हलीदरि ॥४॥
मणिसेहरहु णिय-विसामो-हिय । मयण-सरेहि खिति वि रोहिय ॥५॥
ता कण्णा-जण्णे वित्तंतो । परियाणि वि णियन्गेहि समिसी ॥६॥
मणिसेहरु णेपिणु घर-घटिपउ । पुणु वि सयंबरु पट्ठणा रोपिउ ॥७॥
जणमय-पञ्चाय-कारणे लेयर । आहुया सयल वि लच्छोहर ॥८॥
खिहिय सयंबरि रयणासिहर सिरि । आला-कय घल्लय तेणहु सिरि ॥९॥
ताम वियच्चर सयल विरुट्ठा । असि घर-घारइ तेण णिरुट्ठा ॥१०॥
पाहुडकय ते सरण पइट्ठा । ते परिणय तं कण्ण-मणिट्ठा ॥११॥

घस्ता

कङ्गवय-विण-पञ्चाहं, पुणु कप णिच्छाहं,
णिय उरि गज पिय मत्त जुउ ।
विट्ठुउ तहं जुयलउ, णह-पव खिमलउ,
भजजाहं रहु भसी-झमुउ ॥ ६-७ ॥

[६-८]

घणवाहणु-मणिसेहरसप्पिउ । अणाहि दिणि कंचण-सिहरिहि गउ ॥१॥
तहं वंदि वि चारणु अमिथगई । घम्महु वि णिसुणि वि सुद्धमई ॥२॥
तं पुच्छउ णिय पुणाय सळ । जं पुरह रज्जु-लद्य अजेउ ॥३॥
णेहुहु-कारणु मित्तहो पियहि । आहासइ तासु जईसु तहि ॥४॥
तहं भरहहि मंगलवह-णयरि । संभव-जिण तिल्य णिहिति अरि ॥५॥

[६-७]

[मणिशेखर की निज विमान से अडाई-द्वोप वन्दना तथा
मदन-मंजूषा-परिणय वृत्त वर्णन]

वे दोनों (मणिशेखर और घनवाहन) उस विमान पर चढ़कर सुमेह-पर्वत और अडाई-द्वोप के मनोज सम्पूर्ण जिमालयों की वन्दना तथा अर्चना करके सिद्धकूट के जिन-मन्दिर में आये ॥१-२॥ जिनेन्द्र की पूजा करके जैसे ही बैठे कि वहाँ उन्हें जिनेन्द्र की पूजा करती हुई कामोत्पादिनी मदनमंजूषा नामक कृशोदरी मनोज कन्या दिल्लाई दी ॥३-४॥ वह (कन्या) मणिशेखर को अपने हृदय में विश्राम देकर काम-वाणों से चित्त में संरोधित हो गयी ॥५॥ उस कन्या ने अपने घर आकर माता-पिता को वृत्तान्त की जानकारी दी ॥६॥ राजा के हारा मणिशेखर अपने घर (राजभवन) ले जाया गया और गोका गया तथा स्वयंवर रचाया गया ॥७॥ जनमत के प्रत्यक्षीकरण हेतु लक्ष्मी के भण्डार समस्त विद्याधर बुलाये गये ॥८॥ स्वयंवर में उस श्रेष्ठ कन्या ने भी रत्नशेखर के सिर में माला पहिनायी ॥९॥ सभी (आये) विद्याधर उसके विरुद्ध हो गये । तब तलबार लेकर उस रत्नशेखर हारा व रोके गये ॥१०॥ व उम्हार देकर (रत्नशेखर की) शरण में आये और रत्नशेखर ने उस मनोज कन्या को विवाहा ॥११॥

घन्ता—कुछ दिन पश्चात् कृत मिश्चय के अनुसार प्रिया सहित अपने नगर गया । वहाँ निर्मल आकाश में भक्त-पत्नी के साथ यह युगल देखा गया ॥१२-१३॥

[६-८]

[घनवाहन को राज्य लाभ तथा मणिशेखर का प्रिया में स्नेह होने का कारण बताने के संदर्भ में अमितगति मुनि हारा कथित प्रभावती-कथा]

किसी दूसरे दिन घनवाहन मणिशेखर से रुट होकर मेह पर्वत के शिखर पर गया ॥१॥ वहाँ उसने चारण कृद्धिधारी अमितगति की वन्दना करके शुद्ध वुद्धि से धर्म भी सुनकर उसने अपने पुण्यास्त्र से अपने पूर्वजों के अजेय राज्य की प्राप्ति तथा प्रियमित्र में स्नेह का कारण पूछा । मुनिवर उसे कहते हैं ॥२-४॥ भरतक्षेत्र में मंगलावती नगरी है जहाँ जिनेन्द्र तोथंकर संभवनाथ ने कम-शत्रुओं का घात किया था ॥५॥

जियसत्तु-राज विष्णाय जाऊँ । कंचणभाला-पिय-भोयराज ॥६॥
 सुयकिति-परोहित सुय-पउरो । वंधुमझ-कलत्तहि हियइ-हर ॥७॥
 तहु पुत्ति-पहावहु गुणह-णिहि । सा पडि(ठ)िय जिणावम जुति विहि ॥८॥
 अण्णहि-विणि वंधुमई अहिणा । सुसी सिज्जहि दट्टी अहिणा ॥९॥
 सुय णियहु विषु दुकिखउ रखई । समकार-करणि णउ तणु मुबई ॥१०॥
 नह कट्ट कहव-कहव वहिज । तहु विणसोएं विज पञ्जलिच ॥११॥

घर्ता

जण-सुयण जि सोयावह, लिच जहि मुणिवद,
 संबोहिल गिरिणि वि विज ।
 तं भय णिविणो, सोयावणो,
 धारिज अहारि दुवि तज ॥ ६-८ ॥

[६-९]

मंतवाय थढेरेण वियंवह । सो चल-चिसु जाऊँ संसयवह ॥१॥
 सिद्धाणिय-विज्ज तउधर्छिडिज । भोय-पथटूणि अग्यउ-मंडिज ॥२॥
 तासु पहावहु अहणिसु जंपह । एरिसु कम्मु ण जुउ-संपञ्जह ॥३॥
 चरिय-रणु मिलिल वि तुसलंडो । कों सं-गहहिविय दुह-कंडो ॥४॥
 पुण-पुण इय भासंती पावणु । तहो भट्टहु हवेहु दुह-दाहणु ॥५॥
 एणहं दुहियहं हउं संताविज । हमि अहिज समु भसि[हिय]भाविज ॥६॥
 पुण तहि कुद्दें णिय णिज्जण-वणि । मेलाविय प्रती विज्जहु खणि ॥७॥
 तरथहं सा सुहक्काणे थककी । भावहु अणुयेहा भय-मुककी ॥८॥
 पुण जणों आलोयणि विज्जा । पेसिय अबलोयणेण मणोज्जा ॥९॥
 ताहं पहावहु णिय कहलासहि । थाह वि सिद्धखेत्त सिव-वासहि ॥१०॥
 सयल जिणिदहं जवि वि पहावहु । जा ठिय जिण-हरि पथल-महावहु ॥११॥

वहाँ जितशत्रु नाम का राजा और कंचनमाला उस राजा की प्रिया जानो ॥६॥ श्रुतप्रवर-श्रुतकीर्ति पुरोहित और हृदयहारिणी बन्धुमती (उसकी) स्त्री थी ॥७॥ इन दोनों की पुत्री गुणों की विधि प्रभावती ने जिनागम का विधि-पूर्वक स्वाध्याय किया था ॥८॥ एक दिन शठा पर सोते हुए बन्धुमती सर्प द्वारा डस ली गयी ॥९॥ पुत्री—विष्र श्रुतकीर्ति के निकट दुःखी होती हुई रोती है। अग्निसंस्कार करने को (माता की मृत) देह नहीं छोड़ती/देती ॥१०॥ कह-कहकर बड़ी कठिनाई से उसे जलाया। (पश्चात्) शोक रहित होकर दीप प्रज्वलित किया ॥११॥

धत्ता—शोकाकुलित स्वजनन्जन (उस प्रभावती को वहाँ ले गये) जहाँ मुनिराज (उसके पिता) थे, उन्होंने बाणी से सम्बोधन दिया। भय और अन्य शोक आदि निवृत्त होकर उसने शीघ्र द्विविध तप धारण का शिद्ध ॥५-६॥

[६-९]

[प्रभावती द्वारा श्रुतकीर्ति का समझाया जाना, रुष्ट होकर श्रुतकीर्ति द्वारा प्रभावती को कैलास पहुँचवाना, प्रभावती का महाब्रती होना तथा पश्चावती वेदी का समागम-वर्णन]

वह दिग्मवर (प्रभावती का पिता) सशक्ति होकर चंचल-चित्त हो गया। उसने दृढ़ता-पूर्वक मांत्रिक वचनों से सिद्ध की गयी विद्या को ले जाकर उस प्रभावती पर छोड़ा और स्वयं को भोग-प्रदृत्तियों में लगाया ॥१-२॥ उसे प्रभावती रातदिन कहती है / समझाती है किन्तु इसके कर्म ठीक नहीं होते ॥३॥ हे विष्र ! रत्नव्रथ-जारित्र को पाकर दुःख के पिटारे तुष-खण्ड को कौन प्रहृण करता है ॥४॥ इस प्रकार बार-बार कहे गये पवित्र वचन उस अष्ट श्रुतकीर्ति को दुःखदायी होते हैं ॥५॥ इस पुत्री के द्वारा मैं सताया गया हूँ। हमें इसने सर्प के समान काले हृदय का समझा है ॥६॥ इसके पश्चात् क्षणभर में क्रोध से श्रुतकीर्ति ने पुत्री को निर्जन बन में ले जाकर क्षणभर में विद्या से मिला दिया ॥७॥ वहाँ वह (पुत्री-प्रभावती) शुभ-ध्यान में स्थित होकर भय-मुक्त हो अनु-प्रेक्षाओं को भरती है ॥८॥ इसके पश्चात् देखने में मनोज्ञ उस प्रभावती को देखने पिता ने विद्या भेजी ॥९॥ विद्या ने उस प्रभावती को सिद्धधेत्र-कल्याणभूमि कैलास पर्वत पर ले जाकर स्थापित किया ॥१०॥ प्रभावती सभी जिनेन्द्रों की बन्दना करके जिनालय में जाकर महाब्रतों को प्रकट करके स्थित हो गयी ॥११॥

घर्ता

ता पोमादेवी, सुर-स्य-सेवी,
तत्थाइ वि पणविवि जिणहं ।
जा बाहिर गच्छइ, ता मणि अच्छइ,
णारि दिटु जिणयंगणहर ॥ ६-९ ॥

[६-१०]

सा पुञ्जा का उहुं सुह-भावण । केण विहाणे आया पावण ॥१॥
ताम पहावई इ वितंतो । णिरवसेसु बज्जरित णिभंतो ॥२॥
एतहि खणि अउ-सेव-णिकाया । दुंकुहि-सद्दे तत्थ समाया ॥३॥
ताहं णिएप्पिणु तं जहि पुच्छउ । कि कारणि सुर आहयसुच्छउ ॥४॥
पोमावइ-अंपइ अज्जु जि वर । भद्र-सिय-पंचमि-सुहवासक ॥५॥
कुसुमंजलि-विणु अज्जु पसिद्धउ । सुरयणु तेणायज हरि सुद्धउ ॥६॥
सुर-तिय किम इह अउ-विरहज्जह । महु अग्गे असेसु भाविज्जह ॥७॥
भद्र आइ अंतमहु मासो । जेण केण वसु मज्जा पथासो ॥८॥
सेय-पक्षिल-पंचमि-विणि होतउ । किञ्जह इय पण-विवसु णिरसउ ॥९॥
जिण-चउवीस-पडिम-अहिसेवित । विरहवि पुण पुथा सुह-हेयज ॥१०॥
तंदुलाहं चउवीस जि पुजह । दिञ्जह अग्ग-पएसि मणुज्जह ॥११॥
ताहं उवरि थर फुल्ल एक्केक्कउ । अपिञ्जह मण-सुहयरु एष्कउ ॥१२॥
पुण तिथयरु णाज उच्चारहि । करि वि परिवाण दुरिय-णिवास(र)हि ॥१३॥
कुसुमंजलि-जिण णाहहो दिञ्जह । पंच वण्ण-कुसुमोहति किञ्जह ॥१४॥
कुसुमाभावे अक्खय-सारोहं । दिञ्जह पुर्फंजलि-बय-धारहि ॥१५॥

घर्ता

संब्रह्मर-तिणि-पवाणु-वउ,
किञ्जह पुण उज्जवण-विहि ।
पुञ्जाचउज्जवणु असेसु णिह,
ठाविज्जहि जिण णाहहि-गिहि ॥ ६-१० ॥

घसा—वहाँ सैकड़ों देवों से सेवित पदमावती देवी वहाँ आकर जिनेन्द्र की बन्दना करके जब बाहर जाती हैं तब जिनालय के प्रांगण में उसे मन को प्रिय लगनेवाली (एक) स्त्री दिखाई दी ॥६-१॥

[६-१०]

[पदमावती देवी से प्रभावती का कुसुमाङ्गलि-ब्रत-कथा अवण-वर्णन]

पदमावती देवी के द्वारा प्रभावती से पूछा गया । हे शुभ-भावने ! तुम कौन हो, हे पवित्र-आत्मन् ! कैसे आई हो ? ॥१॥ प्रभावती ने बिना किसी आशंका के सम्पूर्ण वृत्तान्त उस देवी से कहा ॥२॥ इसी बीच अण भर में चारों निकाय के देवों की दुर्दुभि घटनि वहाँ आयी ॥३॥ उन देवों को देखकर प्रभावती ने (पदमावती देवी) से पूछा—देवों ने किस कारण से आकर उत्सव किया है ? ॥४॥ पदमावती देवी कहती है—आज भाद्रव मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी (तिथि) का श्रेष्ठ शुभ दिन है ॥५॥ आज प्रसिद्ध कुसुमाङ्गलि (ब्रत) का दिन है इसलिए इस पवित्र स्थान में सुर-वृन्द और इन्द्र आये हैं ॥६॥ (पुनः प्रभावती पूछती है हे देवी—) देवांगनाएँ इस ब्रत को किस प्रकार रचाती हैं / करती हैं—मेरे आगे सम्पूर्ण विधि कहें ॥७॥ (पदमावती देवी कहती है—हे प्रभावती) भाद्रव मास के अन्त में जिस किसी प्रकार पूर्णिमा पर इसे प्रकाशित करो ॥८॥ इस मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि के दिन से लगातार पाँच दिन करो ॥९॥ चौबीसों जिनेन्द्र-प्रतिमाओं का अभिषेक करके सुख की हेतु यह पूजा रचाकर चौबीसों जिन-प्रतिमाओं के आगे मनोज्ञ तन्दुल चढ़ाकर उनकी पूजा करो ॥१०-११॥ इसके पश्चात् मनोज्ञ एक-एक पुष्प प्रत्येक तीर्थकर (प्रतिमा) को चढ़ाओ ॥१२॥ इसके पश्चात् तीर्थकर का नाम उच्चारण करते हुए पापों का निवारण करनेवाली परिकमा करके पाँच विभिन्न रंगों के पुष्पों का गुच्छा बनाकर जिननाथ को कुसुमाङ्गलि चढ़ावे ॥१३-१४॥ फूलों के अभाव में सुन्दर-बिना टूटे अक्षतों की पुष्पांगलि देकर ब्रत धारण करे ॥१५॥

घसा—तीन वर्ष प्रमाण ब्रत करे पश्चात् विधि पूर्वक उद्यापन करे । उद्यापन में जिनालय में सभी तीर्थकर प्रतिमाओं की स्थापना करके सभी की पूजा करे ॥६-१०॥

[६-११]

काराविजज्ज्ञ-जिणवर-वडट्ठ । पत्तहं वाणहं वित्ताहु हिट्ठ ॥१॥
 पुत्थहु लेहाविवि जो वि जड्डसहं । वेह वि भावे णाणमहीसहं ॥२॥
 सो भवि-भवि पंडित-उपजज्ञ । पुणुर वि केवलेण मंडिजज्ञ ॥३॥
 एवभत्त अहवा उववासें । कंजिएण णिय सत्ति-पयासें ॥४॥
 फलु जि समाणु-भाउ जड्ड सुद्धउ । तं विणु वड-तउ सथलु विरद्धउ ॥५॥
 तं आथणिण वि गिण्हउ कण्णहं । पोमावहु सहाहु सुपसंण्णहं ॥६॥
 वासर-पाच ताइ आयरियउ , पुगु तुरत्ताहुरत्त लक्षणि तुल्लिउ ॥७॥
 सा वि मिणालउरिहि णिय देविए । घण्पि वि गय जिणहरि-सुर-सेविए ॥८॥
 तत्य पहावइए रिसिपुंगम् । तिहुवण्चंसु णाम् गपसंगम् ॥९॥
 अहि वंदि वि लवयरणुप मंगिउ । ता मुणिण जाणेण वियक्किउ ॥१०॥
 भञ्जु-भञ्जुपहं मंतिउ पुत्ती । आउ तुज्ज्ञु विण लिण्ण-जिरत्ती ॥११॥

घर्ता

हे णिसुणि वि कण्णहं, सील सुपुण्णहं,
 अणसभहु सहु वरिउ तउ ।
 तच्छत्यु-मुण्णति, जिण-कायंती,
 तण-सगो छिय अच्छल-भउ ॥६-११॥

[६-१२]

एर्तहि अबलोयणि पुणु जणणे । येसिय तथ-विहि-आलण फुणणे ॥१॥
 विजज्ञ घोरवसगु पडंजिउ । तहं वि ण ताहिं जोउ-गुण भंजिउ ॥२॥
 मुय-सण्णसें अच्चुअ-सगर्हिं । पडमुणाहु सुख हृउ सोहर्गर्हिं ॥३॥
 अवहिए ते खिर वहयरु जाणिउ । पुणु जणणहो संबोहण-आयउ ॥४॥
 णियच्चरित्तु आहासिउ तायहो । वेवाविउ वउ वियलिय मायहो ॥५॥
 णिय गुर-पासिय वंदिय तहु पथ । पवर-युई शुणेप्पिणु गय रथ ॥६॥
 कुमुमजलि-वउ पथ लिवि लोयहु । गउस ठाणि सुह वट्टिय-भोयहु ॥७॥

[६-११]

[कुसुमाङ्जलि व्रत-विधि तथा प्रभावती का व्रत-ग्रहण-वर्णन]

जिन-श्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराकर पात्रों को सहर्ष धन दान करे ॥१॥ जो पुस्तक लिखाकर पृथिवी पर ज्ञान के विचार से यतीश्वरों को देता है, वह भव-भव में पण्डित-विद्वान् के रूप में उत्सन्न होता है और केवलज्ञान से विभूषित होता है ॥२-३॥ अपनी शक्ति के अनुसार कांजी लेकर एकासन अथवा उपवास करे ॥४॥ (एकासन अथवा उपवास का) फल-भाव-शुद्धि के अनुसार होता है। भाव-शुद्धि के बिना व्रत, तप सभी निष्फल हैं ॥५॥ ऐसा सुनकर कन्या-प्रभावती ने पद्मावती की सहायता से प्रसन्नतापूर्वक व्रत ग्रहण किया ॥६॥ देव-पाँच दिन इस व्रत की साधना करके तत्काल चले गये ॥७॥ वह प्रभावती भी देवी-पद्मावती को अपनी मृणालपुरी नगरी ले गयी। वहाँ उसे स्थापित करके वह जिनदेव की सेवा के लिए जिनालय गयी ॥८॥ वहाँ प्रभावती ने परिग्रह-रहित त्रिभुवनचन्द्र नामक श्रेष्ठ ऋषि से अर्हन्त की बन्दना करके तपश्चरण माँगा/महाव्रत लेना आहा। मुनि के द्वारा तब ज्ञान से वितर्क किया गया ॥९-१०॥ (उन्होंने कहा—) हे पुत्री ! भव्य है, भव्यपने का विचार किया है, तुम्हारी आयु लिश्चित ही तीन दिन की (शेष) है ॥११॥

घट्टा—पुण्यवान् शीलवती उस कन्या (प्रभावती) ने ऐसा सुनकर अनसन पूर्वक तप धारण किया और तस्वीरों का अर्थ-चिन्तन तथा जिनेन्द्र का ध्यान करती हुई कायोत्सर्ग में अचल रूप में स्थित हुई ॥६-११॥

[६-१२]

[प्रभावती और उसके माता-पिता का स्वर्गारोहण-वर्णन]

इसके पश्चात् प्रभावती को देखने के अर्थ पिता के द्वारा भेजी गयी विद्या ने तपविधि से उसे च्युत करने का धोर उपसर्गों का प्रयोग किया तो भी वहाँ उसका योग-गुण खण्डित नहीं हुआ ॥१-२॥ संन्यास-पूर्वक मरकर वह अच्युत स्वर्ग में पद्मनाथ नाम का सुहावना देव हुई ॥३॥ अवधि-ज्ञान से चिरकालीन वैर को जानने के पश्चात् देव अपने पूर्वभव के माता-पिता को संबोधने आया ॥४॥ उसने पिता को अपना चरित्र बताया और विचलित माता को व्रत दिलाया ॥५॥ अपने गुह के पास उनकी चरण-बन्दना और निर्मल प्रकर स्तुतियाँ की ॥६॥ लोक में कुसुमाङ्जलि व्रत

रिसिवु सुयकिति वि चह विग्रहु । सुरु-पहासु जावउ तहि संगहु ॥८॥
पउसणाहु देवह हुउ अच्छर । कमला-अंति पिल्लाकु वि अच्छर ॥९॥

घन्ता

पउसणाहु तत्थहो अह वि,
रण्णु-सिंह तहु दृवउ इह ।
इयस वि भणवाहणु-मित्तु तउ,
कमल वि मयणमज्जूसगिह ॥१६-१२ ॥

[६-१३]

इय चिर-णेहे णेहु पदट्टहु । भवहु पठंतहं णेहु ण मुहुइ ॥१॥
मुजि-महाउ इय णिसुणि वि भळ्डो । भयउ लाहु घम्महु सिव भळ्डो ॥२॥
मुणि णवेवि आयउ णिय-मंदिार । आणणे रज्जु-दिण्णु इत्थंतरि ॥३॥
बणि जाइ सह-रिसिवउ धारित । महिपालइ-मणिसिहु-णिसारित ॥४॥
चषक रथणु-माउह घरि-सिझउ । महिमंडलु-चउक्कल-डु-पसिझउ ॥५॥
णव-णिहि चउदह-रथणहु जायहु । खण-भूवर-णिव सेवय जावहु ॥६॥
सेणावह घणवाहणु-चउज्जजह । जासु पुरज अरियण-गणु भजनह ॥७॥
तिथच्छुण्णवह-सहासह-सुंदर । कोडिवह-बल चवल-पथ-हुवर ॥८॥
चउरासी लक्खइ रह-तय-गय । तेहि भिडंतहं हुप संगरि जय ॥९॥

घन्ता

चिर महियलु मुजि वि, विसणह रंजि वि,
किउ उज्जवणउ चिर वयहु ।
गुण लहि वि णिमित्तै, चित्ति चिरत्तै,
दिण्णु रज्जु कंचण-पहुहु ॥६-१३ ॥

[६-१४]

सहुं घणवाहणेण पहु चिकितउ । राय-दोस-बूरेण उदेविलउ ॥१॥
मंजूसा तवि ठिय उभिष्ठणी । णिय सरुव-झावंतिप घण्णी ॥२॥

लेकर भोगोपभोग बाले देवस्थान (स्वर्ग) में गया ॥७॥ श्रेष्ठ कृष्ण श्रुतकीर्ति घरोर त्याग करके देव के प्रभाव से उसी अन्धुर स्वर्ग में उत्पन्न हुए ॥८॥ (देव के पूर्वभव की माता) अन्त में पदमनाथ देव की कमला नाम की, अप्सरा होकर (पुत्री से) मिल गयी ॥९॥

घटा—पदमनाथ देव स्वर्ग से चयकर यहाँ तुम रत्नशेखर हुए हो । यह मिथ्या घनवाहन पूर्वभव का पिता और गेहिनी मदनमजूषा माता है ॥६-१२॥

[६-१३]

[रत्नशेखर की विगिजय, चक्रवर्ती-पद-प्राप्ति एवं वैभव तथा वैराग्य-वर्णन]

भवान्तरों के पठन से (जात होता है कि) स्नेह दूटता नहीं, चिरकाल के स्नेह से स्नेह और अधिक बढ़ता है ॥१॥ मुनि से इस (अत) का माहात्म्य सुनकर उस भव्य को धर्म शैर मोलनाथ हुआ ॥२॥ (इसके पश्चात्) मुनि को नमस्कार करके रत्नशेखर अपने राजभवन में आया । इसी वीच पिता ने इसे राज्य देकर तथा वन में जाकर स्वेच्छानुसार मुनि-अत धारण किये । मणिशेखर निस्सार पृथिवी का पालन करता है ॥३-४॥ छह खंड पृथिवी-मंडल में प्रसिद्ध चक्ररत्न-आगुध उसे घर में प्राप्त हुआ ॥५॥ नौ-निधियाँ और चौदह रत्न उत्पन्न होते हैं, विद्याधर और भूमिगोचरी राजा जाकर सेवा करते हैं ॥६॥ घनवाहन सेनापति के रूप में सुशोभित होता है उससे सभी चतुर्समूह भाग जाता है ॥७॥ उसकी छियानवे हजार रानियाँ, दस कोटि पदाति और इतनी ही अश्वसेना थी ॥८॥ उस समय उसके चौरासी लाख रथ और इतनी ही गज-सेना थी । इस सेना के लड़ने से मुद्द में उसकी विजय हुई ॥९॥

घटा—इसने चिरकाल पृथिवी तल पर (भोगों को) भोग करके और इन्द्रियों के विषयों में मग्न रहकर बहुत समय पूर्व लिये कुसुमांजलि ब्रत का उद्यापन किया । इसके पश्चात् निमित्त पाकर चित्त से विरक्त होते हुए इसने राज्य कंचनपुर के राजा को दे दिया ॥६-१३॥

[६-१४]

[कुसुमांजलि-ऋत-माहात्म्य]

राजा मणिशेखर ने घनवाहन के साथ राग-द्वेष की दूर से उपेक्षा करके दीक्षा ली ॥१॥ मदनमजूषा उदासीनता पूर्वक तप में स्थित होकर

केवलणाणु लहि वि मणिसेहरु । कुसुर्जन्तरि-बउ पयडि वि सुहयर ॥१॥
पुणु कम्महं विणासि सिवि पत्तउ । घणवाहणु तत्त्व वि संपत्तउ ॥२॥
मयणमज्जुसस लभ-अणुसारे । लघि एव दुरित्याकुहारे ॥३॥
अणु को वि जो पुणु शरु सारउ । कुसुर्जन्तलि-विहाणु भव-हारिउ ॥४॥
करिहो सो विहु बेसहं एरिसु । गिय सत्तेण शोविजनह कय जलु ॥५॥
बयनु उद्दरि भावण विरहजह । जे संसार-महाकुहु-खिजजह ॥६॥

घटा

गय-विवेय दिय सुय वि जहि,
दय-हुलेण-लोपणि हुणा ।

जो पुणु सदिद्विउ आयरहं,
वि न लहुह सो विगय-भया ॥६-१४॥

इय महाराय सिरि अमरसेणचरिए । चउवगा सुकह-कहामयरसेण
संभरिए । सिरि पंडिपमणि माणिक्कविरहए । साथु महणा-सुय चउवरी
देवराज जामंकिए । सिरि अमरसेण-बहुरसेण पुफकंजलि सुकह-पयास
वलणं जाम इमंच्छहुं-परिज्ञेयं सम्भतं ॥ संघि ॥ ६ ॥

जो बंदो बेवबंदो, हयकुसुमसरो, शोहदोसादि मुक्को,

जो सारो विस्तयारो हय वि मरणं कोह-लोहावि चुक्को ।

सो गेमो सो णिव-सुय तियणं देवराजसस सुख्खं,

जंच्छहु मुत्तो वि पसं णिय तणु-किहणुं सख्य सुक्खं विमुक्खं ॥

॥ आशीर्वादः ॥



आत्मस्वरूप ध्याती हुई धन्य हुई ॥२॥ मणिशेखर ने सुखकर कुमुमांजलि ब्रत प्रकट करके केवलज्ञात प्राप्त करने के पश्चात् कर्मों का नाश करके शिव प्राप्त किया । धनवाहन भी वहीं—उसी स्थान को (मोक्ष) प्राप्त हुआ ॥३-४॥ मदनमजूषा दुःखहारी-दुष्कृत तप के अनुसार स्वर्ग में गयी ॥५॥ अन्य कोई भी जो मनुष्य संसार-भ्रमण को मिटानेवाले कुमुमांजलि ब्रत को विधिपूर्वक किये हुए यश का गोपन करते हुए शक्ति के अनुसार करता है वह ऐसा ही होता है अर्थात् स्वर्ग या मोक्ष पाता है ॥६-७॥ ब्रताचरण के साथ सांसारिक महान् दुःखों का क्षय करनेवाली भावनाएँ भी भावें ॥८॥

चत्ता—ब्रत के फल से विवेक रहित के भी पुत्र हुआ, रत्नशेखर आदि लोक के अग्रभाग में गये । फिर जो निर्भय होकर सम्यग्दर्शन पूर्वक आचरता है वह क्या नहीं पाता है । अर्थात् वह सब कुछ पाता है ॥८-१४॥

हिन्दी अनुवाद

पण्डित-मणि माणिक्यक—कवि द्वारा साधु महणा के पुत्र चौधरी के लिए रचे गये—चारों वर्ण की कहने में सरल कथाओं रूपी अमृत-रस से परिपूर्ण इस अमरसेन चरित में श्री अमरसेन-वहरसेन द्वारा पुष्पाङ्गलि-सुकथा प्रकाशित करनेवाला यह छठा परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ संधि ॥६॥

आशीर्वाद

जो देव-बृन्द से बन्दित है, काम-द्वाण का नाशक है, मोह और दोष आदि से मुक्त तथा क्रोध और लोभ आदि से रक्षित है, जिस मरण के बाद अन्म लेना पड़ता है, ऐसे मरण से रहित है, इन्द्रिय-विषयों को मारने में पराक्रमी है, सर्व सुखों से विमुख, श्याम वर्ण की देहवाले, जिन्होंने मुक्ति प्राप्त की वे राजा नेमिनाथ-तीर्थंकर मानो जो श्रेष्ठ घरि हैं उस देवराज को सुख देवें ॥ आशीर्वाद ॥

सप्तम परिच्छेद

सत्रिष्ठ-७

ध्रुवक

पुण्-जिण-यद्यण-फलु, सेणिय गय-मलु,
जिहं भूसणु वणिवह सुएण ।
लद्धउ तं भासमि, समउ पद्यासमि,
एयग्ने वज्जियर एण ॥ १ ॥

रामायणे एह पसिद्ध अस्थि । अक्षसमि पसंग-बसु दोस णत्यि ॥१॥
राबणहं हणेप्पिणु सीय लेदि । उंका लि शिरीसा । णिवहु वेति ॥२॥
जह्या उज्ज्ञाउरि रामु आउ । तह्या भरहु जायड विराउ ॥३॥
राहु भण्णह महु मेलि जाह । हउं एत्तिउ ठिउ तव-तणझ-नाह ॥४॥
हउं पुण् विक्ष लेमि जिण-केरो । खस्मि-खस्मि सामि भवहु विवरेरी ॥५॥
धासिकालि मह विहिउ अनुभगहु । सवणहं अग्ने कारेविणु गहु ॥६॥
अं जग्ने भोहे पडिवणउं । तज वणवासु रज्जु महु विणउ ॥७॥
तं हह अविणउ मरिण ण भुल्लह । अहवा लिव भवेणउ सल्लह ॥८॥
ता रामे पउत्तु अज्जु जि तुहु । उज्ज्ञाउरि-पहु सिरि-भुंजहि सुहु ॥९॥
एयच्छत्त परिपाळि-बसुंघर । किकर तपल राप-भू-खेयर ॥१०॥
इय वयणहि ठिउ मणेण विरत्तउ । ता रामे जुबहु आणत्तउ ॥११॥
जा अहं-पमुह पजाय वि सरवरि । भरहु सराउ करि लि आवहु घरि ॥१२॥
पडिवणउ तं ताहि सुहायह । सहुं भरहे णरिउ गय सरवह ॥१३॥
जस-कोलहि ठिउ अपलु अभंगउ । दोदह-अणुवेहा चित्ततउ ॥१४॥
हावभाव विभमणउ चलियउ । कहु कणपालुअ तिहिणउ अलियउ ॥१५॥

घस्ता

तिध-वयणु ण पेच्छह, जा सरि अछ्छह,
ताम तिजयभूसणु जि करि ।
बालाणु-उम्मूळि वि, घर-सय-चुरि वि,
सो बलंतु महि आउ सरि ॥ ७-१ ॥

[७-१]

[भरत-वैराग्य एवं श्रिलोकमण्डन-गज-उत्पात-वर्णन]

शुचक

हे श्रेणिक ! इसे छोड़ते हुए इसके आगे समय पाकर कहूँगा (अभी) विगत दूषण वैध्य भूषण के द्वारा जैसा दिसेन्द्र पूजा का फल प्राप्त किया गया सुना है उसे कहता हूँ ॥१॥

रामायण में जिनेन्द्र-पूजा का फल इस प्रकार प्रसिद्ध है, प्रसंग-वर्ष कहने में दोष न होने से कहता हूँ ॥१॥ राजा रावण का वध करके और लंका विभीषण को देकर तथा सीता को लेकर जब राम अयोध्या आये तभी भरत को वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥२-३॥ वह (भरत) राघव (राम) से कहता है—नाथ ! मुझसे मिलें, तप से तृणबत् कृषकाय मैं यहाँ स्थित हूँ ॥४॥ आप स्वामी हों (अयोध्या के राजा बनें), मुझ बेचारे को क्षमा करें, क्षमा करें (ताकि) मैं इसके पश्चात् जिन-दीक्षा लेता हूँ ॥५॥ मुझ पर अनुग्रह/कृपा करो, पकड़कर सबके आगे करके आशीर्वाद दें ॥६॥ मोह में पड़कर पिता के द्वारा जो आपको वनवास और मुझे राज्य दिया गया है, दस अविनय की मरने पर भी नहीं भूलता हूँ, वह भव-भव में तीक्ष्णता से सालता है / कष्ट देता है ॥७-८॥ राम ने उत्तर दिया—आज से तुम अयोध्या नगरी में सुखपूर्वक राज्य-लक्ष्मी भोगो ॥९॥ एकछत्र पृथिवी का पालन करो, पृथिवी के सभी राजा और विद्याधर दास हैं ॥१०॥ ऐसा कहे जाने पर भी भरत मन से विरक्ति में ही स्थिर रहे । तब राम ने युवा रानियों को आज्ञा दी ॥११॥ प्रमुख नदी और सरोवर में जाकर भरत को सरागी बनाकर घर आओ ॥१२॥ उनकी मुख देनेवालों नारियाँ आकर भरत के साथ सरोवर गर्दी ॥१३॥ (भरत) जलकीड़ा में अचल और अर्भग रहकार बारह भावनाओं को भाते हुए स्थिर रहे ॥१४॥ (वे रानियों के) हाव-भाव और ब्रू-भर्गिमाओं से विचलित नहीं हुए । (कवि का कथन है कि) क्या सुमेहर्वर्त सिंहों से चलायमान हुआ है ? ॥१५॥

घटा—(भरत) सरोवर में जाकर बैठ जाते हैं, स्त्रियों के मुखों को निहारते भी नहीं । उसी समय त्रिलोकमण्डन हाथी अपने बन्धन की खूँटी को ऊखाड़ कर सैकड़ों घरों को चूर-चूर करके पृथिवी रौद्रता हुआ सरो-वर पर आया ॥७-१॥

[७-२]

भरहु अबलोयवि सो करीसु । हूबउ लणेण साजाइ जिईसु ॥ १॥
 तहु उबसंसहो भिडिउ स सोयउ । भरहु सरि सरुद्व सदिणीयउ ॥२॥
 जा उज्जाऊरि भज्जा सुपहट्टु । हरि-हुलिणा अणुराएँ विहुर ॥३॥
 करि-आलाण लंभि बंधेप्पिण । ठिय जा साहौरि समोउबहुप्पिण ॥४॥
 ता मिट्टेण सिरि रामहु बुत्तउ । गासु-तोड णिव करिणा चत्तउ ॥५॥
 आसर-तिण्ण-जाथ-उबधास । इथ भासंतहु दुख-पपास ॥६॥
 ता अण्णे के रामहु भासिउ । जेण चित्ति आणंटु-पयासिउ ॥७॥
 देसविहृसणु णामें केवलि । तउ पुण्णेण आउ णिरसिय-कलि ॥८॥
 रामु सलवलणु-भरहु सभवितए । जसि गया ते बंधणहृत्तिए ॥९॥
 बंविवि केवलि-धन्मु सुणेप्पिण । पुणु पुच्छउ अबसरु पाखेप्पिण ॥१०॥
 करिणा-कवलु पाणु कि कारणु । चत्तउ सामिय सुख-णिवारणु ॥११॥

घत्ता

ता परम-जईसर, [राय-बोस-विणु]

आसिएत्थु दिसहि सहु ।
 आणा-पालणयर, विण्णि वि किकर,
 दिकिलय ते तहिं तेण सहु ॥७-२॥

[७-३]

सुलज्जोदय-चंद्रोवय मूर्ढीहु । पुणु तउछंडिउ रायारुहर्षीहु ॥१॥
 अटूक्षाणि अवसाणि मरेप्पिण । तियस जोणि वहु भेष भमेप्पिण ॥२॥
 कुलजंगल-गयवरहु पहाणउ । हरपति णामें जायउ ताणउ ॥३॥
 भज्ज-भणोहरीहि गठभहि हुउ । चंद्रोदउ भमे वि सुह गुण जुउ ॥४॥
 अय-पसिहु णामेण कुलंकरु । सिरिकामा भज्जहि हियह-हरु ॥५॥
 विस्तसासु तहो रायहु मंत्तो । तिय सिहिकंडी णिमल-कांतो ॥६॥

[७-२]

[राम-लक्ष्मण और भरत की केवली देशभूषण की बन्दना तथा त्रिलोक-मण्डन हाथी के आहार-त्याग का प्रज्ञन-वर्णन]

वह हाथी भरत को देखकर क्षण भर में उत्पन्न हुए जातिस्मरण से [शान्त] हो गया ॥१॥ उसके (हाथी के) शान्त होने पर वे भरत आत्म-स्वरूप का स्मरण करके चिन्य पूर्वक सीता से भिड़ गये । तत्क-चर्चा करने लगे ॥२॥ उन्होंने जाकर अयोध्यापुरी में प्रवेश किया । उन्हें अनुराग पूर्वक नारायण-लक्ष्मण और बलभद्र-राम दिखाई दिये ॥३॥ हाथी की जंजीर सम्मे से बांधकर नारायण के बराबर स्थान पर जाकर बैठ गये ॥४॥ उसके द्वारा मिठ बाणी से श्री राम से कहा गया—राजा के हाथी (त्रिलोकमण्डन) के द्वारा आहार-जल छोड़ दिया गया है ॥५॥ उपवास करते हुए उसे तीन दिन हो गये हैं—ऐसा कहते हुए उन्होंने दुख प्रकट किया ॥६॥ उसी समय किन्हीं अन्य लोगों के द्वारा राम से कहा गया—जिससे उनके चित्त में आनन्द प्रकट हुआ, (कि) आपके पुण्य से देशभूषण नाम के निष्कलंक केवली आये हैं ॥७-८॥ राम, भक्ति पूर्वक लक्ष्मण और भरत के साथ शीघ्र बन्दना के लिए बहाँ गये ॥९॥ केवली को नमस्कार करके धर्म-श्रवण किया । इसके पश्चात् अवसर पाकर उन्होंने (राम ने) पूछा ॥१०॥ स्वामो ! हाथी के द्वारा सुख-निवारक आहार-जल त्याग किये जाने का क्या कारण है ? ॥११॥

धृति—राग-द्वेष रहित उन परम यतीश्वर ऋषि ने सभी को आशीर्वाद दिया । ऋषि के बहाँ उन्हें दो आज्ञाकारी सेवक दिखाई दिये ॥७-२॥

[७-३]

[सूर्योदय (त्रिलोकमण्डन हाथी) और चन्द्रोदय (भरत) का भवान्तर-वर्णन]

(वे दोनों सेवक) मूर्ख सूर्योदय और चन्द्रोदय तप त्याग करके राज्यारुद्ध होते हैं / राज्य करते हैं ॥१॥ सूर्यस्ति के समय आत्मध्यान से प्रकर स्त्री योनि की अनेक गर्यायों में ऋषण करने के पश्चात् दोनों में (छोटा भाई) चन्द्रोदय कुरुजागल (देश) के गजपुर (हस्तिनापुर) नगर के हरपति नामक (राजा) की हृदयहारिणी मनोहर श्री दामा नामा रानी के गर्भ से गुणों से युक्त जगत्-प्रसिद्ध कुलंकर नाम से उत्पन्न हुआ ॥२-५॥ विश्वतास उस राजा का मंत्री और निर्मल-कान्ति-धारिणी

सुजओदउ जो होंतु परिहुउ । सो तहु णंदण जाऊ मणिहुउ ॥७॥
 मूँठ सुई पामें सो [सुप] बुत्तउ । राणउ रिसि हुउ चित्ति विरत्तउ ॥८॥
 रज्जु कुलंकर करह सइत्तउ । मूँठ सुईस समं संजुत्तउ ॥९॥
 एव दिवस सिरिदामा पिट्ठी । दोहिमि जारासत्ती-बिट्ठी ॥१०॥
 ते उयसमेथि परिहुथ जामहि । ती णिस्सारिय ताइ जि तामहि ॥११॥
 तिरिय-गइहि ते अहु भव हंडिवि । कुह णियणे अप्पाणउ बैडि वि ॥१२॥
 पुण राय-गिहुहि दियवर णंदण । संजाया तस तत्थ परिकल्प ॥१३॥
 जेहुहं णामु विणोब पयासिउ । लहुयहं रमण पउत्तु जजासिउ ॥१४॥

घन्ता

लहु गड वि विएसहे, भूरि किलेसहि,
 तत्थ पडि वि पुण आयउ ।
 वाहिर मढि थक्काह, णिसिहि गुरुक्कउ,
 ता खिणोबहो भज्जा तहि ॥ ७-४ ॥

[७-४]

आइय जारासत्ती अणिट्ठ । पर-पुरिस-रमण-लंपडिय बुहु ॥१॥
 णाहु वि पत्तउणहि पिट्ठु लग्गु । धारि वि रिसकरि उष्णखाय लग्गु ॥२॥
 सा पहिय पालि ठिय भुणि वि जाह । ता णिहणिडं केण ण किउ वियाह ॥३॥
 मारि वि भासह अविक्षेय एण । सहरणि भंदिर णिय पावित्तुण ॥४॥
 सा पुण भारिउ लहु खलाह । परिभमिय तिरियगइ-संकलाह ॥५॥
 पुण मियं-जाया विणि वि खणमिम । भिलिल मारिय हुरिण खणमिम ॥६॥
 ति मिय बंधि वि घरि णीथ तेण । पालिय-लालिय तिहं भिलएण ॥७॥
 संभूह-णिवह एक्कहि दिणेण । भिलिउ-परिगिप्हिय कीलणेण ॥८॥
 बंधिय देवच्छण-भवण-पयासि । ता रमण किय तहं सह पयासि ॥९॥
 जिग-प्या-रुह भावेण जुत्तु । मरिउण सग भवणमिम पत्तु ॥१०॥

अग्निकुण्डा उसकी स्त्री (थी) ॥६॥ सूर्योदय जो बढ़ा भाई होता है, वह इन दोनों का मनोज पुत्र हुआ । वह मूर्ख श्रुति नाम से पुकारा गया । राजा चित्त से विरक्ष होकर कृषि हो गया ॥७-८॥ कुलंकर उस मूर्ख श्रुति के साथ संयुक्त रूप से राज्य करता है ॥९॥ एक दिन पीछे द्वौहिणी श्रीदामा (रानी) व्यभिचारियों में आसक्त देखी गयी ॥१०॥ जब तक दोनों को बैठाकर (श्रीदामा) उपशान्त करती है उसी समय वह व्यभिचारी को वहाँ से निकाल देती है ॥११॥ वे दोनों—कुलंकर और श्रुति बहुत पर्यायों में अभ्यास करके तिर्यक्षगति के दण्ड-स्वरूप निश्चित दुखों को पाने के पश्चात् उसकी परीक्षा के लिए राजगृही नगरी के एक बाह्यण के (पुत्र) हुए ॥१२-१३॥ बड़े (भाई) का नाम विनोद और छोटे (भाई) का नाम (माता-पिता ने) आशीर्वाद देते हुए रमन कहा ॥१४॥

घटा—छोटा भाई रमन विदेश गया । बहुत कष्ट से पढ़कर आया । वह नगर के बाहर मठ में रुक गया । रात्रि में बड़े भाई विनोद की पत्नी वहाँ आयी ॥१७-१८॥

[७-४]

[श्रिलोकमण्डन हायी और भरत के भवान्तरों में विनोद और रमन तथा घनदत्त और भूषण पर्यायों का वर्णन]

पर-पुरुषों से रमण करने वह लम्पटी, दुष्टा, अनिष्ट व्यभिचारियों में आसक्त वहाँ आई ॥१॥ उसका स्वामी/पति भी क्रोध में तलबार निकाल करके उसके पीछे लगाकर वहाँ आया ॥२॥ उस व्यभिचारिणी ने पाग में स्थित मूर्ति के पास यार को भेजकर कोई सोच विवार नहीं किया, उस पापिनी, स्वेच्छाचारिणी के द्वारा मन्दिर में फेक कर मारी गई अपनी तलबार से वह विनोद मारा गया ॥३-४॥ इसके पश्चात् उसी विधि से उस दुष्टा ने रमन को भी मार डाला । संक्लेषित परिणामों से मरकर (विनोद और रमन) तिर्यक्षगति में परिअभ्यास करने के पश्चात् वन में (रमन) हरिण और (विनोद) हरिणी हुए । इनमें हरिणी को क्षण भर में भील ने मार डाला ॥५-६॥ वह हरिण उस भील के द्वारा बांध करके घर ले जाया गया और उसका लालन-भालन किया गया ॥७॥ एक दिन संभूति राजा ने भील से दसे खूंटी सहित लेकर और देवपूजा भवन के पास बांधकर उस रमण को प्रकाश / बोध युक्त किया ॥८-९॥ जिनेन्द्र-पूजा की रुचि तथा भाव-पूर्वक मरकर वह स्वर्ग-भवन को प्राप्त/उत्पन्न

इयरु वि तिरिक्ष जोणिहि चराउ । भविलण वणउ विवद्यमाउ ॥१६॥
सो सुह चवेइ हुउ तासु पुतु । भूसणु णामेण पसिद्ध वितु ॥१७॥

घन्ता

देवागमि पेकिल वि, चिर भउ लकिल वि,
सो गेहुहु अलिपउ लहु ।
अमुण्ठते परियणि, जा गच्छहु वणि,
चरणि-लामुणासप्यु तहु ॥ ७-४ ॥

[७-५]

विसय-विरतु भूसणु विवरणु । आहेव-सुराळइ सुह उवणु ॥१॥
जणणु वि तिरिक्ष-आवत्त-हहि । चुदिडउ सुदुक्ष आवत्त-हहि ॥२॥
सुरवहु वि अंगदत्ति हुउ राउ । पुणु भोवभूमि जाणेण आउ ॥३॥
पुणु सगिं पुणु वि चक्कवहु-पूसु । अहिरामु णामु गुण-गणहुं जुसु ॥४॥
रायहुं सुध-परिणिय सहस-आरि । तहुं पुणु विरतु मणि-रुव धारि ॥५॥
अहणिसु चितहु सुहंतरंगु । घरि द्विव वि अपु-आवहु अणंगु ॥६॥
पालिवि सावय-वउ सुहु-भउ । वंभोत्तरि तियसु पवित्रु जाउ ॥७॥
षणपत्तु वि वहु-भव भमि वि आउ । दिवदर-गंबणु हुउ सवरभाउ ॥८॥
पोयणपुरि हि मिठमह वि मुक्कु । ताएं णीसारित लोसवालु ॥९॥
वहु सत्थरेह पडिक्कण पत्तु । णिय जणणा लहु सो कंठ सुसु ॥१०॥
पाणित-पाहु वि जणणीहु रणु । तेण वि सरु णिय[मुणि]साय भयणु ॥११॥
कि रवइ ताहुं भासियउ मज्जु । गंबणु होत्तड णिरु लरिसु तुज्जु ॥१२॥
सो णीसरि[गड]वि विएस आसि । तें रणणमि हुउं पंथय-णिसासि ॥१३॥

घन्ता

ता तेण पडत्तउ, णविवि णिदलउ,
तउ सुउ महणाउ हउ ।
ता जणणी-जणणहो, तहुं पुणु सथणतो,
तुहुं अवलोयण-मुक्कण-भउ ॥ ७-५ ॥

हुआ ॥१०॥ दूसरा बेचारा (विनोद भी) तियंच योनि में ऋषण करके धनिक वैश्य के रूप में उत्पन्न हुआ ॥१२॥ वह देव (रमन का जीव) स्वर्ग से चय कर विनोद के जीव धनिक वैश्य का भूषण नाम का धनवान पुत्र हुआ ॥१२॥

घट्टा—देव योनि में पूर्व भवों को देखकर वह भूषण-कुटुम्बियों के जाने बिना घर से शीघ्र चला गया । वन में जाते हुए उसके पैर में सर्प लग गया / सर्प ने छस लिया ॥७-४॥

[७-५]

[भूषण और उसके पिता धनदत्त की अभिराम और मृदुमति नाम से उत्पत्ति-वर्णन]

विषयों से विरक्त और उदासीन भूषण माहेन्द्र स्वर्ग में देव रूप में उत्पन्न हुआ ॥१॥ पिता-धनदत्त ने रौद्र तियंचगति रूपी भैंवर में दूषकर महा दुखकारी परिऋषण किया ॥२॥ भूषण का जीव-देव अंगदति (नामक) राजा हुआ पश्चात् ज्ञान से भोगभूमि में उत्पन्न हुआ ॥३॥ इसके बाद स्वर्ग में और तत् पश्चात् चक्रवर्ती का गुणों से युक्त अभिराम नाम के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ ॥४॥ वही चार हजार राजाओं की पुत्रियों को विवाहने के (पश्चात्) मन में विरक्ति के भाव धारण करके (वह) दिन-रात अस्तरंग की विशुद्धि के संबंध में विचारता है (और) घर में रहकर निष्काम होकर आत्म-ध्यान करता है ॥५-६॥ श्रावक के व्रत पाल करके पवित्र होकर वह ब्रह्मोसर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ ॥७॥ धनदत्त (भूषण के पूर्वभव का पिता) भी बहुत योनियों में भव-ऋषण करने के पश्चात् आकर झगड़ालू-विचारों का पोदनपुरी में मृदुमति (नाम का) आह्यण पुत्र हुआ । वह पिता के द्वारा दुःख पूर्वक निकाल दिया गया ॥८-९॥ वह अनेक शास्त्रों को पढ़कर (घर) आया । पिता ने अपने (इस) पुत्र को कण्ठ से लगाया ॥१०॥ रोते हुए माता ने पाती पिलाया । उसके द्वारा (मृदुमति के द्वारा) भी स्मरण किया जाकर और मन में जानकर अनुभव किया जाकर कहा गया ॥११॥ क्यों रोती हो ? उत्तर में उसके द्वारा मृदु-मति से कहा गया—निश्चय से तेरे समान मेरा पुत्र था ॥१२॥ निकाल दिये जाने से वह विदेश (भाग) गया है, इसी से मैं रोती हूँ । पथिक (मृदुमति) गहरी साँस लेता है ॥१३॥

घट्टा—तब उस मृदुमति के द्वारा उसे कहा गया—उदास न हो । तुम्हारा पुत्र (ही) यह मैं काया हूँ । तब उसके माता-पिता और स्व-जन उसे देखकर सुखी हुए ॥७-५॥

[७-६]

गिह-भार-पद्धिणउ सयलु तासु । सो वेसहि रत्तउ तहं हयासु ॥१॥
 घणु-सयलु विणासि वि घरह पाउ । चोरतणि पुणु बळहइसु ताउ ॥२॥
 चंदउरि-णयरि णिव-गिहि पयद्गु । घण-घण्ण-णिमित्ते पाउ दुट्टु ॥३॥
 ता महिसी सहु पभणेह सउ । आयणई खोर-पवद्गु राउ ॥४॥
 पीए सुप्पहाई तबवरणु लेमि । रह-सुक्षु-परिगाहु-परिहरेमि ॥५॥
 भजजाई भणिउ भो दीहवाह । हउ तउ पुणु गिणहमि सत्य शाह ॥६॥
 ते सुणि तक्कर किउ णियमु तत्य । महवय-धारमि हउ णिवह-सत्य ॥७॥
 ताह जि संगे सुपहाई दिक्ख । गिण्हय चोरे पालह सु सिक्ख ॥८॥
 पुणु अवरु कहंतरु पक्कु-जाऊ । आलोय-णयरि मुणि एक्कु बाऊ ॥९॥
 गिरि-चिह्नरि परिहुल चरि वि जोह । तहु पद्धिविणु फेल्हर णयर-लोऊ ॥१०॥
 कहया पुणु पुज्जह अस्स जोऊ । तहु भहु घरि भुज्जह जह समोऊ ॥११॥
 परिपुण्ण जोह सो चारणक्खु । गयणयरि गयउ लय अक्खु-पक्खु ॥१२॥
 तहि अवसरि विऊंमह तत्य आउ । चरियत्य पयद्गु पुरिबराउ ॥१३॥
 जणु सयलु पमण्णह भोजि एहु । जो जोए छिउ गिरि लंब-देहु ॥१४॥
 लोएं पुज्जि वि तहु दिष्णु वाणु । पुणु-पुणु संतोसी तहं अग्याणु ॥१५॥
 भोणेण थक्कु मुह भणिऊण । वहुड तिरिक्खगह कम्म लेण ॥१६॥

घस्ता

गउ वस्तु-सग्गि मुणि, किय माया जिजि,
 विण्णि वि बंधव मिलिय तर्हि ।
 अहिरामु-तियस चुक, एत्थु-भरहु हुक,
 रहव जसु पहविणि महि ॥ ७-६ ॥

[७-६]

[मृदुमति के तिर्यकगति का अन्य तथा अभिराम की भरत रूप में
उत्पत्ति वर्णन]

माता-पिता ने सम्पूर्ण गार्हस्थिक सम्पदा उसे सौंप दी और वह
(मृदुमति) भी हताश होकर ब्रेश्या में पल हो गया ॥१॥ घर का प्राप्त
सम्पूर्ण धन नाश करके उसकी चौर्य-प्रवृत्ति में बृद्ध हुई ॥२॥ धन-धान्य
के निर्मित उस दुष्ट, पापी ने चन्द्रपुरी-नगरी के राजमहल में प्रवेश
किया ॥३॥ वहाँ वह चोर पटरानी के साथ प्रवद्ध राजा को (यह) कहते
सुनला है ॥४॥ प्रिये ! रति-सुख और परिग्रह त्याग करके मैं सुप्रभात में
ही तपश्चरण लिये लेता हूँ ॥५॥ रानी ने कहा—हे दीर्घबाहु ! तब तो
स्वामी के साथ ही मैं (भी) तप ग्रहण कर लती हूँ ॥६॥ उनसे (राजा
और रानी से ऐसा) सुनकर चोर ने वहाँ राजा के साथ महाब्रत धारण
करने का निष्पत्ति किया ॥७॥ चोर ने उनके साथ सुप्रभात वेळा में दीक्षा
लेकर शिक्षाद्वात्रों का पालन किया ॥८॥ इसके पश्चात् कहों से आकाश-
गमी वयोवृद्ध एक मुनि आये ॥९॥ (वे) याग धारण करके पर्वत के
शिखर पर स्थित हो गये । नगर के लोग प्रतिदिन उनके दर्शन करते
हैं ॥१०॥ कोई इनके योग की पूजा करते और उनसे (कहते)—हे यति !
मेरे घर उत्तरकर भाजन करें / आहार लें ॥११॥ आकाशगमी वे चारण
मुनि योग पूर्ण करके धौख की पलक झपकते ही चले गये ॥१२॥ उसी
समय मृदुमति ने वहाँ आकर चर्या (आहार) के लिए राजा की नगरी
में प्रवेश किया ॥१३॥ सभी लोगों ने—जो ऊँची देहवाले योग से पर्वत
पर स्थित थे उन्हें जानकर इन्हें (मृदुमति को) आहार दिया ॥१४॥
अज्ञानता वश लोगों के द्वारा वह पूजा गया और उसे दान देकर बार-बार
संतुष्ट किया गया ॥१५॥ सुख मानकर मौन पूर्वक स्थित हुए कर्म से
उसके द्वारा तिर्यकगति का अन्य किया गया ॥१६॥

घटा—जिसके द्वारा माया की गयी है वह मुनि ब्रह्मा (ब्रह्मोत्तर)
स्वर्ग गया । वहाँ दोनों भाई (सूर्योदय और चन्द्रोदय) मिल गये । अभि-
राम-स्वर्ग से च्युत होकर यहाँ भरत हुआ है । पृथिवी पर (उनका)
अहंकार यश रहे ॥७-६॥

[७-७]

मिउमह सम्यात चण वि जाड । करि वह जह-भूषण सुधभ-काड ॥१॥
जाईसरेण ते चत गासु । भरहूं दंसणि हुड लाहु तासु ॥२॥
तं णिसुणि वि भरहै एविवि साहु । होइ वि पिसल्लु बीक्षित अबासु ॥३॥
बहु रायहि पुण परिहरित मम्मु । किककहुयहि पुण किउ तड अहम्मु ॥४॥
राहवेण गिहाइ वि करिहु दिण । अणुवय गिणह्य तेण जि अच्छम्म ॥५॥
सिद्ध-सीसि घल्ले वि मुक्कु । पुर-मजिम भमेह कसाय-चुक्कु ॥६॥
जहि-जहि गच्छहि तहि-तहि जि लोउ । लङ्ह-पूया तहो देहि भोउ ॥७॥
विष्णाय कुसुहयालउ-पसिहु । तह यहु मुंसउ जायउ पसिहु ॥८॥
भरहू वि तवयरणे लहि वि णाणु । हुड सिद्ध पिरजानु अचक-ठाणु ॥९॥

वस्ता

सो भूषण पूथणेण इह,
एरिस संपद जबउ हुड ।
जो अणु को वि पुणु अचक-मणु,
सो पुणु कि णउ होइ बुड ॥ ७-७ ॥

मगहाहिव सुणि सरेववएण,
गोवालु वि निषवर-पूथणेण ।
करकंदुपजायउ, जय विक्खायउ,
एयलो थिर-भणिण ॥ ८ ॥

[७-८]

इह अज्जखंडे कु'डल-विसए । पुरितरणामुपोसिय विसए ॥१॥
तहि राड-णीलु-णिवणीह-राज । वणिदह-वसुमिसु पणटु-राज ॥२॥
तहु गोवालो-वणदसु सुही । परिभमिय णिक्कव-वण अच्छु वि मही ॥३॥
ते एक विवसि [सरि] सहस्रलु । विटुउ जलति विमसिय-कमलु ॥४॥

[७-७]

[भरत-बीका एवं सिद्ध पद-प्राप्ति तथा त्रिलोकमण्डन का अणुब्रत धारण]

मृदुमति (मुनि) स्वर्ग से ब्रयकर सफेद शरीरवाला जगत्-भूषण/त्रिलोकमण्डन श्रेष्ठ हाथी के रूप में उत्पन्न हुआ ॥१॥ भरत के दर्जन से हुए जातिस्मरण-लाभ से उसके द्वारा आहार-जल छोड़ा गया है ॥२॥ उन देशभूषण मुनि से ऐसा सुनकर भरत के द्वारा मुनि को नमस्कार किया गया और निःशाल्य होकर निरावाध दीक्षित हुआ ॥३॥ इसके पश्चात् अनेक राजाओं के द्वारा नींह-नमता (राजनीह) ल्यानी गयी । अधम केकीयों ने तप किया ॥४॥ सम्पूर्ण अणुब्रत राम के द्वारा लिए गये और हाथी को भी दिये गये तथा उसके द्वारा ग्रहण किये जाने पर उसके माथे पर तिलक लगाकर छोड़ दिया गया । वह कषाय-रहित होकर नगर में घूमता है ॥५-६॥ जहाँ-जहाँ जाता है कहाँ-कहाँ लोग उसे लड्डू, पुआ का भोग (भोजन) देते हैं ॥७॥ प्रसिद्ध कुसुमांजलि व्रत को ज्ञात करके उसका पालन करनेवालों में जो प्रसिद्ध हुए उनमें (यह) प्रसिद्ध हुआ ॥८॥ भरत भी तपश्चरण से केवलज्ञान प्राप्त करके अचल-स्थान (मोक्ष) में निरंजन-सिद्ध हुआ ॥९॥

घर्ता—वह भूषण इस कुसुमांजलि-पूजा से जब ऐसा सम्पदावान् हुआ, तब जो दूसरा कोई भी स्थिर मन से (यह पूजा करेगा) फिर उसके निश्चय क्या नहीं होता है ॥७-९॥

यह सुनकर मगध-नरेश (श्रेणिक) को याद आया कि मोपाल (खाला-अहीर) एकाग्र और स्थिर मन से जिनेन्द्र की इसी पूजा के करने से करकंदु नाम से उत्पन्न हुआ और संसार में विख्यात हुआ ॥७॥

[७-८]

[जिनेन्द्र-पूजा के फलस्वरूप खाल धनदत्त का करकंदु नृप होने का वृत्त-वर्णन]

इस जम्बूद्वीप के आर्यखण्ड में कुण्डल देश के पुरिमताल नामक नगर में राजनीतिज्ञ राजा नीलू के राज्य में वणिकपति वसुमित्र के द्वारा नाश को प्राप्त हुआ ॥१-२॥ उस वसुमित्र का खाल धनदत्त नित्य वन में भ्रमण करके पृथिवी पर बैठ जाता है ॥३॥ एक दिन उसके द्वारा जलाशय में स्त्रिया

तहु लितहं जपइ सिदि-बण्डाई । ता आयकण्ण पायड भणई ॥५॥
 सु पयच्छ णीड सब्बई हियहु । इहु कंजु वि अणहु देहि तुहु ॥६॥
 ता तें आयण्ण वि सेहु बणि । देपिणु वित्तंतु पउत्तु खणि ॥७॥
 बणिबहण पुण रायहो कहिउ । पहुणा पुण मुणि चितिउ सुहिउ ॥८॥
 गोदाल-राजि संतुतु पढ़ । गउ सहस्रकृष्ण-भवण लहु ॥९॥
 जिण-अहिसंचि वि बंदे वि मुणि । महिबहणा पुच्छिउ भव्वु-गुणि ॥१०॥
 सख्खहं उचिकद्रुउ को भुधणि । जिण-गाहु णिरुविउ तेण अणि ॥११॥
 ता ठिउ गोदउ जिणणाहु-पुरउ । भासह घारेपिणु महि सिर-घरिउ ॥१२॥
 भो सच्चुकिकटु हमं कमलं । महि दिणु गिहाणाह विमलं ॥१३॥

घर्ता

हय भणि वि देव-उपरि णिहिचि,
 गउ सकलिज गोदउ सगुणु ।
 तम्हाउ भरि वि करकंडु-पहु,
 हूवउ भत्तिए महु-जिणु ॥ ७-८ ॥

[७-९]

णह-जारो अवर जि पहु करेह । जिण-चरचहि हिय-भावण वरेह ॥१॥
 वहु सुर-जार सुवस्त्रह तं लहेह । पुण सिदडरि-व्यार्ण सिदु होह ॥२॥
 यउ सुणि वि णराहिउ देवसेणि । मुणि वंविड आणंदेण तेणि ॥३॥
 जिण-पूया-विहि गिणहिय खणेण । गउ णिय घरि जरवह उच्छवेण ॥४॥
 तत्थाह मुणोसह विण्ण राय । विहडिय भव्वयणह चोहणाय ॥५॥
 जिण-गाहु इरिउ लविड अम्मु । संबोहिय भव्वई वि गयच्छम्मु ॥६॥
 मुणि अर्वहि-जाणि वि तुच्छ आउ । अइ-खोणंग वि सु-सुरुच साड ॥७॥
 महि विहरहि भाय वि रहिय-माय । तच करहि णिरंतर वभर-धाय ॥८॥
 कुण शिरिसिरि चक्रह विगड-सल्ल । भेषज-जीर उरहरज अहल ॥९॥

हुआ एक सहस्रदल-कमल देखा गया ॥४॥ उस इतेत वर्ण के फूल को लेने के लिए उसके कहने पर उसे प्रकट होकर नाशकन्या कहती है ॥५॥ सर्व हितकारी इस कमल को ले जाकर तुम किसी दूसरे को भली प्रकार प्रदान करो ॥६॥ उससे ऐसा सुनकर उसके द्वारा वन में वह (कमल) सेठ—वसुभिन्न को दिये जाने के पश्चात् क्षण भर वृत्तान्त कहा गया ॥७॥ वणिकपति-वसुभिन्न के द्वारा (वह वृत्त) राजा से कहा गया । पश्चात् राजा के द्वारा सुखपूर्वक मुनि का स्मरण किया गया ॥८॥ संयोग से राजा खाले के साथ शोष्ण सहस्रकूट-जिनालय गया ॥९॥ जिनेन्द्र का अभिषेक और मुनि की वन्दना के पश्चात् मुनि से गुणवान् भव्य राजा के हाथ पूछा गया ॥१०॥ संसार में कौन सर्वोत्कृष्ट है ? (उत्तर में) उन मुनि के द्वारा जिननाथ निरूपित किये गये/बताये गये ॥११॥ तब वह खाले जिनेन्द्र भगवान् के आगे स्थित होकर पृथिवी पर सिर रखकर धारावाहिक रूप से कहता है ॥१२॥ (उसने कहा—हे स्वामी !) यह निर्मल कमल सर्वोत्कृष्ट है, मैंने दिया है, ग्रहण करो ॥१३॥

घटा—इस प्रकार कहकर वह गुणवान् खाला देव के ऊपर (वह फूल) रखकर कार्यवश चला गया । वहाँ से भरकर जिनेन्द्र की पूजा-भवित से राजा करकर हुआ ॥७-८॥

[७-९]

[जिन-पूजा-माहात्म्य तथा मुनि अमरसेन-वद्वरसेन का स्वर्गारोहण]

स्त्री-गुरुष और राजा जो कोई भी हादिक भावनाओं सहित जिनेन्द्र की पूजा करता है, वह देव और मनुष्य-पर्याय के सुख पाता है और इसके पश्चात् शिवपुर-स्थान में सिद्ध होता है ॥१-२॥ ऐसा सुनकर मनुष्यों के राजा उस देवसेन के द्वारा आनन्दपूर्वक मुनि की वन्दना की गयी ॥३॥ जिनेन्द्र-पूजा की विधि समझकर क्षण भर में राजा उत्साहपूर्वक अपने घर/महल गया ॥४॥ वहाँ भव्यजनों को सम्बोधनार्थ विहार करते हुए दोनों मुनिराज (अमरसेन-वद्वरसेन) आते हैं ॥५॥ वे भूमि-विहारी उन मुनियों ने भव्यजनों को सम्बोधित किया और जिननाथ का धर्म प्राप्त करने को प्रेरित किया ॥६॥ अति क्षीण काय वे मुनि अवधिज्ञान से (अपनी) आयु अल्प जानकर अपने आत्म-स्वरूप का स्वाद लेते हैं ॥७॥ वे दोनों भाई (मुनि) माया रहित होकर पृथिवी पर विहार करते हैं (और) काम भेटनेवाला निस्तर तप करते हैं ॥८॥ इसके पश्चात् मेव पर्वत के समान

वह-विह थम्मु अलंडु वियाणि वि । वेयण-गुण अप्पउ सम्माणि वि ॥१०॥
पाव-पयडि कम्महं संधारि वि । आसब-दार-गमणु वि जिवारि वि ॥११॥
आवसंति सण्णासु करेप्पिणु । पुणु पाउगह-मरणु मरेप्पिणु ॥१२॥
अमरसेण-वहरसेणि भडारा । गय पंचम-सगिहि मुणि सारा ॥१३॥

घर्ता

विणि वि तह सुरवर, अछडर मणहर,
सहजा भरणहि लंकरियहं ।
चडि विव्व-विमाणहि, धंट खालहि,
अंचवहि तह लोयहं जिणहं ॥७-९॥

[७-१०]

पुणु लरलह रुदु हुर-नेश्वरी । आदहि सुह-कम्मेण दुई ॥१॥
तह सुर-सुह-भुजि वि विणि वेव । तह यह भइ होसहि सिद्धनेव ॥२॥
अणणणा जिणिव पुणु तब-बलेण । सुहगड संपाइय गय-मलेण ॥३॥
यउ-थाणि वि भवियण-दाण देहु । वह-जिण-आयम सिद्धां करेहु ॥४॥
मूल कहिउ इहु बीर जिणेवे । पुणु गोयमिण सुधम्म-मुणिवे ॥५॥
पुणु जंचू-केवलिहि पयासिउ । णंदिमित्र अवराहय भासिउ ॥६॥
गोबद्धण भह विराहएण । पुणु भद्रवाह मुणि सामिएण ॥७॥
आयरिय परंपर जेम बुढु । जिणचंद वि सूरे तेम सिट्ठु ॥८॥
तह सुत्तु पिक्कि लक्ष्यखरेण । मणि माणिक्कि किउ सुह-गिरेण ॥९॥
महणा-मुणहि वि उवाएस एण । वेवराजहु-विणय पयासएण ॥१०॥
णंबउ भहिसारउ जाम इत्यु । सुज्जु वि चंदु वि घरणीय सत्यु ॥११॥
पुहयण यणहि वि पाढिज्जमाणु । सत्यु वि सारउ सत्यत्य-जाणु ॥१२॥

घर्ता

तिष्पउ इह अरणी, सस्सहु अरणी,
सुहकालि पउहत वरिसउ ।
कामिणि-यण णंबउ, णव-रस-सच्चउ,
होउ लोउ सहु सर णउ ॥७-१०॥

अचल-धीरजवान् तथा काम-वाण को नष्ट करते में शूर (वे दोनों मुनि)
निःशास्य होकर पर्वत के शिखर पर स्थित हो जाते हैं ॥५॥ दर्शों कर्मों
को अखण्ड रूप से जानकर और अपने चेतन-गुण का सम्मान करके/
प्रधानता दे करके तथा कर्म की पाप-प्रकृतियों का संहार करके एवं कर्मों
के आस्त-कर्माण्डल-द्वार को बन्द करके आयु के रहते पाप-रूपों ग्रहों का
अन्त करनेवाले संन्यासपूर्वक परकर मुनिश्रेष्ठ दीर अमरसेन-बहरसेन
पाँचवें (ब्रह्म) स्वर्ग गये ॥१०-१३॥

घटा—वहाँ (स्वर्ग में) दोनों देवों का मनोज आसराएँ स्वाभाविक^१
आभूषणों से शृंगार करती हैं । वे घंटियों की ध्वनिवाले दिव्यविमान पर
चढ़कर तीनों लोक की जिन-प्रतिमाओं की पूजा करते हैं ॥७-९॥

[७-१०]

[अपराजित-अहरनेत को तिळ-पद-गाप्ति, कवि की आचार्य-
परम्परा तथा प्रत्यक्ष रचना करनेवाले शावक का उल्लेख]

दोनों राजा (मनुष्य गति से) शुभ कर्मों से देव-गति में जावेंगे ।
देवों के सुखों को भोगने के पश्चात् दोनों भाई वहाँ से (नर पर्याय में
होकर/आकर) सिद्ध होंगे ॥१-२॥ पश्चात् तप बल से दोष रहित होकर
अहंत के सपान अद्वितीय शुभगति पाते हैं ॥३॥ ऐसा जानकर भव्यजनों
को दान दो, अहंत-जिनेन्द्र और आगम में श्रद्धा करो ॥४॥ यह मूल रूप से
जिनेन्द्र महाद्वार के द्वारा कहा गया और गौतम के द्वारा मुनि सुधर्मचार्य
से कहा गया ॥५॥ इसके पश्चात् (सुधर्म मुनि के द्वारा) केवली जन्म-
स्वामी को प्रकाशित किया गया । उन्होंने नन्दिमित्र से और नन्दिमित्र ने
अपराजित मुनि से कहा ॥६॥ अपराजित ने गोवद्धन मुनि से और गोवद्धन
मुनि ने भद्र से तथा भद्र ने भद्रबाहु मुनि से कहा ॥७॥ आचार्य-परम्परा
से जिन्होंने दोहन किया उनमें सूरि जिनचन्द्र श्रेष्ठ हैं ॥८॥ उनके सुत-
प्रत्यक्ष देखकर कवि-मणि माणिक्य ने ललित अक्षरों और सुन्दर वाणी से
यह रचना की ॥९॥ महणा के पुत्र देवराज की विनय से उपदेश-पूर्वक यह
प्रकाशित किया गया ॥१०॥ जब तक इस पृथिवी पर सार त्वरूप सूर्य
और चन्द्र हैं, पत्नी के साथ वह महणा का पुत्र (देवराज) आनन्दित
रहे ॥११॥ शास्त्र के सार (मर्म) और अर्थ के जानकार विद्वान् लोगों
को पढ़ावें ॥१२॥

घटा—धरा-धन-धान्य से तृप्त रहे, समय पर मेष वर्षा करें, कामिनी-
जन (स्त्रियाँ) नाचें, नवों रस झरें और लोक सभी को शारणदायी
होवें ॥७-१०॥

[७-११]

णंदउ जिणवार-सासण-सारउ । जिणवाणी वि कुमग-वियारउ ॥१॥
 णंदउ बुहयण समय-परिट्ठिय । णंदउ सज्जण जे विस-विट्ठिय ॥२॥
 णंदउ णरवइ पय-रक्खतउ । णायमरगु लोयहं दरिसंतउ ॥३॥
 संतिविय भउ पुट्ठियिं भउ । तुट्ठियिं भउ दुरित-णिसुभउ ॥४॥
 सेणित-णिमाउ णरय-णिवासहु । जिणधमु वि पयडउ भद्र-वासहु ॥५॥
 जि मच्छुरु-मोहु वि परिहरियउ । सुहयज्ञाणि जेण णियमणु धरियउ ॥६॥
 हेमचंकु-आयरित वरिट्ठु । तहु सीमु वि तदन्तेयनरिट्ठु ॥७॥
 पोथणंधर-णंदउ मुणिवरु । देवणंदि तहु सीमु महीबरु ॥८॥
 एयारह-पडिमउ आरंतउ । राय-बोल-मय-मोहु हुणंतउ ॥९॥
 सुहमाणे उवसमु-भावतउ । णंदउ वंभ लोलु समवंतउ ॥१०॥
 तहुं पास जिणेवह गिहरवण । वे पंडिय णिवसहि कणय-वण ॥११॥
 गलवच जसमलु शुण-गण-णिहाणु । बोथउ लहु वंधउ तच्च-जाणु ॥१२॥
 सिरि संतिवास मंथस्थ-जाणु । चच्चह सिरि पारसु विगय-माणु ॥१३॥
 णंदउ पुण विवराउ जसाहितु । पुत्रकलत्त पउसु वि साहितु ॥१४॥

घस्ता

रोहियासि-मुरि-वासि, सयलु लोउ-सह णंदउ ।
 पास-जिणहु पय-सरय, णाणा थोस्तहि वंविड ॥७-११॥

[७-१२]

पुण णामावलि भणिउं वि सारी । दायहु-केरी वणवि सारी ॥१॥
 अहरवालु सुपसिङ्ग वि भासित । सिपल-नोत्तिउ सुष्यण-समासित ॥२॥
 वूल्हाणि वि अहिहाणे भणिउं । जेण णियन्तेरे कुलु-संतामिउं ॥३॥
 करमचंदु चउधरिय गुणायरु । विवचंदही भजजहि वि मणोहरु ॥४॥
 तहस सण्यह तिणिण वि जाया । णं पंडव इह तिणिण समाया ॥५॥
 पठमउ सत्थ-अत्थ-रस-भायणु । महण चंकु णं उहयउ वरइणु ॥६॥

[७-११]

[कृतिकार-कामना]

सार स्वरूप जिनेन्द्र का श्रेष्ठ शासन और कुमार्ग-विदारक जिनवाणी आनन्द देवे ॥१॥ विद्वान् समय और परिस्थिति के अनुसार सज्जन जल-बृहिट के समान आनन्द देवें ॥२॥ राजा-प्रजा की रक्षा करते हुए और लोगों को न्यायमार्ग दर्शाति हुए आनन्द देवे ॥३॥ शान्ति होवे, पुष्टि होवे, तुष्टि होवे और पापों का विनाश होवे ॥४॥ श्रेणिक नरक-निवास से बाहर निकले और संसार में रहकर जैनधर्म का प्रचार-प्रसार करे ॥५॥ जिससे मत्सर-मोह दूर होते हैं वह शुभ ध्यान नियम पूर्वक धारण करो ॥६॥ वरिष्ठ आचार्य हुन्दून्द्र के शिल्प-दृष्टि से बहुन् गुण-प्रदानन्दि, उनके पृथिवी पर श्रेष्ठ शिष्य देवनन्दि, राग-द्वेष, मोह-भावों को नष्ट करनेवाले ग्यारहु प्रतिमाधारी और शुभध्यान में उपशम-भावों को भानेवाले तथा काम की लोलुपता में शान्त-परिणामी सुखी रहें ॥७-१०॥ वहीं जिनालय के पास एक सुन्दर धर में गौर वर्ण के दो पण्डित रहते हैं ॥११॥ (उनमें) बड़ा जसमलु गुणों का भण्डार तथा दूसरा छोटा भाई तत्त्वों का जानकार है ॥१२॥ ग्रन्थों के अर्थ का ज्ञाता, श्री पार्वतनाथ की पूजा करनेवाला वह निरभिमानी (छोटा भाई) शान्तिदास आनन्दित रहे । इसके पश्चात् जिसका यश कहा गया है वह देवराज स्त्री, पुत्र और पीत्र सक्षित आनन्दित रहे ॥१३-१४॥

चला—रोहतक नगर के सभी निवासी आनन्दित रहें । पार्वतनाथ जिनेन्द्र के चरणों की शरण में नाना स्तुतियों से बन्दना करें ॥७-११॥

[७-१२]

[ग्रन्थ-रचना प्रेरक देवराज का वंश परिचय]

इसके पश्चात् दातार (देवराज के वंश) की संक्षेप से श्रेष्ठ नामावलि कहता है ॥१॥ सुप्रसिद्ध अग्रवाल (जाति) अन्वय और सिंघल गोत्र के सज्जनों को संक्षेप से कहता है ॥२॥ अपने तेज से जिनके द्वारा कुल-सन्तानि लाई गई / चलाई गयी वे चूल्हाणि नाम से कहे गये ॥३॥ (इस सन्तानि में) गुणाकर चौधरी करमधंद की मनोहर भार्या दिउचंदही के तीन पुत्र उत्पन्न हुए । वे ऐसे लगते थे मानों तीनों पाण्डव— (पुष्टिघिर, भीम और अर्जुन) ही यहीं आये हों ॥४-५॥ पहला शास्त्रों के अर्थ रूपी रस का प्रेमी महणा चरती पर ऐसे उदित हुआ मानों चन्द्रमा का उदय

तह वणिया-पेमाहो सारो । पुत्तज्ज्वर फिजुब मणहारी ॥७॥
 अगिमु बाणे [हुड] सेयं सिद्ध । उज्जल जसचरित विजयंसिद्ध ॥८॥
 असुवरुपरहइ तिथहि विरत्तउ । जं असच्चु कद्याणउ उत्तउ ॥९॥
 दिउराजु जि जिण सहहि महल्लउ । गोपाही तिय-रभयु वि भल्लउ ॥१०॥
 तहु कुमिल-सिप्पि-मुत्ताहलाइ । उप्पणइ वे सुध रिउ-सलाइ ॥११॥
 पहिला रउ णिय कुलहु वि दीउ । हरिबंसु णामु गुण-गण वि दीउ ॥१२॥

घत्ता

तहु भज्जा, गुणहि-मणुज्जा,
 मेल्हाही पभणिज्जए ।
 गजरि गंग णं उवहि सुया,
 तहु कस उप्पथ विज्जहइ ॥ ७-१२ ॥

[७-१३]

पुछवहि अभयदाणु अमु-दिण्णउ । तहु सुउ अभवचंदु सु-सण्णउ ॥१॥
 अबरु वि गुण-रयणहि रयणायह । देवराज-सुउ सयल-विकायह ॥२॥
 रतनपालु णामें पभणिज्जह । तहु भूराही ललणवि गिज्जह ॥३॥
 देवराय पुणु वीयउ भायउ । आमू-णामें जय-विकलायउ ॥४॥
 तहु खोचाही भज्ज कहिज्जह । तो लेधहु जेहें जोच्छज्जह ॥५॥
 पठमउ णायराउ तहु कामिणि । सूबटही णामें जण-राविणि ॥६॥
 वीयउ गेल्हु वि अबरु पयासिड । आमू-सीयउ पुत्तु पयासिड ॥७॥
 चक्र णामें जण-विकायउ । महणा-सुउ चुगणा विय भासउ ॥८॥
 हू गरही तहु भामिणि सारो । खेतसिव-णंवण जुय-हारी ॥९॥
 सिरियपालु पुणु रायमल्लु । पुणु कुबरपालु भासिड जडिल्लु ॥१०॥
 महणा अबरु चउत्थउ णंवणु । छुटमल्लु वि जो घम्भहु संदणु ॥११॥
 फेराही अंगण-मणहारउ । वरंगहुमल्लु वि णंवणु रह सारउ ॥१२॥

घत्ता

करभचंद पणु पत्तु, वीयउ जोजु वि भणिउं ।
 साहाहिय पिय उत्तु, गुर-यय-रत्तु विणाणिउं ॥ ७-१३ ॥

हुआ हो ॥६॥ उसकी प्रेमाही नाम की भार्या से मनोहर चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥७॥ चन्द्र सम निर्मल यश और चारिश्वधारी, इन्द्रिय-जयी, दूसरों के अशूभ (दुःख) को दूर करने वाला, परस्तियों और विद्वानों द्वारा जो असत्य कहा गया है उससे विरक्त, चारों में सौम्य और ज्येष्ठ देवराज महल में नीताही यज्ञी के साथ भली उकार रहे रथा दावता है ॥८-१०॥ उसकी कुशि रूपी सीप से मुक्ताफल रूपी शत्रुओं को शल्य स्वरूप दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥ हरिवंश नाम का पहला (पुत्र) अपने कुल का और गुणी जनों का दीपक हुआ ॥१२॥

घत्ता—गुणों से मनोज उसकी भार्या मेलहाही कही गयी है। उसकी किससे उपसा करें। वह ऐसी प्रतीत होती है मानो गौरी, गंगा और यमुना ही हो ॥७-१२॥

[७-१३]

[देवराज के द्वितीय पुत्र एवं अन्य भाइयों का परिचय]

प्राणियों को अभयदान देनेवाले उस हरिवंश के साक्षी स्वरूप पहले अभयचन्द्र और दूसरा गुणरूपी रत्नों से रत्नाकर स्वरूप, देवराज के सभी पुत्रों में सूर्य-स्वरूप रत्नपाल नाम का पुत्र कहा गया है, उसकी पत्नी भूराही गायी गयी है ॥१-३॥ देवराज का जगत्-विल्यात झाझू नाम का दूसरा भाई (हुआ) ॥४॥ चौचाही उसकी भार्या कही गयी है, जो उसके ल्नेह से सुशोभित रहती है ॥५॥ नागराज (इसका) पहला (पुत्र) और उसकी सूबटही नाम की स्त्री सन्तति जनने से आलहादकारिणी थी ॥६॥ दूसरा गेहूं और झाझू का तीसरा पुत्र चाऊ नाम से लोगों में विल्यात हुआ। चुगना-महणा का (तीसरा) प्रिय पुत्र कहा गया है ॥७॥ उसकी झूगरही श्रेष्ठ परनी और दोनों के खेतसिंह, श्रीपाल, राजमल, कुवरपाल और जटिल नामक पुत्र कहे हैं ॥९-१०॥ महणा का चौथा पुत्र जो धर्म का रथ (कहा गया) छुटमल्लु (था)। मनोहारी केराही स्त्री से उत्साही श्रेष्ठ दसगहमल्लु पुत्र (हुआ) ॥११-१२॥

घत्ता—इसके परचात् करमचन्द्र का दूसरा पुत्र जोजू कहा गया है। ऊपर कहे गये जोजू की गुरु के पत्नी में अनुरक्ता साहाही प्रिया जानी गयी है ॥७-१३॥

[७-१४]

तहो अंतहो अंगो अन दिणा ज्ञेय । विसु-सुय गदण्जउ-अज्जुणोय ॥१॥
 पहिला रउरावण तस्स णारि । रामाही जाया अहि-पियारी ॥२॥
 तहु सरीरि-सुब चारि उवण्णा । पुहईमल्लु वि पछु सुवण्णा ॥३॥
 तस्स भज वहु णेहालकिय । कुलघंदही जाया वहु सं किय ॥४॥
 किल्लिसघु तहु कुकिस उपण्णउ । गणिगर-गिरु णव कर्षण वण्णउ ॥५॥
 पुणु असखंदु व चंदु भणिजजह । लूणाहो-पियवम-अणुरंजह ॥६॥
 तहु वि तर्ण थउ-लक्खण-लंकिड । मवणसिह जो पावहं सं किड ॥७॥
 अवरु वि बीणकंठु बीणावह । पोपाहो तहु कामिणि मणहह ॥८॥
 णरसिघु वितज सुउ वि गरिट्टउ । लक्ष्मि पिल्लु णं पियरहं इट्टउ ॥९॥
 पुणु लाङ्गु रुवे भय-रहउ । तहु बीबो कंता वि जसहउ ॥१०॥
 पुणु जोजा-बीषउ पुतु साह । पिय रुवे जिल्लउ जेण माह ॥११॥
 दोबाही-कामिणि अणुरंजह । जें सुहि मरणे सगिग-गमिजजह ॥१२॥
 जोजा अवह वि णंदणु सहरउ । लष (क्ष) मणु-णामें वडिय-हारउ ॥१३॥
 मल्लाही-कामिणि तहु णंदणु । हीरु णामें जण-मण-णंदणु ॥१४॥

धर्म

अवरु वि णंदणु तीयउ, तालहु णामें भासि [ज] ।

वालहाही-मणहारु, वे सुय ताह समासिरु ॥ ७-१४ ॥

[७-१४]

[करमचन्द के हितीय पुत्र जोजू का कीदुम्बिक परिवर्त एवं तीसरे पुत्र और पुत्रवधु का नामोल्लेख-वर्णन]

जोजू और साहाही दोनों के आन्तरिक योग से विश्व-श्रुत (विश्वात्) पवर्तजय और अर्जुन के समान तीन पुत्र हुए ॥१॥ प्रथम (पुत्र) रौरावण (था) । उसकी अधिक प्रिय रामाही पत्नी हुई ॥२॥ उसके शरीर-गर्भ से चार पुत्र उत्पन्न हुए । सुरूपवान् पृथिवीमल पहला (था) ॥३॥ वहु स्नेह से अलंकृत (स्नेहवान्), सुख-करनेवाली (देनेवाली) कुलचन्दही उसकी भायी हुई ॥४॥ उसकी कुक्षि-कूँख (गर्भ) से नये स्वर्ण के समान सुरूपवान् (और) गदगद (आनन्दित) कर देनेवाली वाणी बोलनेवाला कीर्तिसिंह उत्पन्न हुआ ॥५॥ इसके पश्चात् चन्द्रमा के समान चिर्मल यश-वाला चन्दु (और) अनुरंजन करनेवाली लूनाही (उसकी) प्रियतमा कही गयी है ॥६॥ उसका-शुभ्र-शुभ लक्षणों से अलंकृत, जिसने पापियों को भी सुख दिया (ऐसा) मदनसिंह पुत्र (हुआ) ॥७॥ वीणा-बादकों में श्रेष्ठ वीणकंठ अन्य (तीसरे पुत्र हुए) । मन को हरनेवाली पोषाही उसकी कामिनी (पत्नी) (और) नरसिंह उसका ज्येष्ठ तथा मिल्लु (कनिष्ठ) पुत्र लक्ष्मी के समान (दोनों) माता-पिता को प्रिय थे ॥८-९॥ इसके पश्चात् सौन्दर्य से मकरध्वज-कामदेव के समान लाडनु (चौथा पुत्र) (और) उसकी यश-धारिणी वीढ़ी पत्नी (कही गयी है) ॥१०॥ इसके पश्चात् जोजा (जोजू) का—अपने रूप-सौन्दर्य से जिसके द्वारा कामदेव जीत लिया गया, साह (नाम का) द्वारा पुत्र (और उसे) अनुरंजित करनेवाली दोदाही—जिसके द्वारा शुभ-भरण किया जाने से स्वर्ण में जाथा गया/स्वर्ण प्राप्त किया गया, पत्नी (कही है) ॥११-१२॥ जोजा (जोजू) का अन्य तीसरा—पण्डितों के लिए हार स्वरूप लक्ष्मण नाम का श्रेष्ठ पुत्र, मललाही स्त्री और उसका—लोगों के मन को आनन्दित करनेवाला हीरू नाम का पुत्र (कहा गया है) ॥१३-१४॥

घटा—(करमचन्द के) तीसरे पुत्र का नाम ताल्हु कहा गया है । (उसकी) मनोहारिणी (स्त्री) वाल्हाही के दो पुत्र (हुए) उन्हें संक्षेप में कहता हूँ ॥७-१४॥

[७-१५]

पद्मउ पोमकंति-वासू सुहो । ईच्छाही भासिणि दिष्टउ सुहो ॥१॥
 महदासु वि तहु पुत्तु पियारउ । पुणु दिवदासु वीर [मण] हारउ ॥२॥
 लधारणंही-भज्ज मणोहरु । घणमलु-गंदणु तहु पुणु सुयहरु ॥३॥
 जगमललाही कामिणि तहु सारी । वाथमल्लु सुय पोसणायारी ॥४॥
 इय विवराजहै वंसु [प] यासिउ । काराविउ सत्तु जि रस-सारउ ॥५॥
 शीह-झोह-मध्य-माल-विवारउ । जं अस्यद् ॥ किपि वि जासिउ ॥६॥
 सुपसाएं वि विष्टुउ भासिउ । ॥आ॥
 तं सरसइ महु लमउ भडारी । वीर-जिणहो सुह-णिगाय सारी ॥८॥
 हेम पोम आवरिय विसेसि । वंभज्जुण गुण-गणिण जिहीसे ॥९॥
 मई कसवट्टिय वण वरेपिणु । कब्बे सुवण्णहु लीहुवि वेपिणु ॥१०॥
 अत्त-अत्थ सोहणु खिवे विणु । अत्थ-विष्टु-किट्टि कट्टेविणु ॥११॥
 सोहिउ एहु वि मणु लाए विणु । होउ चिराजसु कववु-रसायणु ॥१२॥
 विवकम-रायहुवव गय कालइ । लेसु-मुणोस वि सर अंका लइ ॥१३॥
 धरणि अंक सहु चइत वि मासे । सणिवारे सुय-पंचमि दिवसे ॥१४॥
 कित्तिय णक्खते सुह-जोथं । हुउ पुणउ सुत्तु वि सुह जोयं ॥१५॥

घन्ता

हो वीर जिणेसर, जग परमेश्वर,
 एत्तिउ लहु महु दिज्जउ ।
 जहि कोहु ण माणु, आवण-ज्ञाणु
 सासय-पउ महु दिज्जउ ॥ ७-१५ ॥

[७-१५]

[करमचांह के ही सरे पुत्र ताल्ह का वंश-परिचय तथा कवि की
काव्यात्मक-भावना एवं रचना-काल]

कमल की कान्ति धारण करनेवाला सुखकारी पहला (पुत्र) दामू
और सुखकारिणी ईच्छाही (उसकी) पत्नी (हुई) ॥१॥ इन दोनों के
महदास प्यारा पुत्र हुआ । इसके पश्चात् मनोहर वीर देवदास हुआ ॥२॥
(इसकी) रुधारणही मनोहर स्त्री (और उससे) सुखकारी घणमलु पुत्र
हुआ ॥३॥ उसकी जगमल्लाही श्रेष्ठ पत्नी और भरण-पीषण करनेवाला
वायमल्ल पुत्र हुआ ॥४॥ इस प्रकार रसों से भरपूर शास्त्र की रचना
करानेवाले देवराज का वंश प्रकाशित किया ॥५॥ क्रोध-मोह, माया और
मान के विदारक (इस ग्रन्थ के) जो अक्षर हैं कोई भी उन्हें नहीं नाशे ॥६॥
विश्व भी कहा गया हो तो वीर जिनेन्द्र के मुँह से निकसित श्रेष्ठ वह
स्वामिनी सरस्वती प्रसन्नता पूर्वक मुझे क्षमा करे ॥७-८॥ विशेष रूप से
अह्य चर्य आदि गुण-समूह-निधिधारी आचार्य हेमचन्द्र और पद्मनन्दि से
मेरे द्वारा (मुझ माणिक्य कवि के द्वारा) कसीटी पर कसकर वर्ण धारण
किये जाने के पश्चात् काव्य में स्वणक्षिरों अथवा सुन्दर लिपि में लिखकर
दिया गया है ॥९-१०॥ मात्रा और अर्थ-सौन्दर्य का क्षय किये बिना अर्थ-
विश्व मलिनता को काटकर मन ल्याए बिना भी यह काव्यरूपी रसायन
चिरकाल तक शोभित होते ॥११-१२॥ राजा विक्रमादित्य को हुए पन्द्रह
सौ छिह्नतर वर्ष निकल जाने पर चैत मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि
शनिवार के दिन कृतिका तक्षव्र के शुभ योग में (यह) सूत्र (अमरसेण-
चरित) पूर्ण (समाप्त) हुआ ॥१३-१५॥

वत्ता—(कवि भगवान् महावीर से विनय करते हुए कहते
हैं—) हे जगत् के परमेश्वर, जिनेन्द्र भगवान्, महावीर, मुझे शीघ्र इतना
ही दे दीजिए—जहाँ न क्रोध है और न मान है, जहाँ जाने पर पुनः
संसार में आना नहीं पड़ता, वह शाश्वतपद (मोक्ष) मुझे दीजिए ॥७-१५॥

इय महाराय सिरि अमरसेण चरिए । चतुष्वाम् सुकाह-कहामयरसेण संभरिए । सिरि पंडिय माणिक्यकविरद्धए । साधु महणा-सुय चतुष्वामी देवराज णामंकिए । सिरि अमरसेण-कहरसेण-स्वर्ग-गमण बण्णणं णाम सत्तमं इमं परिच्छेयं सम्मतं ॥ संधि ॥ ७ ॥

इति अमरसेण-कवित्तं समाप्तं ॥ ७ ॥

ज्ञानवाम् ज्ञानवानेन निर्भयोऽस्यवानतः ।
अन्नवानात् सुखी नित्यं, निष्ठाधी भेषजाद्भवेत् ॥
तैलात् रक्षेत् जलात् रक्षेत् जिथिल बन्धवात् ।
सूर्यंहस्ते न वातव्यं, एवं वक्ति पुस्तकम् ॥
सुभं भवतु ।

प्रशस्ति

अथ संब्रह्मरेत्स्मिन् श्री नृप विक्रमादीत्यनाताकदः संब्रह्म [१५७७] वर्षे कातिक व्रति ५ रवि दिने कुरुक्षांगल देसे ओ सुवर्णपथ (सोनीपत) सुभस्थाने ओ का [ला] संघे माधुराम्बये पुष्कर-गणे भट्टारक श्री गुणकीत्सिवेषाः तत्पटे भट्टारक ओ ग्रसकीत्सिवेषाः ॥ तत्पटे भट्टारक श्री ग्रसकीत्सिवेषाः तत्पटे भट्टारक श्री गुणभट्टारित्सिवेषाः तदाम्नाये अग्रदालाम्बये गोद्वलगोत्रे सुवर्णपथि वास्तव्यं जिणपूजा पीरदरी कृतवान् साधुक्षलहू तत्य भार्या सोल-सोय-तरंगिणी साक्षी करमवृद्धी सुधी पुत्र चउ प्रकारि दान..... । साधु वालू तेन इवं अमरसेण सात्रं लि [ला] पितं ज्ञानावरणी कर्मकायार्यं । ओम् सुभं भवतु ॥ मंगल्यं वदाति ॥८॥



इस प्रकार चारों वर्ग की सुन्दर कथारूपी अमृतरस से परिपूर्ण, श्री पण्डित माणिक्क द्वारा साधु महणा के चौधरी देवराज नामवाले पुत्र के लिए रचे गये इस महाराज और अमरसेन चरित में अमरसेन-बहुरसेन की स्वर्ग प्राप्ति का वर्णन करनेवाला यह सातवाँ परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

(जीवों को) ज्ञान-दान से ज्ञानवान्, अभयदान से निर्भयत्व, अन्त-दान से नित्य सुख और आर्थिकदान से व्याधि-विहानता प्राप्त होती है ।

पुस्तक का आत्म निवेदन है कि तैल, जल और शिथिल-बन्धन से मेरी रक्षा करें । मुझे मूर्ख के हाथ में नहीं देना चाहिए ।

॥ शुभ-भवतु ॥

हिस्ट्री अमुवाद

श्री राजा विक्रमादित्य के (१५७६) वर्ष व्यतीत हो जाने पर संवत् १५७७ वर्ष में कार्तिक वदी पञ्चमी रविवार के दिन कुरुजांगल देश के सोनीपत शुभ स्थान में काष्ठासंघ-माथुरान्वय में पुष्कर-गण में (हुए) भट्टारक श्री गुणकीर्तिदेव के पट्टवर भट्टारक श्री यशकीर्तिदेव तथा इनके पट्टधर श्री मलयकीर्तिदेव के पट्ट पर [विराजमान] हुए भट्टारक गुणभद्र-सूरिदेव की आम्नाय में अग्रवाल अन्वय के गोयल गोत्र में सोनीपत के निवासी ने जिनेन्द्र की द्वन्द्वधज पूजा की । शाहू छलू और उसकी शील रूपी जल से युक्त नदी तुल्य साध्वी करमांदही के विद्वान् पुत्र बाबू ने चार प्रकार का दान किया । उसके द्वारा ज्ञानावरणी कर्म के क्षय हेतु यह अमरसेन चरित लिखाया (था) । यह कार्य शुभकारी हो, मंगल देवे ॥ ७ ॥

रक्षाबन्धन पर्व-दिवसे समाप्तमिदं कार्य

६-८-१९९० सोमवार

सूक्षितयाँ

१. अह लाडणु वहु दोसु मृणेष्पिणु । २।३।१०
बच्चों का अधिक लाड़ वहु दोषकारी होता है ।
२. अह वलवंतइं सवकण पूजजइ । २।५।७
महाबलवानों को इन्द्र (भी) पूजता है ।
३. अच्छहु दुर्जण दूरि वसंतइ । १।८।१२
दुर्जन से दूर रहना अच्छा है ।
४. अथिरु संसार वक्तु । १।९।७९
संसार अस्थिर और वक्त है ।
५. अधिकारिउ जीवित कम्मराउ । १।१७।१
कर्म रूपी राजा जीव का अधिकारी है ।
६. अपवाई पात्र हरेह लहु । २।१।१।१८
निजोपदेशी पापों से शीघ्र छूट जाता है ।
७. अमियं जं समयहुं दिण्णु दाणु । ४।१।१।८
समय पर दिया गया दान अमृत तुल्य होता है ।
८. अमियं सीयलु जगि सुहवयणु । ४।१।१।९
शुभ और शीतलता देनेवाले वज्र अमृत-तुल्य होते हैं ।
९. अमियं साहुहु परमत्थसंगु । ४।१।१।१०
परमार्थ के लिए साधु-संग अमृत-तुल्य होता है ।
१०. अमियं गुणगृह्णिहि करइ संगु । ४।१।१।१०
गुणी जनों की गोष्ठियों का संग करना अमृत तुल्य है ।
११. आसा-वासिण मन पडि संसारि । १।१६।२२
संसार में आशाओं और इन्द्रिय वासनाओं में मत पड़ो ।
१२. इकचित्ति-मुद्ध जिणधन्म सेवि । १।१७।१४
जैनधर्म विशुद्ध एक चित्त से सेव्य है ।
१३. इथ चिरणेहै नेहु पवट्टइ । ६।१।३।१
पुरातन स्नेह में स्नेह बढ़ता (ही) है ।
१४. कहु मरण-वत्यच्छुट्टइ ण जीउ । २।१।१६
जीव मरण-काल में कहीं भी नहीं छूटता है ।

१५. कियकम्महणि वि सिवपउ लहेइ । १।१३।१६
शिव-न्पद (मोक्ष) पूर्वोपाजित कर्मों के नाश होने पर ही प्राप्त होता है ।
१६. किम कम्महं पेरिउ किल्थु णउ रहेइ । ४।१।३
कहीं भी क्यों न रहो, पूर्वोपाजित कर्म दुःख देते ही हैं ।
१७. किय पुण्णे संगइ होइ जाऊ । १।२२।२२
अजित पुण्ण से सम्पत्ति हो (ही) जाती है ।
१८. कि ण करहि रइ-लुम्ब धुय । २।१०
निश्चय से रति का लोभी क्या नहीं करता है ?
१९. कि किज्जइ णिद्धणु रुवजुत्तु । ३।७।४
निर्धन-रूपवान् होकर भी क्या करे ?
२०. कि किज्जइ मणुएं दब्ब-विणु । ३।७।११
दब्ब-विहीन मनुष्य क्या करे ।
२१. गद पाणी पहलउ पालि बंधु । १।१४।४
पानी निकल जाने के पहले पाल बाँधो ।
२२. गद सप्पहि पीढइ लीह अंधु । १।१४।४
साँप निकल जाने पर अन्धा ही लकीर पीटता है ।
२३. गल-संकल घरणी-बाहुदंड । १।१७।३
गृहिणी के बाहुदंड गले में संकल स्वरूप हैं ।
२४. गुरु-मारणेण महापाउ होउ । ३।१२।१४
गुरु का वध करने से महापाप होता है ।
२५. जइसउ करह सु तइसउ पावह । ४।१२।१३
जो जैसा करता है वह वैसा ही पाता है ।
२६. जाणतु सहइ जइ दुख देहु । १।१७।८
शरीर ही दुःख सहता है—ऐसा जानो ।
२७. जिउ पडिउ कुडंबावत्तिगति । १।१६।२०
जीव कुडंब रूपी गर्त में पड़ा है ।
२८. जिउ उडिउ ण सककइ वलि दि पाय । १।१७।४
शक्ति पाकर भी जीव उड़ नहीं सकता ।
२९. जिम जिम काया अणुहवह सुख ।
तिम-तिम जाणोवउ अधिक दुख ॥ १।१७।७
शरीर ज्यों-ज्यों सुख का अनुभव करता है त्यों-त्यों अधिक दुःख जानो ।

३०. जिणि धम्मि होई जीवहं संघारु । ११८।१०
जीवों के संहार से धर्म नहीं होता है ।
३१. जिणधम्महं विणु न वि होइ मुक्खु । ११९।१८
मोक्ष जैनधर्म के बिना नहीं होता है ।
३२. जिणधम्महं विणु न वि सक्क-मुक्खु । ११९।१८
इन्द्र-मुख जैनधर्म के बिना नहीं ।
३३. जिणधम्में विणु किह सुगङ्ग पत्तु । ३।१०।५
सुगति किसे जैनधर्म के बिना प्राप्त हुई ।
३४. जिण-बयणु-सरणु । ३।१।८
जिन-बचन ही शरण हैं ।
३५. जीवित धण जुडवणु अथिरु जाणि । १।१६।३
जीवन, धन और जवानी को अस्थिर जानो ।
३६. जो करइ सुतिप्पइ सुकिथ-हेउ । १।२।१९
जो धर्म-परम जरता है उसकी अग्निहत्या पूर्ण होती है ।
३७. जं कलिल करतउ करिसु अज्जु । १।२६।४
जो कल करना है उसे आज ही करो ।
३८. झडि पहियति संकल-कम्म जोगि । १।१५।५
कर्म-शृंखला ध्यान से झड़ पड़ती है ।
३९. णउ धणहीणु वंधु महि जुउजइ । ३।३।१५
पृथिवी पर भाई का धनहीन होना छोक नहीं है ।
४०. णउ हीणहं घरहु विविसइ सिरि । ३।२।९
हीन-दीन के घर लक्ष्मी प्रवेश नहीं करती ।
४१. णउ जाइ अहलु जं कम्म किओ । ४।७।१०
जो कर्म किये हैं वे निष्फल नहीं होते ।
४२. णउ अणु होइ किय सुहुद्देहिं । ५।५।१८
उपार्जित सुख-दुःख अन्यथा नहीं होते ।
४३. णउ चल्लइं मत्थइं लिहिउ देव । ५।५।१९
भाग्य का लेख अन्यथा नहीं होता ।
४४. णउ पुरगल अप्पुण होई । ५।१७।१
पुरगल अपना नहीं होता है ।
४५. ताहि अउ बसइ णत्थि साधम्मउ । ५।८।१०
(जहाँ) साधर्मी न हों वहाँ निवास न करे ।

४६. तिय गुज्जु ण दिज्जइ । ३।७
स्त्री को गुप्तभेद प्रकट न करे ।
४७. ते सोय धण्ण गुणगण सुर्णति । १।१०।९
वे श्रोत धन्य हैं जो गुणों को सुनते हैं ।
४८. ते पाणि सहल पूजा रथति । १।१०।८
वे हाथ सफल हैं जो पूजा रखाते हैं ।
४९. ते गयण धण्ण तव जुइ णिर्यति । १।१०।९
वे नेत्र धन्य हैं जो जिनेन्द्र-छवि का दर्शन करते हैं ।
५०. तं वितु वि तुव पययुज्ज लग्गु । १।१०।११
वह द्रव्य धन्य है जो जिनेन्द्र की पाद-भूजा में आता है ।
५१. थिर होइ किति थिरकम्म धुबे । ४।५।२
स्थायी कीर्ति स्थायी कार्यों से होती है ।
५२. थिर सत्तुह मिती भाय किए । ४।५।२
स्थिर मित्रता शशु को भाई बनाने से होती है ।
५३. थिह दाणु सुपत्तहं भव्व दिए । ४।५।२
भव्व जगों द्वारा चुनाव लो दिया जाए स्थिर होता है ।
५४. दया मूल-धम्म । ३।१७।१
धम्म का मूल दया है ।
५५. दीणवखर भणइ सा लोयहावि । ३।३।१७
लोभाकृष्ट हीकर दीन बचन न कहे ।
५६. दुज्जण चललणीव सम सोसइ । १।८।३
दुर्जन पुरुष चलनी के समान होते हैं ।
५७. दुज्जण् विसयकसार्यं रक्ताइ । १।८।६
दुर्जन विषय और कथायों में रत रहते हैं ।
५८. दुज्जण सप्पहु एक अकत्थइ । १।८।२
दुर्जन और सर्प की समान स्थिति होती है ।
५९. देवेहि लिहायउ विहि लिहिओ ।
तं फेडण कुइ ण समत्थु हुउ ॥ २।१।१३
विधि का लेख बदलने में कोई समर्थ नहीं हुआ है ।
६०. धम्मत्थ कजिज पिथ मुगायहेय । २।१।१।१
धर्मार्थिकार्य में प्रेम मुगति का कारण होता है ।
६१. न चलत चलाओ लहुइ कोइ । १।१६।१६
चला-चली में कुछ भी प्राप्ति नहीं होती ।

अमरसेणचरित

२७६

६२. न वि करतउ संकइ किमइ पापु । ११६१६
पापो कुछ भी करने में शंका नहीं करता है ।
६३. पम्माउ कांसें तड़ पाड़सि सोनि । ११६१७
प्रमाद करीगे तो शोक में पड़ोगे ।
६४. परधणु-तिणु परतिय मायतुलिल । ११६१८
पराया धन तृण तुल्य और परस्त्री माता-तुल्य होती है ।
६५. परमपद लब्धम अप्पचिति । ११६१९
परमपद आत्मचिन्तन से प्राप्त होता है ।
६६. परसंताविय दय संतावह । ४१२१३
दूसरों को संताप देनेवाला संतप्त होता है ।
६७. परिहरि कोहाइ कसाय चारि । ११७१०
कोध आदि चारों कथाएँ त्यागो ।
६८. परिहरि कूडातुल कूडमाणु । ११९१५
कम-ज्यादह माप-तौल की त्यागो ।
६९. पसरंतु पञ्च इंद्रिय निवारि । ११७१०
पाँचों इन्द्रियों के प्रसार का निवारण करो ।
७०. पाच्छह पच्छतावह कवण काजु । ११४१६
पीछे पश्चाताप करने से क्या लाभ ?
७१. पावेण्य पावह गरुय दुहु । १२२२३
पाप से बहुत दुःख प्राप्त होता है ।
७२. पियभायपुत्तमाया झमालि । ११६१५
माता-पिता, पुत्र और सम्पत्ति सभी झगड़े की जड़ हैं ।
७३. पुणों किण्ण होइ । ३१२१३
पुण्य से क्या नहीं होता है ।
७४. पुरिसत्तणु करि अरिहेतु-सहि । ११७१६
अहंक के मार्ग में पुरुषार्थ करो ।
७५. म करि धर्महं विलंबु । ११६११
धर्म में विलम्ब मत करो ।
७६. म करि पुरगल सणेहु । ११५८११३
पुरगल (देह) से स्नेह मत करो ।
७७. मणवयणकाय परवत्य चत्त ।
णित्यरहि भवंतुहि वेइ भक्त ॥ १२११२
मन, वचन और काय से परबस्तु (देह) का त्याग करके शीघ्र संसार-सागर से बाहर निकलो ।

७८. यउ जाणिवि वेस ण होति अप्पु । ४।३।८
वेश्या अपनी नहीं होती—ऐसा जानो ।
७९. लह संजम अप्पउ तारि-तारि । १।१६।२२
संयम लेकर अपने को तारो (संसार-सागर से पार करो) ।
८०. लहणा-देणा लगि मिलिउ-जोई । १।१६।१९
मिलन-ग्रेग लेन-डेन तक का है ।
८१. लोहासतउ कासु ण मण्डइ । ५।८।५
लोभासत किसे नहीं मानता है ।
८२. वयरु ण होई सुंदरु ।
वेर सुन्दर नहीं होता ।
८३. ववसायहं विणु णउ होइ लच्छ । ४।५।१२
बिना व्यवसाय के लक्ष्मी नहीं होती ।
८४. विणु पुण्ये जीउ ण लहइ सुहु । ३।२।२३
बिना पुण्य के जीव सुख नहीं पाता है ।
८५. विणु दव्वें कोइ न करइ गव्वु । २।१।१।४
बिना द्रव्य के कोई गर्व नहीं करता है ।
८६. विणु ववसायहं णउ अत्थ होइ । ३।६।१०
बिना व्यवसाय के धन नहीं होता है ।
८७. विणु उज्जमु विणु णउ कज्जसिद्धि । ४।१।२
उद्यम किये बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती है ।
८८. वेसा णरु गिण्हइ दव्वसहिउ । ४।७।५
वेश्या धनबान् पुरुष का ही आदर करती है ।
८९. वंदिहरि कुडेवइ । १।१।७।२
कुट्टम्ब बन्दीगृह है ।
९०. सहभु जइ णिहि । ५।५।२२
निधियों को सब मिलकर भोगो ।
९१. सा रसना तुव गुण लोल लुलइ । १।१०।१०
रसना वही (धन्य है जो) तीर्थकरों के गुणों की लोलुपी है ।
९२. सुविख अणंतर दुःख होइ । १।१।४।५
सुख के पश्चात् दुःख होता है ।
९३. सुह-कम्महं संपद लख तत् । ४।३।९
सम्पत्ति शुभ कर्म से प्राप्त होती है ।

९४. सुख-दुःख कियकर्म में ह्रति भक्त । १।१३।१४
सुख और दुःख पूर्वोपाजित कर्मों से होते हैं ।
९५. सो साहु इच्छा तुव पडि चलइ । १।१०।१०
वह इच्छा अच्छी है जो तीर्थकर के प्रति होती है ।
९६. संजम कर अप्पउ पाव मुक्कु । १।१७।९
संयम लेकर अपने पाप त्यागो ।
९७. संसार-भवण्व पडिउ जीउ ।
णीसरइ सा विणु जिणधम्म कीउ ॥ १।२।०।७
संसार-भैवर में फँसा हुआ जीव बिना जैनधर्म धारण किये बाहर
नहीं निकलता है ।
९८. संसारि नहीं अप्पणउ कोइ । १।१६।१५
संसार में अपना कोई नहीं है ।
९९. संसारु अण्टउ परह चित । १।१८।१३
पर की चिन्ता से अनन्त संसार प्राप्त होता है ।
१००. संसारु असारु वि मणि मुण्डु । २।१।२५
मन में संसार को असार जानो ।
१०१. हृथकडग मिल पियमायभाय । १।१७।४
मिश्र, माता-पिता और भाई हृथकड़ियाँ हैं ।
१०२. हा लोयहु थी भेड ण दिजजइ । ३।१३।१
स्त्रियों की भेद नहीं देना चाहिए ।



पुरुषों, महिलाओं, देश, नगर, पर्वत आदि के नाम

अइरवालु	अग्रवाल जैन जाति ।	१४१३, १५६८
अभयंकर	ऋषभपुर नगर का एक सेठ ।	१२३५
अमरसेण	बण्णंकर का जीव । यह राजा सूरसेन और विजयादेवी का पुत्र था । बइरसेन इसका अनुज था ।	२१३६
अमरवइरसेण-		
चरित	अमरसेनचरित नामक ग्रन्थ	१६११३
अमितगई	अमितगति नाम के एक चारण ऋद्धि- धारी मुनि ।	६१८२
अरिमर्दन	ऋषभपुर नगर का राजा ।	११३१
आइणाह	प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ।	१६११४
उलवभपुर	जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र का एक नगर ऋषभपुर ।	११२११०
कच्छ	जम्बूद्वीप के आर्यखण्ड का एक देश ।	५१२११०-११
कण्यायलु	कनकाचल (सुमेह पर्वत) ।	११११६
करमचंदु	चीमा का पुत्र ।	१४१७
कलिकाल	कलियुग ।	११८१७
कामकंदला	मारग वेश्या की पुत्री ।	३३
कामधेणु	कामधेनु ।	११७१२
किकड़	केकड़ ।	७१७१४
कुमारसेन	आचार्य हेमकीर्ति के शिष्य और आचार्य हेमचन्द्र के गुरु ।	११२१९-११
कुरुजंगल	एक देश । गजपुर इसी देश का एक नगर था ।	३११३, अ३१३
कुरुदेश	कौरबक्षेत्र ।	२१२१११
कुलिंग	जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र का कलिंग देश ।	२१२१५
कुर्लकर	हरपति का पुत्र ।	७१३१३-५
कुसलावती	सेठ अभयंकर की पत्नी ।	५११०१३

कुसुमलत्या	कुसुमावलि की बहिन-कुसुमलता ।	५।२२।५
कुसुमावलि	मालिन कुसुमलता की बहिन ।	५।२२।५
कंचणपुर	भरताक्षेत्र का एक नगर । अमरसेन यहाँ के राजा थे ।	३।१।१२
कंचणमाला	राजा जितशश्व की रानी ।	६।८।५-६
खगगिरि	विजयार्थ पर्वत ।	६।५।१०
खेमकित्ति	खेमकीत्ति	१।२।८
ज्ञेमाही	चौधरी महणा की पत्नी ।	१।५।१
गजपुर	कुष्ठदेश का नगर-हस्तिनापुर ।	३।२।११
गयलर	गजपुर ।	७।६।१२
गयबर	गजपुर ।	७।३।३
गोयम	गौतम-नाणधर ।	१।२।१
वणवाहण	जयकर्मा और विनयादेवी का पुत्र ।	६।५।१०-११
चारुदत्त	वैद्यामासी एक प्राचीन पुरुष ।	३।१।३।२
चीमा	चौधरी देवराज का पूर्वज ।	१।४।५
चुगना	चौधरी महणा का तीसरा पुत्र ।	१।५।१६
चेलण	राजा श्रेणिक की रानी चेलना ।	१।२।८
चंदउरि	चन्द्रपुरी नगरी ।	७।६।३
चंद्रोदय	चन्द्रोदय नाम का एक पुरुष ।	७।२
छृटा	चौधरी महणा का चौथा पुत्र ।	१।५।१८
जयवम्भु	विजयार्थ पर्वत की दक्षिण श्रेणी का राज-जयवर्मा ।	
जयावइ	राजा वज्रसेन की रानी-जयावती ।	६।४।३-४
जितसत्तु	मंगलावती देश का राजा-जितशश्व ।	६।८।५-६
जंदूदीव	जम्बूद्वीप ।	१।९।३
झाझू	चौधरी महणा का दूसरा पुत्र ।	१।५।१४
णीलु	नील नाम का राजा ।	७।८।२
तिजयभूसण	त्रिलोकमण्डन हाथी ।	७।१
तिहुवणचंदु	थेठ वृहषि त्रिभुक्तचन्द्र ।	६।१।१९
दलघट्टुण	कलिंग देश का एक नगर ।	३।२।६
दिउचंदही	करमचन्द की पत्नी ।	१।४।१४
दिउराज	ग्रन्थ प्रेरक चौधरी देवराज ।	१।५।११

दियवर	बनारस का राजा द्विजवर ।	३।११
देवदत्त	गजपुर का राजा देवदत्त ।	३।२।३८
देवलदे	राजा अरिमद्दन की रानी ।	१।१।३।३
देवश्री	गजपुर के राजा देवदत्त की रानी ।	३।२।१२
देवसेन	एक भद्रारक ।	५।१।५।४
देसचिह्नसणु	केवली देशभूषण ।	३।२।८
धणउ	धनद नाम का वणिक ।	३।४।१।१
धणदत्त	एक ग्वाल ।	३।१।३
धणंकर	सेठ अभयंकर का कर्मचारी ।	१।१।३।८
धुत	देवपुर का राजा ।	३।५।१७
पविसेणु	रत्नसंचयपुर के राजा वज्रसेन का अपर नाम ।	६।६।४
पहावड	श्रुतिकीर्ति पुरोहित की पुत्री-प्रभावती ।	६।१।८
पामुकिल	राजा परीक्षित ।	३।८।२-३
पासणाहु	पास्वनाथ (तीर्थकर) ।	१।६।१२
पुण्डरित	पुण्डरीक-नाम ।	३।१०
पुण्णंकर	सेठ अभयंकर का कर्मचारी ।	१।१।३।८
पोमणंदि	ग्रन्थकर्ता माणिक्कराज के गुरु-पद्मनन्दि ।	१।२।१२
पोयणपुर	पोदनपुर ।	३।५।९
भरह	राम का भाई भरत ।	३।१।३
भरहृखितु	भरतक्षेत्र ।	१।६।३
भूसणु	धनद का पुत्र भूषण ।	३।४।१२
मगह	मगध देश ।	१।६।४
मगहवाणि	मगध देश की बोली-अद्वैमागधी भाषा ।	१।१।०।४
मणिशेहर	रत्नशेखर का अपर नाम-मणिशेखर ।	६।६।५
मणिसंचयपुर	रत्नसंचयपुर का अपर नाम ।	६।६।४
मणोहरी	चन्द्रोदय की जननी—मनोहरी ।	३।८।३-४
मध्यमंजूसा	एक कन्या—मदनमंजूसा ।	३।७।३-४
महणा	करमचन्द्र का पुत्र ।	३।४।१५
महावीर	चौबीसवें तीर्थकर महावीर ।	१।९।२२
मागही	मागधी वेश्या ।	३।४।२
माणिक्कराजु	अमरसेनचरित ग्रन्थ का कर्ता ।	१।६।५
मालहाही	चौधरी चौमा की पत्नी ।	३।४।५-६

माहेद	माहेन्द्र स्वर्ग ।	७।५।१
मिठवह	मुनि मृदुमति ।	७।५।२
मुदिदोदय	एक विद्याधर राजा ।	५।२।४।८
मेरु	सुमेह पर्वत ।	१।१।४।७
मंगलकह	जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की एक नगरी ।	६।८।५
मंगलावती	जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र का एक देश ।	६।४।२-३
रत्नसंचयपुर	मंगलावती देश का एक नगर ।	६।४।३
रमण	विनोद का छोटा भाई ।	७।३।१४
रथणसेहलु	वज्रसेन का पुत्र—रत्नशेखर ।	६।५।४
राइगिह	राजगृह नगर ।	१।५।४
रामहु	दशरथ-पुत्र राम ।	१।५।४
रामु	" "	७।३।३
रावण	दशानन ।	७।३।२
रुहियासु	रोहतक नगर ।	१।३।३
वद्रसेणु	राजा सूरसेन का दूसरा पुत्र, अमरसेन का अनुज ।	२।३।६
वज्रसेण	रत्नसंचयपुर का राजा—वज्रसेन ।	६।४।२-३
वरदत्त	सुसीमा नगरी का राजा ।	५।२।१।११
वसुमित्र	धनमित्र ।	७।८।२
बाणारसि	बनारस नगर ।	३।१।१।२
विजयादेवि	राजा सूरसेन की रानी ।	२।२।१७
विण्यादेवी	राजा जयकर्मा की रानी ।	६।५।१०
विणोह	रमण का भाई ।	७।३।१४
विपुलिद	विपुलाचल पर्वत ।	१।६।१०
विस्सकित्ति	विश्वकीर्ति ।	१।२।०।१४
विस्सतासु	गजपुर नगर के राजा का मन्त्री— विश्रतास ।	७।३।६
विहीसण	विभीषण ।	७।१।२
वेयद्वृणि	नगर ।	५।२।४।८
वंधुमइ	श्रुतकीर्ति की फली ।	६।८।७
सणिकुमार सग्न	सनकुमार स्वर्ग ।	२।२।८
सिद्धधीस	मुनि ।	५।२।१।१४

सिहिकंडी	विश्वतास मन्त्री की पत्नी—शिखिकण्ठी ।	अ१३।६-७
सिंघल	अग्रवाल अन्वय का एक गोत्र ।	१।४।३
सीया	राम की पत्नी—सीना ।	१।५।४, अ१।२-३
स्त्रीदामा	कुलंकर की पत्नी ।	अ१३।५
सुकूट्ट	पर्वत ।	२।१।१
सुजजोदय	सूर्योदय नाम का एक पुरुष ।	अ१२

●

परिशिष्ट-३

अन्देली शब्द

अथाण	अथाना	१।१५६
आउ	आयु	२।२।४
आजु	आज	१।१४।३
आयड	आया	२।४।८
आदकाव	आयु	१।१६।९
उतारउ	उतारा देशी धातु	१।२।०।१५
कहिछजइ	काहना देशी धातु	४।५।७
कल्ल	कल	१।१६।४
करना	करना देशी धातु	१।१८।७
काजु	काज	१।१४।३
कारण	कारण	१।२।१।१५
कंधि	कंधे पर	१।१५।२
घर	घर	१।१३।११
घरणी	घरनी	१।१७।३
घालिज्जइ	घालना देशी धातु	१।१५।१३
चंप	चपाना/द्वाना देशी धातु	१।१४।१७
चंडाल	चाणडाल	१।१८।१२
जब	जब	४।१।०।१३
जा	यह	१।२।१४
जाय	जाकर	१।६।१५
जिणि	नहीं	१।१८।१०
जूआ	झूत	१।१६।२
तुरंतु	तुरन्त	२।१।६
दुवारु	द्वार	१।१९
दीराव	दीड़ाना देशी धातु	४।६।१४
न्हाण-धौण	नहाना/धोना देशी धातु	१।१६।९
पट्टाए	पठाये	३।१।८
पठावहु	पठाना देशी धातु	५।३।१२

परोसिउ	परोसा	११२२।१५
पहिराविय	पहिरा कर देशी धातु	११२१।१
पाइ	पाना देशी धातु	१११।१२
पापर	पापड़	११५।६
पालइ	पालता है-देशी धातु	११४।१
पीटि	पीटकर देशी धातु	४।१२।८
पुण्याइ	पुण्याइ से	२।२।२
पेरिउ	पेरा देशी धातु	१।१७।१
पोइजइ	पोया जाना देशी धातु	१।१५।७
फसइ	फसता है देशी धातु	१।१४।३
भलउ	भला	१।१८।१२
भरि	भरकर देशी धातु	५।१५।१
भुलउ	भुल	५।१६।२
मत	नहीं	१।१९।१९
मय	सहित	२।१२।२
मरत	मरण	१।१६।१७
मारणेण	मारने से	३।८।१४
मूस्	मूसना देशी धातु	४।१९
मोडर्यत	मोडते हुए	१।१५।१२
मोर	मयूर	१।११।११
रहेह	रहता है देशी धातु	४।१।३
राजी	सहमत	१।१४।१२
खख	खख	३।३।१४
लगियथउ	लग गया देशी धातु	२।२।१४
लेखि	लेकर देशी धातु	१।९।१३
वार-वार	फिर-फिर	२।५।१७
विगोबइ	विगोता है देशी धातु	५।५
विहाण	सबेदा	२।१३।१
वीह	भाई	२।१२
बुद्धि	बुद्धा	४।११।२३
वेइ	वे ही	१।२।१।१२
वेडी	बेड़ी	१।१७।३
वेरहि	वेरा (समव)	२।३।१

बोलइ	बोलता है देशी धातु	२।५।११
सयाणी	चतुरा	२।२।१०
सराधु	शाद्र	१।१।८।७
सुई	सुई	१।१।४।१७
सुहाइ	सुहाता है । देशी धातु	१।२।२
सूली	फौसी	१।१।५।७
हनकारि	चिल्लाकर	२।६।८
हाल	तत्काल	१।१।७।२
होइ जाउ	हो ही जाता है ।	१।२।२।२२

●